प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मन्त्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-सङ्घ
वर्धा (बम्बई-राज्य)

पहली बार : ५,०००
जनवरी, १९५७
मूल्य : डेढ़ रुपया

मुद्रक :
प्यारेलाल भार्गव,
राजा प्रिंटिंग प्रेस,
कमच्छा, वाराणसी–१

श्री विश्वनाथ पट्टनायक
को

आभार मानता हूँ मैं

—बाबाका, जिन्होंने बेनीपुरी और लवणम्‌के लेखोंकी चर्चा करते हुए एक दिन कहा कि बाबाको तो ऐसा Liquid ही चाहिए—शहद और गरम पानी-सा, दही-सा।

—सहयोगी गुरुशरण, जमनालाल जैन, भाई राधाकृष्ण बजाजका, जिन्होंने मुझे 'मार-मारकर हकीम' बना ही दिया, वर्ना मेरे जैसा लापरवाह अभी यह पुस्तक लिखनेवाला था नहीं।

—अभयनाथ तिवारीका, जिन्होंने इसके कुछ लेख टङ्कित करनेकी कृपा की।

—'आज', 'हिन्दुस्तान', 'भारत', 'राष्ट्रवाणी', 'नवशक्ति', 'उत्तर बिहार', 'स्वस्थ जीवन', 'आर्यावर्त', 'रामराज्य' आदि-का, जिन्होंने इसके कुछ लेख छापे।

—प० रामचन्द्र शुक्लका, जिन्होने सन् '१६ में गांधीकी सभामें उपस्थित होनेके नाते मेरी कुछ भूलें सुझायी।

—पं० प्यारेलाल भार्गवका, जिन्होंने बिस्तरपर पड़े रहकर भी इसे सजाने-सँवारनेमें बड़ा कष्ट उठाया।

—नरहरि पुरुषोत्तम रगप्पाका, जो डाक्टर गोबेल्ससे भी ज़्यादा सावधान है कि कहीं कामा, फुलस्टापकी गलती न छूट जाय।

—मुद्राराक्षसोंका, जिन्होंने लाख सावधानीके बावजूद कहीं-कहीं 'अनन्य' को 'अन्य' बना ही दिया।

—अर्द्धांगिनी सरस्वती देवीका, जिसकी मूक साधना छिपी है इसके पीछे—उर्मिलाकी तरह!

कहा जमीन, कहाँ आसमान !

कहाँ पृथ्वी, कहाँ आकाश !

बात करनी थी मुझे धरतीकी, करने लगा नक्षत्रोंकी ।

हँसेंगे आप मेरी वेवकूफीपर कि कैसा है यह मूर्ख, जो जमीन आसमानके कुलावे एकमें मिला रहा है ।

*　　　*　　　*

लेकिन आप ही बताइये कि क्या पृथ्वी और आकाश, दो हैं ?

एक ही सिक्केके दो पहलू ।

पृथ्वीपर हम पैदा होते हैं, आकाशमें बढते हैं ।

नक्षत्रोंकी छायामें हमारा जन्म होता है ।

नक्षत्रोंकी छायामें हम पलते-पनपते हैं ।

नक्षत्रोंकी छायामें ही हम आँख मूँदते हैं ।

हम चाहें भी तो नक्षत्रोंसे हम दूर नहीं रह सकते ।

*　　　*　　　*

पृथ्वी ?

वह तो हमारी जननी ही ठहरी ।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"

पृथ्वीपर हम जन्म लेते हैं ।

उसकी धूलमें लोट-लोटकर बड़े होते हैं ।

उसकी नदियोंमें, उसके तालावोंमें किलोलें करते हैं । उसकी उपजने, उसके अन्नके दानोंसे, हम पुष्ट होते हैं ।

उसपर उगी हुई कपाससे हम अपनी लज्जा ढँकते हैं ।

मृत्युकालमें भी हमें धरतीकी गोद मिलती है।

"मिट्टी ओढ़न, मिट्टी बिछावन !
मिट्टीमें मिल जाना रे !!"

'चलते समय' बच्चनके शब्दोंमें हम कह उठते हैं :

"मिट्टीका तन, मस्तीका मन,
क्षणभर जीवन मेरा परिचय ! "

* * *

ऐसी है यह धरती माता, वसुधरा।
जन्मसे मृत्युतक हम इससे दूर नहीं हो सकते।

* * *

नीचे पृथ्वी : ऊपर आकाश।
कितने प्रेरक होते हैं आकाशमें खिलनेवाले ये नक्षत्र।
कैसे शुद्ध, कैसे पावन, कैसे मनोरम !

* * *

और यह पृथ्वी माता ?
इसकी पुकार कौन कम प्रेरक, कम पावन, कम मनोरम है ?

आज इस फकीरकी जो भूमिकी पुकार है,
पुकार है यह दीनकी, यह देशकी पुकार है !

* * *

वह देखिये—भूमिक्रान्तिका मसीहा, विनोबा कहता है—

'कबिरा खड़ा बज़ारमें
लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना
चले हमारे साथ ॥'

सवाल है कि एकान्त-प्रेमी विनोबाको ऐसा कहनेकी, गाँव-गाँव घूमनेकी, इतना श्रम करनेकी ज़रूरत क्यों पड़ी ?

उस दिन जब माधवरावपल्लीमें कुटियासे नीचे उतरकर वह जवाहरलालको मोटरतक पहुँचाने आया, तो नमस्कार करते हुए वे बोले : "आप अपनी सेहतका भी कुछ ख्याल रखा करिये। Overdo 'ओवर डू' मत करिये।"

मैंने देखा, विनोबाकी आँखें छलछला आयी हैं !

क़बूल भी किया बादमें उन्होंने कि "मैं अपनेपर ज्यादती करता हूँ जरूर, पर करूँ क्या। मेरा तो यह 'मिशन' है—"*करो या मरो।*"

"राम काज कीन्हे बिना
मोंहि कहाँ बिश्राम ?"

* * *

दुर्बल काया, वृद्धावस्था और पेटमें फोड़ा !

फिर भी बाबा देशके कोने-कोनेमें भटकते फिर रहे हैं।

जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो, कड़कड़ाती सर्दी हो, चिलचिलाती धूप हो, मूसलधार वर्षा हो, पर बाबा रुकते नहीं, चलते ही रहते हैं,—सतत, लगातार, रोज़।

क्यों ?

* * *

इसीलिए कि देशके भूमिहीन किसान रात-दिन उनकी आँखोंके आगे नाचते रहते हैं, जिनका रोम-रोम पुकारता है :

सबसे अभागा हम किसान एही देसवामें।
अपनेसे खेत जोती,
अपनेसे खेत बोई,
तबौ नाहीं अन्न कै ठिकान एही देसवामें॥
क़रज़ा दिन दूना बाढ़ै
रात चौगुना बाढ़ै,
होई गैले सहुवा सब बेइमान हमरे देसवामें॥

* * *

वे जमीन जोतते हैं, बोते हैं, फसल पैदा करते हैं, खलिहानमें नाजका ढेर लगा देते हैं, पर खानेके लिए उन्हें दो दाने भी नसीब नही होते। क़र्ज़ा द्रौपदीके चीरकी तरह दिन दूना, रात चौगुना बढता जाता है। न खानेको अन्न, न पहननेको वस्त्र! नून-तेल-लकडीका भी कोई ठिकाना नही—

नीमक घटि गै, कुरता फटि गै,
धोतिया भईल पुरान!
चुल्हियामें लकडी घटि गै,
भूखा रहले प्रान।
छटपटि करिकै बेटवा छुटकै
भूखसे नीपट निदान।
हाथ माथ धरि मेहरि रोवै,
दया करो भगवान्!
गमछी पहिनकै दिन कटौला,
सहली सब अपमान।
नंगे बिटिया बेटवा रहली,
मेहरि फटल पुरान!!

प्रथम महायुद्धके बाद अवधमें किसानोंका जो आन्दोलन चला था, उसीके ये गीत आज भी भारतके किसानोंकी वास्तविक स्थितिका चित्रण करते हैं, भले ही जमीदारी मिट चुकी है और देशको आज़ाद हुए नौ साल हो चुके हैं!

* * *

तो, देशके इन किसानोंकी हालत सुधारनी है, वर्ना हमारे स्वराज्यका अर्थ ही क्या? बाबाके शब्दोंमें—'गोरी चमडीवाले गये और काली चमडी-वाले आये, इससे स्वराज्य नही बनता!'

स्वराज्य लाना है, तो ग्रामराज्य लाना होगा, रामराज्य लाना होगा।

और उसका पहला कदम है—भूदान। आर्थिक और सामाजिक क्रान्तिका एकमात्र उपाय।

*　　　*　　　*

बाबाकी इस अहिंसक क्रान्तिका सूत्र है :

हवा सबकी, पानी सबका, फिर ज़मीनपर किसीकी मालकियत क्यों रहे? जो आदमी जोतता है, बोता है, वह भूमिहीन क्यों रहे? जो आदमी ज़मीनकी सेवा करना चाहता है, उसे भू-सेवाका अधिकार मिलना ही चाहिए।

बाबाकी यह माँग ज़मीदारोंसे भी है, ग़रीब किसानोंसे भी।

वे हर आदमीसे मालकियतका मोह छुड़ानेको तत्पर हैं।

*　　　*　　　*

और उनका तरीक़ा?

वह है—प्रेमसे लूटनेका।

कहते हैं : "तुम्हारे पाँच बेटे हैं, मुझे छठा मानकर मेरा हिस्सा दो!"

*　　　*　　　*

पोचमपल्लीमें जिस दिन सबसे पहले उन्होंने भूदान माँगा और रामचन्द्र रेड्डीने उनकी झोलीमें ८० के बजाय १०० एकड़का दानपत्र छोड़ा, उस दिन वे रातभर न सो सके—"*भगवान् मुझसे यह नया काम लेना चाहते हैं।*" ऐसा आभास पा उन्होंने दूसरे दिनसे प्रेमकी लूट शुरू कर दी!

*　　　*　　　*

और इस लूटपर दूसरोंको रश्क होता है।

कम्युनिस्ट कहते हैं : 'जो बात विनोबा कहते हैं, वही बात हम कहते, तो हमें गोलियोंका शिकार बनना पड़ता!'

बाबा हँसकर कहते हैं : "यही तो प्रेमके तरीकेकी खूबी है! आप रातको आकर क्यों लूटते हैं? मेरी तरह दिन-दहाड़े प्रेमसे लूटना क्यों नहीं सीखते?"

*　　　*　　　*

वे ज़मीन जोतते हैं, बोते हैं, फसल पैदा करते हैं, खलिहानमें नाजका ढेर लगा देते हैं, पर खानेके लिए उन्हें दो दाने भी नसीब नही होते। क़र्ज़ा द्रौपदीके चीरकी तरह दिन दूना, रात चौगुना बढता जाता है। न खानेको अन्न, न पहननेको वस्त्र! नून-तेल-लकड़ीका भी कोई ठिकाना नही—

नीमक घटि गै, कुरता फटि गै,
धोतिया भईल पुरान!
चुल्हियामें लकड़ी घटि गे,
भूखा रहले प्रान।
छटपटि करिकै बेटवा छूटकै
भूखसे नीपट निदान।
हाथ माथ धरि मेहरि रोवै,
दया करो भगवान्!
गमछी पहिनकै दिन कटौला,
सहली सब अपमान।
नंगे बिटिया बेटवा रहली,
मेहरि फटल पुरान!!

प्रथम महायुद्धके बाद अवधमें किसानोंका जो आन्दोलन चला था, उसीके ये गीत आज भी भारतके किसानोंकी वास्तविक स्थितिका चित्रण करते हैं, भले ही जमीदारी मिट चुकी है और देशको आज़ाद हुए नौ साल हो चुके हैं!

*   *   *

तो, देशके इन किसानोंकी हालत सुधारनी है, वर्ना हमारे स्वराज्यका अर्थ ही क्या? बाबाके शब्दोंमें—'गोरी चमडीवाले गये और काली चमडी-वाले आये, इससे स्वराज्य नही बनता!'

स्वराज्य लाना है, तो ग्रामराज्य लाना होगा, रामराज्य लाना होगा।

और उसका पहला क़दम है—भूदान। आर्थिक और सामाजिक क्रान्तिका एकमात्र उपाय।

* * *

बाबाकी इस अहिंसक क्रान्तिका सूत्र है :

हवा सबकी, पानी सबका, फिर ज़मीनपर किसीकी मालकियत क्यों रहे? जो आदमी जोतता है, बोता है, वह भूमिहीन क्यों रहे? जो आदमी ज़मीनकी सेवा करना चाहता है, उसे भू-सेवाका अधिकार मिलना ही चाहिए।

बाबाकी यह माँग ज़मीदारोंसे भी है, गरीब किसानोंसे भी।

वे हर आदमीसे मालकियतका मोह छुड़ानेको तत्पर हैं।

* * *

और उनका तरीक़ा?

वह है—प्रेमसे लूटनेका।

कहते हैं : "तुम्हारे पाँच बेटे हैं, मुझे छठा मानकर मेरा हिस्सा दो!"

* * *

पोचमपल्लीमें जिस दिन सबसे पहले उन्होंने भूदान माँगा और रामचन्द्र रेड्डीने उनकी झोलीमें ८० के बजाय १०० एकड़का दानपत्र छोड़ा, उस दिन वे रातभर न सो सके—"*भगवान् मुझसे यह नया काम लेना चाहते हैं।*" ऐसा आभास पा उन्होंने दूसरे दिनसे प्रेमकी लूट शुरू कर दी!

* * *

और इस लूटपर दूसरोंको रश्क होता है।

कम्युनिस्ट कहते हैं : 'जो बात विनोबा कहते हैं, वही बात हम कहते, तो हमें गोलियोंका शिकार बनना पड़ता!'

बाबा हँसकर कहते हैं : "यही तो प्रेमके तरीक़ेकी खूबी है! आप रातको आकर क्यों लूटते हैं? मेरी तरह दिन-दहाड़े प्रेमसे लूटना क्यों नहीं सीखते?"

* * *

वे जमीन जोतते हैं, बोते हैं, फसल पैदा करते हैं, खलिहानमें नाजका ढेर लगा देते हैं, पर खानेके लिए उन्हें दो दाने भी नसीब नही होते। क़र्ज़ा द्रौपदीके चीरकी तरह दिन दूना, रात चौगुना बढता जाता है। न खानेको अन्न, न पहननेको वस्त्र ! नून-तेल-लकडीका भी कोई ठिकाना नही—

नीमक घटि गै, कुरता फटि गै,
धोतिया भईल पुरान !
चुल्हियामें लकड़ी घटि गे,
भूखा रहले प्रान।
छटपटि करिकै बेटवा छुटकै
भूखसे नीपट निदान।
हाथ माथ धरि मेहरि रोवै,
दया करो भगवान् !
गमछी पहिनके दिन कटौला,
सहली सब अपमान।
नंगे बिटिया बेटवा रहली,
मेहरि फटल पुरान !!

प्रथम महायुद्धके बाद अवधमें किसानोंका जो आन्दोलन चला था, उसीके ये गीत आज भी भारतके किसानोंकी वास्तविक स्थितिका चित्रण करते हैं, भले ही जमीदारी मिट चुकी है और देशको आज़ाद हुए नौ साल हो चुके हैं !

*   *   *

तो, देशके इन किसानोंकी हालत सुधारनी है, वर्ना हमारे स्वराज्यका अर्थ ही क्या ? बाबाके शब्दोंमें—'गोरी चमडीवाले गये और काली चमडीवाले आये, इससे स्वराज्य नही बनता।'

स्वराज्य लाना है, तो ग्रामराज्य लाना होगा, रामराज्य लाना होगा।

और उसका पहला कदम है—भूदान। आर्थिक और सामाजिक क्रान्तिका एकमात्र उपाय।

*   *   *

वावाकी इस अहिंसक क्रान्तिका सूत्र है :

हवा सवकी, पानी सवका, फिर ज़मीनपर किसीकी मालकियत क्यों रहे? जो आदमी जोतता है, वोता है, वह भूमिहीन क्यों रहे? जो आदमी ज़मीनकी सेवा करना चाहता है, उसे भू-सेवाका अधिकार मिलना ही चाहिए।

वावाकी यह माँग ज़मीदारोंसे भी है, गरीव किसानोंसे भी।

वे हर आदमीसे मालकियतका मोह छुड़ानेको तत्पर हैं।

*   *   *

और उनका तरीका?

वह है—प्रेमसे लूटनेका।

कहते हैं : "तुम्हारे पाँच वेटे हैं, मुझे छठा मानकर मेरा हिस्सा दो!"

*   *   *

पोचमपल्लीमें जिस दिन सवसे पहले उन्होंने भूदान माँगा और रामचन्द्र रेड्डीने उनकी झोलीमें ८० के वजाय १०० एकड़का दानपत्र छोड़ा, उस दिन वे रातभर न सो सके—"*भगवान् मुझसे यह नया काम लेना चाहते हैं।*" ऐसा आभास पा उन्होंने दूसरे दिनसे प्रेमकी लूट शुरू कर दी!

*   *   *

और इस लूटपर दूसरोंको रश्क होता है।

कम्युनिस्ट कहते हैं : 'जो वात विनोवा कहते हैं, वही वात हम कहते, तो हमें गोलियोंका शिकार वनना पड़ता!'

वावा हँसकर कहते हैं : "यही तो प्रेमके तरीक़ेकी खूवी है! आप रातको आकर क्यों लूटते हैं? मेरी तरह दिन-दहाड़े प्रेमसे लूटना क्यों नहीं सीखते?"

*   *   *

वे ज़मीन जोतते हैं, बोते हैं, फसल पैदा करते हैं, खलिहानमें नाजका ढेर लगा देते हैं, पर खानेके लिए उन्हें दो दाने भी नसीब नहीं होते। क़र्ज़ा द्रौपदीके चीरकी तरह दिन दूना, रात चौगुना बढता जाता है। न खानेको अन्न, न पहननेको वस्त्र! नून-तेल-लकडीका भी कोई ठिकाना नहीं—

नीमक घटि गै, कुरता फटि गै,
धोतिया भईल पुरान!
चुल्हियामें लकडी घटि गै,
भूखा रहले प्रान।
छटपटि करिकै बेटवा छुटकै
भूखसे नीपट निदान।
हाथ माथ धरि मेहरि रोवै,
दया करो भगवान्!
गमछी पहिनकै दिन कटौला,
सहली सब अपमान।
नंगे बिटिया बेटवा रहली,
मेहरि फटल पुरान!!

प्रथम महायुद्धके बाद अवधमें किसानोंका जो आन्दोलन चला था, उसीके ये गीत आज भी भारतके किसानोंकी वास्तविक स्थितिका चित्रण करते हैं, भले ही जमींदारी मिट चुकी है और देशको आज़ाद हुए नौ साल हो चुके हैं!

* * *

तो, देशके इन किसानोंकी हालत सुधारनी है, वर्ना हमारे स्वराज्यका अर्थ ही क्या? बाबाके शब्दोंमें—'गोरी चमडीवाले गये और काली चमडी-वाले आये, इससे स्वराज्य नहीं बनता!'

स्वराज्य लाना है, तो ग्रामराज्य लाना होगा, रामराज्य लाना होगा।

और उसका पहला कदम है—भूदान। आर्थिक और सामाजिक क्रान्तिका एकमात्र उपाय।

*　　　*　　　*

बाबाकी इस अहिंसक क्रान्तिका सूत्र है :

हवा सबकी, पानी सबका, फिर ज़मीनपर किसीकी मालकियत क्यों रहे? जो आदमी जोतता है, बोता है, वह भूमिहीन क्यों रहे? जो आदमी ज़मीनकी सेवा करना चाहता है, उसे भू-सेवाका अधिकार मिलना ही चाहिए।

बाबाकी यह माँग जमीदारोंसे भी है, ग़रीब किसानोंसे भी।

वे हर आदमीसे मालकियतका मोह छुड़ानेको तत्पर हैं।

*　　　*　　　*

और उनका तरीक़ा?

वह है—प्रेमसे लूटनेका।

कहते हैं : "तुम्हारे पाँच बेटे हैं, मुझे छठा मानकर मेरा हिस्सा दो!"

*　　　*　　　*

पोचमपल्लीमें जिस दिन सबसे पहले उन्होंने भूदान माँगा और रामचन्द्र रेड्डीने उनकी झोलीमें ८० के बजाय १०० एकड़का दानपत्र छोड़ा, उस दिन वे रातभर न सो सके—"*भगवान् मुझसे यह नया काम लेना चाहते हैं।*" ऐसा आभास पा उन्होंने दूसरे दिनसे प्रेमकी लूट शुरू कर दी!

*　　　*　　　*

और इस लूटपर दूसरोंको रश्क होता है।

कम्युनिस्ट कहते हैं : 'जो बात विनोबा कहते हैं, वही बात हम कहते, तो हमें गोलियोंका शिकार बनना पड़ता!'

बाबा हँसकर कहते हैं : "यही तो प्रेमके तरीक़ेकी खूबी है! आप रातको आकर क्यों लूटते हैं? मेरी तरह दिन-दहाड़े प्रेमसे लूटना क्यों नहीं सीखते?"

*　　　*　　　*

हैदराबादका एक पडाव।

'दाता-संघ' की बैठक चल रही थी।

एक व्यक्ति आकर बोला : 'बाबा, मैं अपनी सारी जमीन भूदानमें देना चाहता हूँ।'

बाबाने पूछा : 'फिर तुम्हारा काम कैसे चलेगा, भाई?'

बोला : 'मैं तो दर्जी हूँ। सिलाईसे मेरा काम चल ही जाता है। मेरी जमीन किसी भूमिहीनके काम आयेगी, तो मुझे बडी खुशी होगी!'

और यह 'खुशी' लेकर ही वह माना।

* * *

तुङ्गाका पावन तट।

आंध्रकी राजधानी—कुर्नूलके पडावका दूसरा दिन।

हमें उस दिन वहीं ठहरना था, फिर भी बाबा नियमानुसार सुबह ५ बजे भ्रमणके लिए निकल पडे।

हम पाँच-सात अन्तेवासी थे साथमें।

कुछ देर तुङ्गाके तटपर बैठकर बाबाने 'तुङ्गा-पान' किया और उठ खडे हुए।

दो एक बंधु तबतक स्नानसे भी निवृत्त हो आये।

बाबा लौटनेको पैर उठा ही रहे थे कि एक भोला-भाला सीधा-सादा बडी दाढीवाला सद्गृहस्थ, नदीसे निकला और जलांजलि भरकर उनके सामने आ खडा हुआ।

बोला—"लीजिये संकल्प।"

दाहिना हाथ बढ़ाते ही उसने कहा :

'मेरी सारी सम्पत्ति आपके चरणोंमें अर्पण!'

इतना कहकर उसने फिर रुकनेका इशारा किया।

दूसरी अंजलि फिर भर लाया और बोला :

'मैं और मेरा सारा परिवार सर्वोदय कार्यके लिए अर्पण!'

और, इस सर्वस्व-समर्पणके बाद वह बाबाके चरणोंपर नतमस्तक हो गया !

"चाला मंचिही" ('बहुत अच्छा') कहकर बाबाने उसे दोनों हाथोंसे ऊपर उठा लिया !

हम लोगोंकी ओर मुड़कर बाबा बोले : "देखा तुमने, इसने अपनी सारी सम्पत्ति ही नही, सारा जीवन और सारा परिवार सर्वोदयको दे डाला !"

भूमिदान वह एक दिन पहले ही कर चुका था !

* * *

भूदान-यात्रामें—ऐसे एक-दो नही, असंख्य पावन नक्षत्र हम रोज़ अपनी आँखों देखते हैं।

मानवकी उदारता, मानवकी दयालुता, मानवकी पवित्रता प्रकट करनेवाले ये प्रसंग किसे द्रवित नही करते ? किसे प्रसन्न नही करते ? किसे ऊपर नही उठाते ?

* * *

ग़रीबोंके लिए, दीन-दुःखियोंके लिए, शोषितों-पीड़ितोंके लिए आशाका एकमात्र प्रकाशस्तम्भ है—भूदान।

नक्षत्रोंकी छायामें भूदान-यज्ञके अध्वर्यु संत विनोबा भावेके अनुगमनमें उडीसा, हैदराबाद और आन्ध्रमें मैंने २॥ मास बिताये हैं। दो बारमें—पहले सितम्बर '५५ में, फिर फरवरी-मार्च '५६ में।

उन्ही दिनोंके सस्मरणोंकी हैं ये टेढ़ी-मेढी, आड़ी-सीधी रेखाएँ !

काशी
सन् सत्तावनका पहला दिन

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

गोविन्दन—विनोवाजीके पुराने मलयाली शिष्य, मस्त, प्रसन्न, जिससे मिलते हैं, हँसकर ही जाने देते हैं। भूदानमें जी-जानसे सलग्न।

चाऊ एन लाई—चीनके प्रधानमत्री।

जयदेव—कन्नड प्रदेशीय युवक, जिसने वावाकी व्यक्तिगत सेवामें अपनेको शून्य बना रखा है।

जयप्रकाश नारायण—देशके अनन्य सेवक, जिन्होंने भूदान-यज्ञमूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्तिके लिए जीवन उत्सर्गकर देशको एक नया मार्ग दिखाया है।

जवाहरलाल नेहरू, पडित—भारतके प्रधानमत्री।

जानकीदेवी वजाज—श्रेयार्थी जमनालाल वजाजकी सहधर्मिणी, कूपदानमें जी-जानसे तन्मय, विनोदकी साक्षात् प्रतिमा, जिन्हें अलकारोंका त्याग कर देनेपर भी सरकारने 'पद्मविभूषण' की उपाधिसे अलकृत कर स्वय अपना गौरव वढ़ाया है।

जोशी एस० एम०—महाराष्ट्रके अनन्य सेवक, सयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलनके प्राण।

ढेवर उच्छंगराय नवलशंकर—काग्रेसके अध्यक्ष।

त्रिभुवन भट्ट—गुजरातके मेहसानाके प्रमुख काग्रेसजन।

दादा धर्माधिकारी, आचार्य—सर्वोदय-शास्त्रके प्रसिद्ध व्याख्याता, श्रोताओंको मुग्ध कर लेनेवाले वक्ता, 'सर्वोदय' के भूतपूर्व सम्पादक, आजकल 'भूदान-यज्ञ' के लिए काशीवासी।

दामोदरदास मूँदड़ा—विनोवाके निजी सचिव, शिष्ट, मृदु, मिलनसार।

द्वारको सुन्दरानी—समन्वय-आश्रमके साधक, 'गीता-प्रवचन' के सिंधी अनुवादक।

धीरेन्द्र मजूमदार—सेवाके अनन्य पुजारी, 'समग्र ग्राम-सेवाकी ओर' के लेखक, अखिल भारत सर्व-सेवा-सघके अध्यक्ष, श्रम-भारतीके प्राण।

धूत, रामकृष्ण—हैदरावादके निःस्पृह सेवक, शिवरामपल्लीके ग्राम-सेवा-केन्द्रके जन्मदाता और प्राण।

नगीन पारीख—सौराष्ट्रका सेवाभावी युवक, जो विदेशोंकी खाक छानकर आज कोरापुटमें जा वसा है।

नरेन्द्रदेव, आचार्य—प्रसिद्ध विचारक, विद्वान्, दार्शनिक, नेता, त्यागी।

नवकृष्ण चौधरी—जिन्होंने भूदानके काममें चौबीसों घण्टे जुट जानेके लिए उड़ीसाके मुख्यमंत्री पदसे स्तीफा दे ही दिया।

नारायण—उत्कलका एक भूदान-कार्यकर्ता।

नारायण भाई देसाई—महादेव देसाईका पुत्र अथवा नवकृष्ण बाबूका दामाद होनेके नाते नहीं, बल्कि अपनी स्वतंत्र सेवाके नाते जो देशमें प्रख्यात है, गुजरातका निःस्पृह सेवक, 'भूमिपुत्र' का सम्पादक, 'भूदान-आरोहण' का लेखक ही नहीं, सैनिक भी।

निमाई चरण—कोरापुटका एक निःस्पृह सेवक।

निर्मला देशपाण्डे—प्रोफेसरी छोड़ जो जंगल-पहाड़ोंमें 'विनोबाके साथ' घूमती है—जाड़ा, गर्मी, बरसातमें, देखनेमें जितनी छोटी, विद्या-बुद्धिमें उतनी ही बड़ी, भावुक लेखिका, बाबाके विचारोंको प्रकाशमें लानेवाली 'सर्चलाइट।'

प्रकाशम्, टी०—आंध्रकेसरी : बूढ़ा शेर ! देशभक्तिकी जाज्वल्य-मान मूर्ति।

प्रभाकर—आंध्रके अनन्य सेवक।

प्रभावती—जयप्रकाश बाबूकी अर्धांगिनी, जो सोलह आने बापूके रंगमें रँगी हैं।

प्रह्लाद पाणिग्रही—कोरापुटके उत्साही सेवक।

बंसी—उत्कलका सीधा सरल युवक, बाबाकी व्यक्तिगत सेवामें संलग्न।

बालकोबा भावे—विनोबाके अनुज, उरलीकांचनके आरोग्य-मंदिरके संचालक।

बाल टँभेकर—बाबाकी परिचर्यामें जो यह भूल गया है कि वह हिन्दू विश्वविद्यालयका एम० एस-सी० है 'जिम्मालाजी' में, बाबाके शब्दोंमें 'पत्थरशास्त्री'।

वालूभाई मेहता—बाबाके पुराने साथी, महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सेवक, खादीके परमभक्त, सीधे, सरल, निःस्पृह, बाबा ठीक ही कहते हैं कि इन्हें देखकर नरसी मेहताकी याद आ जाती है !

बेसेण्ट, एनी—भारतकी अविस्मरणीय सेविका ।

ब्रजसुन्दरदास—कोरापुटका एक निष्ठावान् कार्यकर्ता ।

मंगलादेवी—उडीसाकी सीधी सरल सेविका, जो सेवकोंके साथ-साथ बाबाकी भी 'माशी' (मौसी) बन गयी है ।

मणि बहन—बम्बईकी एक सेवाभावी नर्स, जो अशक्त रहनेपर भी बाबाके लिए सैकडों मील पैदल चली है ।

मनमोहन चौधरी—गोपबाबूके सुपुत्र, बाबाके उडिया अनुवादक, 'ग्रामसेवक' के सम्पादक, जनता-जनार्दनके साथ एकरस रहनेवाले निःस्पृह सेवक ।

महादेव देसाई—बापूके निजी सचिव, जिन्हें बापू बेटेकी तरह चाहते थे ।

महादेवी ताई—बाबाकी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओंका जो इतना ध्यान रखती है कि क्या कोई माँ और बहन रखेगी ।

महेश कोठारी—बडे बापका उत्साही बेटा, गुजरात विद्यापीठका स्नातक, जा रहा था अमेरिका कि जवाहरलाल ने कहा : 'क्या करेगा वहां जाकर, घूम विनोबाके साथ !' तबसे बाबाके पीछे पडा है, इन दिनों मद्रासमें सम्पत्तिदानके लिए घर-घर फेरी लगाता है ।

मालतीदेवी चौधरी—नवकृष्ण बाबूकी सुयोग्य सहधर्मिणी, उत्कलकी परम तेजस्वी सेविका ।

मालवीय, महामना—प्रसिद्ध देशभक्त, हिन्दू-विश्वविद्यालयके संस्थापक ।

मावलकर, दादा—भारतीय संसद् जिन्हें अध्यक्ष पाकर धन्य हो उठी थी, देशके निःस्पृह सेवक ।

मित्तल, बाबूलाल—उत्तरप्रदेशीय [illegible] जो कोरापुटमें धूनी रमा रहे हैं—'मुनि' जी

मीरा व्यास—जो केंचुए और मेढक चीरकर भी डॉक्टर न बन सकी, एल-एल० बी० का पुछल्ला लगाकर भी वकील न बन सकी, अध्यापिकाकी कुर्सीपर बैठकर भी वहां न टिक सकी, सालभरसे गुजरात छोड़ बाबाके पीछे फिर रही है बाल बिखेरे, उनके भाषणोंके 'नोट' लेती हुई।

मुहम्मद बाजी—कोरापुटके निष्ठावान् सेवक।

मृत्युंजय जेना—उड़ीसाके उत्साही कार्यकर्ता।

रघुनाथ पारीख—कोरापुटके उत्साही कार्यकर्ता।

रमाकान्त अधिकारी—उत्कलके निष्ठावान् सेवक।

रमादेवी चौधरी—मनमोहनकी ही नहीं, उड़ीसाके सभी कार्यकर्ताओंकी मां।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—'गीतांजलि' के प्रणेता, विश्वकवि।

रवीन्द्र वर्मा—गांधी-विचार-परिषद्के उत्साही मंत्री।

राजेन्द्रप्रसाद, डॉक्टर—भारतके राष्ट्रपति।

राधाकृष्ण बजाज—सर्व-सेवा-संघके प्रकाशन-संचालक, मिलनसार, आना-पाईमें ही नहीं, व्यवहारमें भी उतने ही चौकस, जिन्हें सेठ जमनालाल बजाजकी रचनात्मक प्रवृत्तियोंकी विरासत मिली है।

राधारतन दास—उत्कलके 'नवजीवन-मण्डल' के उत्साही कार्यकर्ता।

रामकृष्ण परमहंस—दक्षिणेश्वरका संत, जिसके शिष्य विश्वभरमें पीड़ित मानवताकी सेवामें संलग्न हैं।

रामकृष्णराव, बी०—नेहरूके दुभाषिया, जो हैदराबादके मुख्यमंत्री रह चुके हैं।

रामचन्द्र मिश्र—कोरापुटके उत्साही सेवक।

रामचन्द्र रेड्डी—भूदान-यज्ञमें जिन्होंने पहली आहुति दी।

राममोहन राय—बंगालके प्रसिद्ध समाज-सेवक।

रामलिंगम् रेड्डी—आन्ध्रके प्रमुख सेवक।

रामानन्द तीर्थ, स्वामी—काषाय वेषधारी संन्यासी, भूदानके उत्साही कार्यकर्ता, जिन्होंने जरूरतपर मुख्यमंत्रीकी कुर्सी भी संभाली थी।

रामेश्वर सिंह—दरभंगाके दिवंगत महाराज।

रावसाहब पटवर्धन—जो कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य रह चुके और "साधना' के सम्पादक, आज अंग्रेजी 'भूदान' में संलग्न हैं।

रेड्डी, गोविन्द—सेवाग्राम-आश्रमका कृषि-विशेषज्ञ, जो आज कोरापुटमें खेतीके प्रयोग कर रहा है।

लवणम्—कवि, लेखक, पत्रकार, बाबाका तेलुगु अनुवादक, 'भूदानमु' का सम्पादक, हरिजनोंके अनन्य सेवक प्रोफेसर गोराका सपूत, नमक-सत्याग्रहके समय पैदा होनेके कारण 'लवणम्' !

वंशीधर उपाध्याय—उत्कलके प्राणवान् कार्यकर्ता।

वल्लभस्वामी—विनोबाके परम निरहंकारी शिष्य, सर्व-सेवा-संघके सहमन्त्री।

वसन्ता—आन्ध्रकी सेवाभावी कार्यकर्त्री। सदैव मस्त और प्रसन्न।

वास्वानी, साधु—प्रसिद्ध समन्वयवादी साधक, युवकोंके प्रेरणा-स्रोत।

विट्ठलदास बोदानी—सौराष्ट्रका परम निष्ठावान् सेवक, गुजराती और अंग्रेजीका उत्तम लेखक, ओजस्वी वक्ता, छात्रोंके लिए प्रेरक शक्ति, जिसने चलते रोजगारमें लात मारकर गरीबीका वरण कर रखा है, ढेबर भाई जिसपर अनुजकी भाँति स्नेह करते हैं।

विमला ठकार—जे० पी० के अनुसार 'बुद्धिजीवी वर्ग और युवक-समुदायको प्रेरणा देनेवाली, सुशिक्षिता, विदुषी, प्रतिभावान् युवती, जिसने भूदान-यज्ञको जितना बल दिया है, उतना इने-गिने लोगोंने दिया होगा', ओजस्वी वक्त्री, भावुक लेखिका और साधिका, 'भूदान-यज्ञ' में जिसका 'पंचामृत' पानकर कौन तृप्त नहीं होता ?

विरधीचन्द—हैदराबादके प्रमुख सेवक, जो भूदान-साहित्यके प्रकाशन और वितरणमें ही नहीं, सम्पत्ति-दानमें भी पूरी लगनसे जुटे हैं। सीधे, सरल, मिलनसार।

विलायत हुसेन—कोरापुट (नौरंगपुर) का परम उत्साही भूदान-कार्यकर्ता, सरल, नम्र, मिलनसार।

विवेकानन्द—रामकृष्ण परमहंसके विश्वविख्यात संदेश-वाहक।

विश्वनाथ दास—उत्कलके प्रमुख कांग्रेसनेता।

विश्वनाथ पट्टनायक—कोरापुटके बेताजके बादशाह, 'नवजीवन मण्डल' के प्राण, जिन्हें केवल 'आज्ञा' (जी) कहना आता है, त्याग, सेवा और नम्रताकी मूर्ति।

वैकुण्ठलाल मेहता—अध्यक्ष, खादी-ग्रामोद्योग-बोर्ड। सरलताकी मूर्ति।

वैजापुरकर शास्त्री गो० न०—नामके शास्त्री, न्यायाचार्य, संस्कृतके विद्वान्, लेखक, पत्रकार, सम्पादक। सीधे, सरल, नम्र।

वैद्यनाथ दास—कोरापुटके प्रभावशाली नम्र सेवक।

व्यास, ईश्वरलाल—गुजरातका यह 'बूढा बच्चा' बापूकी आज्ञा शिरोधार्यकर ३० सालसे उड़ीसामें आकर जो बसा, तो पूरा उड़िया बन गया, सेवा करते-करते जिसने अपनेको शून्य बना रखा है। अत्यन्त मृदु, सरल और निःस्पृह सेवक।'

शंकरराव देव—बापूके अनन्य भक्त। महाराष्ट्रके निःस्पृह सेवक। सर्वोदय-समाजके प्राण।

शत्रुघ्नसिंह, दीवान—बुंदेलखण्डके परम यशस्वी सेवक, भारतमें, मंगरौठका, सर्वप्रथम ग्रामदान जिनकी प्रेरणासे हुआ, '३२-'३३ के फतेहगढ जेलके मेरे सहयोगी।

शरच्चन्द्र महाराणा—उत्कलके भूदान-कार्यके परम निःस्पृह सेवक। गोप बाबूके सुयोग्य दामाद।

शा बर्नर्ड—विश्वविख्यात लेखक, नाटककार, व्यंग्यकार।

शिवाजी भावे—विनोबाके अनुज, त्यागी, ब्रह्मचारी, विद्वान्।

श्रीमन्नारायण अग्रवाल—कांग्रेसके महामंत्री। सर्वोदयके भक्त, प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री, अर्थशास्त्री, लेखक, पत्रकार, सम्पादक।

श्रीमाली, कालूलाल—भारत सरकारके उपशिक्षा-मंत्री। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री।

सच्ची भाई (सच्चिदानन्द)—मृगछाला और कोपीन लगाकर घूमनेवाला यह विद्वान् तेजस्वी, विनोदी, पंजाबी नौजवान मेहतरोंसे समरस होनेके लिए झाड़ू लगानेका काम भी कर चुका है, पौनारका बाबाका शिष्य, आज कोरापुटमें धूनी रमा रहा है, 'ग्रामदान' का सम्पादक।

सत्यशेखर दास—कोरापुटके नवनिर्माणमें सलग्न निष्ठावान् सेवक।

सावित्री विश्वाल—उड़ीसाकी परम् निष्ठावान् कार्यकर्त्री।

साहूकार जगन्नाथ—कोरापुटका उत्साही कार्यकर्ता।

सिद्धराज ढड्ढा—राजस्थानके परम कर्मठ सेवक, जिन्हें राजस्थानका मन्त्रिमण्डल लुभाकर नहीं रख सका, तो व्यापार-मण्डल कैसे बांधे रह सकता था ? लेखक, पत्रकार, सम्पादक, सर्व-सेवा-सघके सहमन्त्री।

सुधांशुदास—उत्कलके उत्साही सेवक।

सुब्रह्मण्यम्—आंध्रके परम त्यागी सेवक।

सुरेन्द्रजी—बापूके आश्रमकी उपज, 'विनोदी, तत्त्वज्ञानी और फक्कड़', जो गुजरातकी इतने दिन सेवा करने के बाद आज बाबाके आदेशसे बोधगयामें समन्वयकी ज्योति जला रहे हैं।

सुरेश रामभाई—हिन्दी-अंग्रेजीके प्रसिद्ध लेखक, ऊपरसे जितने ही दुबले-पतले, भीतरसे उतने ही प्राणवान्, सर्वोदयमें सौ फीसदी निष्ठा-वान्, बापू और विनोबाके परम भक्त, सेवा और त्यागसे ओतप्रोत, इलाहाबादके सीधे, निर्मल, तेजस्वी जिला-सेवक।

हनुमंत राव—हैदराबादके मन्त्रिमण्डलका भारी-भरकम काम जिन्हें भूदानसे विरत न कर सका, बाबाके कामको जिन्होंने अपना काम बना लिया।

हरिभाऊ उपाध्याय—राजस्थानके निष्ठावान् सेवक, जो कोरे साहित्यिक ही नहीं, अजमेरके मुख्यमन्त्री भी रह चुके हैं। बापूके भक्त, सीधे, सरल, नम्र।

○ ● ●

अनुक्रम

दैनन्दिन

१. नक्षत्रोंकी छायामें ३
२. प्रार्थना: जीवनका पाथेय १०
३. सैर कर दुनियाकी ग़ाफ़िल १६
४. सावधानी : यात्राका पहला सूत्र २६
५. पड़ाव : डेरा : रैन-बसेरा ३३
६. कभी घी घना, कभी मुट्ठीभर चना ३८
७. दिन नीके बीते जाते हैं ! ४४

संस्मरण

१. जिस दिन बाबा साठके हुए ! ५३
२. भारत माँकी यह नंगी तस्वीर ६६
३. ये विदेशी तमाशबीन ! ७६
४. मिसाले दरिया जो पाये दे द्रे ! ८८
५. और जब धरती बँटती है ! ९४
६. विरह-मिलनके क्षण— १०१
७. जहाँ नया भारत जन्म ले रहा है ! १०८
८. जब टूटे हुए दिल जुड़ते हैं ! ११६
९. शिकायतियोंसे पाला पड़नेपर— १२४
१०. सन् '१६ में : जब बाबा काशीमें थे ! १३१
११. विनोदकी घड़ियोंमें— १४०
१२. और जब बाबा रो पड़ते हैं ! १४६
१३. कार्यकर्ताओंके बीच १६४

१४. शिक्षणकी नयी दिशा १८३
१५. बड़ोंका जमघट होनेपर— २०१
१६. योजन और नियोजन २१४

संत-सान्निध्य

१. गीता माताके बहाने— २२७
२. अभिवादनशीलस्य' ! २३८
३. धर्मस्य तत्त्वम् ' ! २४४
४. स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ? २५१
५. पण्डिताः समदर्शिनः २५६
६. अशाश्वत संग्रह कोण करी ? २७१
७. चाह गयी, चिन्ता गयी ! २७६
८. मिटा दे अपनी हस्तीको...! २८०
९. जहाँ समन्वयकी ज्योति जलती है ! २८६
१० ध्यान : एकाग्रता : समाधि २९९

परिशिष्ट

१. हर आन हँसी, हर आन खुशी,... ! ३०८
२. स्थितप्रज्ञके श्लोक ३१८

नक्षत्रोंकी छायामें

[दैनन्दिन, संस्मरण, सन्त-सान्निध्य]

दैनन्दिन

१. नक्षत्रोंकी छायामें

२. प्रार्थना . जीवनका पाथेय

३ सैर कर दुनियाकी गाफिल !

४ सावधानी . यात्राका पहला सूत्र

५ पडाव : डेरा . रैनबसेरा

६ कभी घी घना, कभी मुट्ठीभर चना

७ दिन नीके बीते जाते हैं !

•

नक्षत्रोंकी छायामें : १ :

यह नीला-नीला आकाश !

कितना सुन्दर, कितना मनोरम !

अनन्त काव्य भरा पड़ा है इसमें ।

चाहे जब देखिये, चाहे जिस दिशामें देखिये, आँखें थकनेका नाम न लेंगी । उल्टे वे अद्भुत शाति, अद्भुत आनन्दका अनुभव करेंगी ।

* * *

और नीले आकाशमें खिली ये तारिकाएँ ?

इनके सौंदर्यका तो कहना ही क्या है !

नीले पटपर जैसे किसीने छोटे-बड़े असख्य जगमगाते पुष्प बिखेर दिये हों । एकसे एक मनोहर, एकसे एक आकर्षक !

* * *

संध्या अपनी सुहावनी लाल चादर समेटकर जैसे ही निशारानीकी गोदमें जा बैठती है, वैसे ही आकाशमें नक्षत्रोंके मोती बिखर पड़ते हैं । मानो,

"नीले वितानके तले दीप बहु जागे !"

कोई आँख खोलकर देखे भी तो ! प्रकृति-नटीके इस अद्भुत सौंदर्य-पर मुग्ध हुए बिना न रहेगा ।

* * *

दुनियाकी निगाहमें अत्यन्त रूखे और अरसिक बापू रात-दिनके एक हजार चार सौ चालीस मिनट काममें व्यस्त रहते थे । दम मारने-की भी फुर्सत न मिलती थी उन्हें । उन बापूको भी बुढौतीमें आकाश-दर्शन-का शौक चर्राया । आश्रमवासियोंको अपनी सफाई देते हुए उन्होंने लिखा :

"आकाशका सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा तो अंतरमें अनेक बार उपजी, पर मैंने यह मान लिया था कि मेरे और काम मुझे इस ओर लगनेकी इजाजत न देंगे। . .... मुझे फुर्सत न मिली। १९३१ में कारावासके आखिरी महीनेमें यकायक शौक जगा। बाह्य दृष्टिसे जहाँ सहज ही ईश्वर रहता हो, उसका निरीक्षण मैं क्यों न करूँ? पशुकी तरह आँखें महज देखा करें, पर जिसे देखें, वह विशाल दृश्य ज्ञान-ततुतक न पहुँचे, यह कैसी दयनीय बात है! "

बापू आकाशपर लट्टू हुए सो हुए।

उसके एक-एक गुणपर वे फिदा हो उठे।

उसकी व्यापकतापर कहने लगे:

"पृथ्वी अनन्त आकाशसे घिरी हुई है। हम अपने चारों ओर जो आसमानी रगकी चीज देखते हैं, वह आकाश है। पृथ्वीकी सीमा है। वह ठोस गोला है। उसकी धुरी ७,९०० मील लम्बी है, पर आकाश पोला है। उसकी धुरी मानें, तो उसका कोई ओर-छोर न होगा। इस अनन्त आकाशमें पृथ्वी एक रजकणके समान है और उस रजकणपर हम तो रजकणके भी ऐसे तुच्छ रजकण हैं कि उसकी कोई गिनती ही नही हो सकती। इस प्रकार शरीररूपसे हम शून्य हैं, यह कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति या अल्पोक्ति नही। हमारे शरीरके साथ तुलना करते हुए चीटीका शरीर जितना तुच्छ है, पृथ्वीके साथ तुलना करनेमें हमारा शरीर उससे हजारोंगुना तुच्छ है। तब उसका मोह क्यो हो? वह छूट जाय, तो शोक क्यों करें?

"पर इतना तुच्छ होते हुए भी इस शरीरकी भारी कीमत है, क्योंकि वह आत्माका और हम समझें तो परमात्माका—सत्यनारायणका—निवासस्थान है।

"यह विचार अगर हमारे दिलमें बसे, तो हम शरीरको विकारका भाजन बनाना भूल जायँ, पर अगर हम आकाशके साथ ओतप्रोत हो जायँ और उसकी महिमा तथा अपनी अधिकाधिक तुच्छताको समझ लें, तो हमारा सारा घमड चूर हो जाय।"

आकाशकी व्यापकतासे कैसा सुन्दर निष्कर्ष !

*　　*　　*

अब लीजिये आकाशकी, नक्षत्रोंकी उपयोगिता :

"खगोल-वेत्ताओंने बहुत खोज की है, फिर भी हमारा आकाश-विषयक ज्ञान नहींके बराबर है। जितना है, वह हमें स्पष्ट रीतिसे बताता है कि आकाशमें सूर्यनारायण एक दिनके लिए भी अपनी अतंद्रित तपश्चर्या बन्द कर दें, तो हमारा नाश हो जाय। वैसे ही चन्द्र अपनी शीतल किरणें लौटा लें, तो भी हमारा वही हाल होगा।

"...... अपने पास रहनेवाली अनेक वस्तुओंके गुण-दोष हम जानते हैं। इससे कभी-कभी हमें उनसे विरक्ति होती है। दोषोंके स्पर्शसे हम दूषित भी होते हैं। आकाशके देवगणके हम गुण ही जानते हैं। उन्हें निहारते हम थकते नही। उनका परिचय हमारे लिए हानिकर हो ही नही सकता।"

*　　*　　*

और आकाशका नाटक ?

बापू कहते हैं : "बच्चोंको और बडोंको भी नाटक और उनमें दिखाये जानेवाले दृश्य बहुत रुचते हैं, पर जिस नाटककी योजना प्रकृतिने हमारे लिए आकाशमें की है, उसे मनुष्य-कृत एक भी नाटक नही पा सकता। फिर, नाट्यशालामें आँखें बिगडती हैं, फेफडोंमें गन्दी हवा जाती है, और आचरणके भी बिगड़नेका बहुत डर रहता है। इस प्राकृतिक नाटकमें तो लाभ ही लाभ है। आकाशको निहारनेसे आँखोंको शांति मिलती है। आकाशके दर्शनके लिए बाहर रहना ही होगा, इसलिए फेफडोंको शुद्ध हवा मिलेगी। आकाशको निहारनेसे किसीका आचरण बिगड़ता आजतक नही सुना गया। ज्यों-ज्यों इस ईश्वरीय चमत्कारका ध्यान किया जाता है, त्यों-त्यों आत्माका विकास ही होता है। जिसके मनमें रोज रातको सपनेमें, मलिन विचार आते हों, वह बाहर सोकर आकाश-दर्शनमें लीन होनेका यत्न कर देखे। उसे तुरन्त निर्दोष निद्राका आनन्द मिलेगा।

आकाशमें स्थित दिव्यगण मानो ईश्वरका मूक स्तवन कर रहे हों। हम जब इस महा-दर्शनमें तन्मय हो जायँगे, तब हमारे कान उसे सुनते जान पड़ेंगे। जिसके आँखें हों, वह इस नित्य नवीन नृत्यको देखे। जिसके कान हों, वह इन अगणित गवर्वोंका मूक गान सुने।"

* * *

आकाश-दर्शनकी चर्चा करते हुए बापू लिखते हैं :

"मेरे लिए तो ये नक्षत्र ईश्वरके साथ सम्बन्ध जोडनेके एक साधन हो गये हैं।

"हमें चाहिए कि आकाश जैसा स्वच्छ है, वैसे हम स्वच्छ बनें। नक्षत्र जैसे ईश्वरका मूक स्तवन करते जान पडते हैं, वैसे हम करें। वे जैसे अपना रास्ता एक क्षणके लिए नही छोडते- वैसे हम भी अपना कर्तव्य न छोडें।"

कैसा उदात्त, प्रेरक सन्देश !

काश, हम नक्षत्रोंकी भाँति स्वच्छ, पवित्र, निर्मल, तेजस्वी और कर्तव्य-परायण बन पाते !

* * *

नक्षत्रोंका यह खेल केवल रात्रिमें ही चलता हो सो नही, दिनमें भी उनकी आंख-मिचौनी चलती है। हाँ, यह अवश्य है कि शामसे सवेरे-तक इस खेलमें बडी रौनक रहती है। दिनमें भगवान् भास्कर अपनी कलासे सबको ढँक लेते हैं।

पर हम यह क्यों भूल जायें कि सूर्य भी तो अतत. एक नक्षत्र ही है।

और ज्योतिषी तो यह तक फतवा देते हैं कि हमारी सारी जीवन-यात्रा नक्षत्रोंकी छायामें ही चलती रहती है।

* * *

आकाशकी गोदीमें डुबकी लगानेवाले, उछल-कूद मचानेवाले, गुल्ली-डंडा, आंख-मिचौनी और तरह-तरहके खेल खेलनेवाले छोटे-बडे असख्य नक्षत्र कितने सुहावने लगते हैं, इसका मजा तो वही ले सकता है, जो इस मजेदार खेलमें शरीक हो।

कोई मुजायका नही कि आप इन नक्षत्रोंसे परिचित नहीं। आप नही जानते कि कौन बुध है कौन मंगल, कौन गुरु है कौन शुक्र, कौन अश्विनी है कौन भरणी, कौन मृग है कौन मघा, कौन स्वाती है कौन चित्रा, कौन वशिष्ठ है कौन अरुन्धती, कौन शर्मिष्ठा है कौन देवयानी; चिन्ता न करिये, कुछ दिन तटस्थ दर्शककी भाँति इनका तमाशा देखिये भी तो! फिर तो धीरे-धीरे आपको खुद इतनी उत्सुकता बढ़ेगी कि आप रह नहीं सकते इन जगमगानेवाले तारोंसे परिचय किये बिना!

* * *

एक बार नक्षत्र-प्रेमी काका साहब[1]को आकाशकी ओर निहारते देख एक ग्रामीण बालक पूछ बैठा: "आप ऊपर क्या देखते रहते हैं?"

"आकाशके तारे देखता हूँ।"—सुनकर बालक बोला: "इनमें देखनेकी कौन चीज है? तारे ही तो हैं। रोज उगते हैं, रोज अस्त होते हैं। इन्हें देखनेसे क्या मिलनेवाला है? क्यों व्यर्थ सिर तान-तानकर हैरान होते हैं?"

कुछ दिन बाद इसी बालकको काका शहरमें ले आये घरका काम करनेके लिए और तुकारामके शब्दोंमें—"*दया करणें जे पुत्रासी। तेचि दासा आणि दासी।*"—उसे बेटेकी तरह प्रेमसे पालने लगे।

और पन्द्रह दिन बाद यह बालक इनसे आकर बोला: "मैं न रहूँगा यहाँ। जाने दीजिये मुझे।"

"क्यों?" पूछने पर बोला: "यहाँ मुझे सब सुख है, पर न तो ढोरोंके पीछे दौड़नेका सुख है और न सोते समय तारे देखनेका!"

"क्यों, तुम्हीं तो कहते थे कि इन तारोंमें क्या रखा है?"

"सो तो है।"—वह बोला: "पर तारे रहते हैं तो उन्हें देखता ही हूँ। उनके बिना मुझे अच्छा नहीं लगता। तबूरे बिना जैसे गाया नहीं जाता, वैसे ही तारोंके बिना मुझसे सोया नहीं जाता। रोज रातमें जागता

१. काका कालेलकर: "जीवननो आनन्द", लेख—"ताराओनुं सख्य"।

हूँ तो तारे नहीं दीख पडते। मुझे अच्छा नही लगता। जैसे-तैसे पन्द्रह दिन तो मैंने काढे, पर, अब मुझे जाने दीजिये।"

ऐसा होता है आकाश-दर्शनका नशा।

* * *

विनोवा कहते हैं :

"परमेश्वरने कितना गाभीर्य और सौंदर्य रात्रिमें भरा है! आकाशमें प्रकृतिकी सुन्दर लीला देखनेको मिलती है। अमावस्याकी रातमें आकाशमें पूरी लोकशाही रहती है। अप्रतिम आजादीका दृश्य देखनेको मिलता है। छोटा-सा तारा भी अपना प्रकाश फैला सकता है। कितना मधुर सगीतमय वातावरण होता है। भगवान्ने रात्रि शाति और ध्यानके लिए वनायी है। लेकिन शहरमें यह कुछ नही होता। रात्रिमें देरतक वत्तियाँ सितारोंके साथ मत्सर करती रहती हैं। न मगल, न शुक्र, न रवि देखनेको मिलता है। कितनी सुन्दर नक्षत्र-माला! देखकर ही हृदय पवित्र हो सकता है। शास्त्रकारोंने कहा है कि पापक्षालनके लिए नक्षत्र-दर्शन करना चाहिए।"

* * *

वावा (विनोवा) तो रोज ही खुले आकाशके नीचे सोते हैं। उनके साथ-साथ दो-चार अन्तेवासी भी हर ऋतुमें आकाश-दर्शनका आनन्द लेते हैं, सब भले ही न लें। पर नक्षत्रोंसे कुछ-न-कुछ मैत्री तो प्रायः सब लोग कर लेते हैं।

सवेरे डेरा कूच होते ही जहाँ मौज आती है, वावा खड़े हो जाते हैं और बुनियादी तालीमका 'क्लास' लेने लगते हैं। "……… यह देखो श्रवण है, यह उसकी माँ, यह उसका पिता और वे हैं राजा दशरथ, वह मारा उन्होंने तीर। "

* * *

अँधेरी रातमें नक्षत्रोंकी वहार देखते वनती है। चाँदनी रातमें चन्द्रमा द्वारा कुछ नक्षत्र ढँक जाते हैं जरूर, फिर भी आकाशकी थालीकी शोभा अनोखी ही रहती है।

ये तरह-तरहके बेल-बूटे अनादिकालसे मानवको तरह-तरहकी प्रेरणाएँ देते आये हैं। *"चन्द खिलौना लैहों री मैया, चन्द खिलौना लैहों।"* —कहते सूर अघाते नही। *"सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रंक"*—कहते तुलसी थकते नही। और 'साकेत' की विरहिणी उर्मिला सारी रात खुशामद करती रहती है :

"आ जा मेरी निदिया गूँगी।
आ मैं सिर आँखोंपर लेकर चन्द खिलौना दूँगी।"

लक्ष्मीके सहोदर चन्दामामा, केवल बच्चोंके लिए ही आकर्षणका केन्द्र नही हैं, हम सबके लिए हैं। उनकी नक्षत्रोंकी, यह जमात युग-युगसे मानवको आकर्षित करती आ रही है।

बड़े और बूढ़े, छोटे और सयाने, स्त्री और पुरुष—सबके लिए आकाश एक सुन्दर आवाहन है, मनोरम आकर्षण है, प्रेरक निमन्त्रण है।

हम उसकी रूप-राशिका आनन्द लेनेके लिए आँखें उस ओर ले भी तो जायें।

"लुत्फे मय तुझसे क्या कहूँ जाहिद,
हाय कम्बख़्त, तूने पी ही नहीं।"

प्रार्थना : जीवनका पाथेय : २ :

एक : दो : तीन ।

जाडा हो, गर्मी हो, बरसात हो—रातमें घड़ीका काँटा तीनपर पहुँचा नही कि बिस्तर छोडनेकी घटी बज जाती है।

उडीसा हो, हैदराबाद हो, आध्र हो—बाबा जहाँ घूमते हैं, वहाँ प्रातःकाल तीन बजे घटी बजती ही है। बजानेवाले ईश्वरलाल व्यास हों, कोदण्डराम हों, अनन्तलक्ष्मी हो, रामलिगम् रेड्डी हों—जो हों: पहली घटी तीन बजे बजनी ही चाहिए।

*　　　　*　　　　*

दैनिक कृत्यसे निपटते-निपटाते, दातुन करते-कराते साढे तीन बज जाते हैं। गोविन्दनकी तरह एकाध भाई इस बीच स्नान भी कर डालते हैं। यों हाथ-मुंह धोकर तो प्रार्थनाके लिए सभी तैयार हो ही जाते हैं।

*　　　　*　　　　*

प्रार्थना हमारे जीवनका पाथेय है।

बाबा कहते हैं : स्नान, भोजन और निद्रा—तीनोंकी खूबी है प्रार्थनामें।

स्नानसे शरीर शुद्ध होता है : प्रार्थनासे मन।

भोजनसे शरीर पुष्ट होता है : प्रार्थनासे मन।

निद्रासे शरीरको उत्साह और विश्राम मिलता है . प्रार्थनासे मनको।

अर्थात्

स्नान, भोजन और निद्रासे शरीरका जो काम बनता है, प्रार्थनासे मनका वही काम बनता है।

प्रार्थनासे मिलती है—मानसिक निर्मलता।

प्रार्थनासे मिलता है—मानसिक पोषण।

प्रार्थनासे मिलती है—मानसिक शाति और विश्राम।

शांति, शुद्धि और पुष्टि : तीनोंका उद्‌गम है प्रार्थना।

* * *

बाबा तो कोई ढाई बजे ही उठ जाते हैं। प्रार्थनाके लिए अन्तेवासी जब उनके चरणोंमें उपस्थित होते हैं, तो वे चरखा कातते ही मिलते हैं। प्रार्थनाकी घंटी बजी कि वे कातना बन्दकर आसनपर आ बैठते हैं। कभी मौज हुई, तो खड़े-खड़े ही प्रार्थना करने लगते हैं। खड़े-खड़े प्रार्थनाकी बात बाबाने पण्डित जवाहरलाल नेहरूसे सीखी है। न उसमें आसनकी झंझट, न समतल या सूखी भूमिकी।

* * *

नक्षत्रोंकी शीतल छायामें हम सब बैठे हैं। ब्राह्म मुहूर्तकी पावन वेला है। चारों ओर शांतिका साम्राज्य है। सब शांत, मौन और प्रार्थनाके लिए एकाग्र-चित्त हैं। ऐसे पवित्र वातावरणमें वेदकी पावन ऋचाओंसे प्रार्थनाका श्रीगणेश होता है :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* * *

"हरिः ॐ"के उपरान्त, सन्धि-विच्छेदके साथ, ईशावास्योपनिषद्‌का पाठ होता है।

कितना पवित्र और प्रेरक है यह छोटा-सा उपनिषद्।

जीवनके गहनतम रहस्योंसे ओतप्रोत। प्रकृतिके कण-कणमें बिखरी प्रभुकी सत्ताका ज्ञान करानेवाला, जीवनको ऊपर उठानेवाला वेदका यह छोटा-सा अंश।

कहता है :

"कोई वस्तु ईश्वरसे खाली नहीं। वही एक सबका मालिक है। सब उसीका है। हम उसीको सर्वस्व समर्पण करके, जो मिले, उसीको प्रसाद-रूपमें ग्रहण करें। मत्सर न करें। सतत कर्म-रत रहें। दूसरों-

पर बोझ न बनें। पराये धनकी लालसा न रखें। विकासके लिए कभी-कभी इन्द्रियोंको खुला छोड़ दें और कभी-कभी निरोधके लिए उन्हें बन्द रखें। आवश्यकका ज्ञान प्राप्त करें, अनावश्यकका अज्ञान ही बना रहने दें। गुणोंकी सम्भूति करें, दोषोंकी असम्भूति। मोहका पर्दा हटाकर सत्यका दर्शन करनेके लिए प्रयत्नशील हों। "सोऽहं" की अनुभूति करें। बाहरी भेदोंका त्यागकर आमरण साधना करते रहें। प्रभु हमारा जीवन सरल बनाये।"

*　　　　*　　　　*

कितने उच्च, पवित्र और प्रेरक भाव!

*　　　　*　　　　*

ईशावास्यका यह पाठ इधर कुछ दिनोंसे अन्तेवासियोंको अभ्यास करानेकी दृष्टिसे संस्कृतमें चलने लगा है। उत्तरप्रदेश, बिहार आदि हिन्दी भाषाभाषी प्रदेशोंमें जब बाबा घूमते थे, तो कविवर सियारामशरण द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद चलता था। पर यह तो सभी मानेंगे कि मूल शब्दोंका आनन्द कुछ दूसरा ही होता है। अनुवाद तो आखिर अनुवाद ही ठहरा।

ऋषियोंकी तपोपूत वाणीका अनुपम प्रभाव मूलमें भरा रहता है। रोम-रोम उस पवित्रतामें डूब जाता है!

*　　　　*　　　　*

प्रार्थनामें सर्व-धर्म-स्मरण भी किया जाता है:

"ॐ तत्सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू।
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू॥
ब्रह्म मज्द तू, यह्व शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू।
रुद्र-विष्णु तू, राम-कृष्ण तू, रहीम ताओ तू॥
वासुदेव गो-विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू।
अद्वितीय तू, अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू॥"

३६ नामोंकी इस नाम-मालाकी भी अपनी एक कहानी है।

बाबाका कहना है कि वे वय से भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंकी उपासना करते रहे हैं। जिस समय जिस जिस धर्मकी उपासना की, उस-उस समय उस-उस धर्मके विशिष्ट नामोंका चिन्तन करते रहे। लेकिन जब वे हृषीकेशसे हरिद्वार जा रहे थे, तो रास्तेमें काली-कमलीवालोंने उन्हें चन्दनकी एक मणिमाला भेट की। बाबा तकली और चरखेसे ही मालाका काम चलाते हैं। उससे उनकी एकाग्रता तुरत हो जाती है। पर जब माला मिल ही गयी, तो रातको वे सोते समय उसे पास रखने लगे। साथ-साथ कुछ चिन्तन भी चलता। और उस चिन्तनका ही सुपरिणाम हैं ये तीन श्लोक। इनकी खूबी यह है कि इनमें सभी धर्मोंका समावेश हो गया है और हिन्दू-धर्मके बहुत-से पंथोंका भी !

* * *

रामधुन तो प्रार्थनाका अनिवार्य अंग है ही।

बिना रामधुनके प्रार्थना कैसी :

"राजा राम राम राम। सीता राम राम राम ॥
राजा राम राम राम। सीता राम राम राम ॥"

और रामधुनके बाद—सबसे अन्तमें होता है एकादश व्रतोंका पाठ :

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीर-श्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्व-धर्म-समानत्व स्वदेशी स्पर्श-भावना।
विनम्र व्रत-निष्ठासे ये एकादश सेव्य हैं ॥

बाबा कहते हैं कि "ये व्रत हमें हमारे पूर्वजोंने सिखाये थे, लेकिन बीचमें जरा हम भूल गये। तो महात्मा गांधीने फिरसे हमें याद दिलायी। उन्होंने ये ग्यारह व्रत हमारे सामने रखे। व्रतका अर्थ है : "ऐसे नियम, जो जिन्दगीभर हमको मदद दे सकते हैं।" ये नियम हमको बचाते हैं, हमारी रक्षा करते हैं, हमारा पालन करते हैं। शास्त्रका वाक्य है : "*धर्मो रक्षति रक्षितः।*" धर्मके ये ग्यारह नियम हमारा अच्छी तरह पालन कर सकते हैं, अगर हम इनका पालन करते रहें।"

पर बोझ न बनें। पराये धनकी लालसा न रखें। विकासके लिए कभी-कभी इन्द्रियोंको खुला छोड दें और कभी-कभी निरोधके लिए उन्हें बन्द रखें। आवश्यकका ज्ञान प्राप्त करें, अनावश्यकका अज्ञान ही बना रहने दें। गुणोंकी सम्भूति करें, दोषोंकी असम्भूति। मोहका पर्दा हटाकर सत्यका दर्शन करनेके लिए प्रयत्नशील हों। "सोऽहं" की अनुभूति करें। बाहरी भेदोंका त्यागकर आमरण साधना करते रहें। प्रभु हमारा जीवन सरल बनाये।"

* * *

कितने उच्च, पवित्र और प्रेरक भाव !

* * *

ईशावास्यका यह पाठ इधर कुछ दिनोंसे अन्तेवासियोंको अभ्यास करानेकी दृष्टिसे संस्कृतमें चलने लगा है। उत्तरप्रदेश, बिहार आदि हिन्दी भाषाभाषी प्रदेशोंमें जब बाबा घूमते थे, तो कविवर सियारामशरण द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद चलता था। पर यह तो सभी मानेंगे कि मूल शब्दोंका आनन्द कुछ दूसरा ही होता है। अनुवाद तो आखिर अनुवाद ही ठहरा।

ऋषियोंकी तपोपूत वाणीका अनुपम प्रभाव मूलमें भरा रहता है। रोम-रोम उस पवित्रतामें डूब जाता है !

* * *

प्रार्थनामें सर्व-धर्म-स्मरण भी किया जाता है :

"ॐ तत्सत् श्री नारायण तू, पुरुषोत्तम गुरु तू।
सिद्ध बुद्ध तू, स्कन्द विनायक, सविता पावक तू॥
ब्रह्म मज़्द तू, यह्व शक्ति तू, ईशु-पिता प्रभु तू।
रुद्र-विष्णु तू, राम-कृष्ण तू, रहीम ताओ तू॥
वासुदेव गो-विश्वरूप तू, चिदानन्द हरि तू।
अद्वितीय तू, अकाल निर्भय, आत्मलिंग शिव तू॥"

२६ नामोंकी इस नाम-मालाकी भी अपनी एक कहानी है।

बाबाका कहना है कि वे वप से भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंकी उपासना करते रहे हैं। जिस समय जिस जिस धर्मकी उपासना की, उस-उस समय उस-उस धर्मके विशिष्ट नामोंका चिन्तन करते रहे। लेकिन जब वे हृषीकेशसे हरिद्वार जा रहे थे, तो रास्तेमें काली-कमलीवालोंने उन्हें चन्दनकी एक मणिमाला भेट की। बाबा तकली और चरखेसे ही मालाका काम चलाते हैं। उसमे उनकी एकाग्रता तुरत हो जाती है। पर जब माला मिल ही गयी, तो रातको वे सोते समय उसे पास रखने लगे। साथ-साथ कुछ चिन्तन भी चलता। और उस चिन्तनका ही सुपरिणाम हैं ये तीन श्लोक। इनकी खूबी यह है कि इनमें सभी धर्मोंका समावेश हो गया है और हिन्दू-धर्मके बहुत-से पंथोंका भी !

* * *

रामधुन तो प्रार्थनाका अनिवार्य अंग है ही।

बिना रामधुनके प्रार्थना कैसी :

"*राजा राम राम राम। सीता राम राम राम ॥*
राजा राम राम राम। सीता राम राम राम ॥"

और रामधुनके बाद—सबसे अन्तमें होता है एकादश व्रतोंका पाठ :

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीर-श्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्व-धर्म-समानत्व स्वदेशी स्पर्श-भावना।
विनम्र व्रत-निष्ठासे ये एकादश सेव्य हैं ॥

बाबा कहते हैं कि "ये व्रत हमें हमारे पूर्वजोंने सिखाये थे, लेकिन बीचमें जरा हम भूल गये। तो महात्मा गांधीने फिरसे हमें याद दिलायी। उन्होंने ये ग्यारह व्रत हमारे सामने रखे। व्रतका अर्थ है : "ऐसे नियम, जो जिन्दगीभर हमको मदद दे सकते हैं।" ये नियम हमको बचाते हैं, हमारी रक्षा करते हैं, हमारा पालन करते हैं। शास्त्रका वाक्य है : "धर्मो रक्षति रक्षितः।" धर्मके ये ग्यारह नियम हमारा अच्छी तरह पालन कर सकते हैं, अगर हम इनका पालन करते रहें।"

ये एकादश व्रत हम साध लें, जीवनमें इनका आचरण करने लगें, तो केवल हमारा ही नहीं, हमारे सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका जीवन ऊपर उठ जाय ।

प्रात -साय प्रार्थनामें हम रोज इनका पाठ इसीलिए करते हैं कि ये हमारे जीवनमें इतने भिद जायें, इतने गहरे पैठ जायें कि हम इनके पावन प्रतीक बन जायें ।

* * *

प्रातःकालीन प्रार्थनामें ईशावास्य, नाम-माला, रामधुन और व्रत-पाठके अलावा, इस 'रुटीन' के अलावा, एक बडी आकर्षक वस्तु होती है—भजन ।

अंतेवासियोंमेंसे कभी कोई भाई, कभी कोई बहन भजन गाती है ।

प्रार्थनाके इस भव्य मन्दिरमें कभी तुलसी आ विराजते हैं तो कभी सूर, कभी कबीर तो कभी नानक, कभी मीरा तो कभी रैदास, कभी दादू तो कभी दरिया, कभी एकनाथ तो कभी तुकाराम, कभी नामदेव तो कभी रामदास, कभी नरसी मेहता तो कभी निष्कुलानन्द । कभी कोई सन्त आ बैठता है, कभी कोई ।

सब धर्मोंका, सब भाषाओंका यहाँ स्वागत है ।

इसीलिए तो कभी हमें हिन्दी भजन सुननेको मिलता है, कभी उर्दू, कभी मराठी, कभी गुजराती, कभी बँगला, कभी उड़िया, कभी तेलुगु, कभी तमिल, कभी मलयालम, कभी कन्नड, कभी पजाबी, कभी सिंधी, कभी संस्कृत, कभी अरबी, कभी फारसी, कभी लैटिन, कभी अंग्रेजी, कभी जापानी । कभी कोई संस्कृत स्तोत्रोंका पाठ करता है, तो कभी कोई कुरानकी आयतोंका । कभी कोई गुरुग्रन्थका पाठ करता है तो कभी कोई बाइबिलका ।

* * *

कभी मालती देवी गाती हैं :

"हे परमेश्वर निखिल परात्पर
मंगल-मय चिर सुन्दर हे।...... .."

कभी वालभाई गाते हैं :

"जेथें जातों तेथें तूं माझा सांगाती
चालविसी हातीं धरूनियां।" "

कभी अच्युतभाई गाते हैं :

"गुरु कृपांजन पायो मेरे भाई
राम विना कछु जानत नाहीं।
अंतर रामहि वाहिर रामहि
जह देखों तहँ राम ही रामहि।
जागत रामहि सोवत रामहि
सपनेमें देखों राजा रामहि।...... .... ."

कभी वसी गाता है :

"प्रेम-मय भगवान्।
प्रेमिक तुमे, प्रेमहिं तव श्रेष्ठ दान।
प्रेमे झरा उठ वरषा-धारा।
जा परसे हसि उठइ धरा।
प्रेमे उएँ शशि, प्रेमे दिवाकर।
प्रेम वितरे समिरण॥......."

कभी वसन्ता बहन गाती है :

"हे गोविन्द राखो शरण
अव तो जीवन हारे।
नीर पीवन हेतु गयो सिंधुके किनारे,
सिंधु वीच वसत ग्राह, चरन धरि पछारे॥..."

कभी महेश गाते हैं :

"अखिल ब्रह्माण्डमाँ एक तुं श्रीहरि
जूजवे रूपे अनंत भासे।
देहमाँ देव तुं, तेजमाँ तत्त्व तुं,
शून्यमाँ शब्द थई वेद वासे ॥...... "

कभी मीरा गाती है :

"अमृत और जहर दोनों हैं
सागरमें एक साथ।
मंथनका अधिकार है सबको
फल प्रभु तेरे हाथ॥
तेरे काँटोंसे भी प्यार
तेरे फूलोंसे भी प्यार।
जो भी देना चाहे दे दे
दुनियाके तारनहार ॥"

* * *

सायकालीन प्रार्थनामें बाबा स्थितप्रज्ञके लक्षणोंका पाठ करते हैं— प्रान्तीय भाषामें। फिर एकादश व्रतोंके बाद वे अपना प्रवचन शुरू करते हैं।

पर, उडीसासे निकलनेके बाद बाबाने साय-प्रार्थनामें ज्ञानीके लक्षणोंके पहले पाँच मिनट मौनका श्रीगणेश किया है।

पहली अक्तूबर,'५५ से सायकालीन प्रार्थनामें उन्होंने रामधुन छोडकर उसकी जगह मौन शुरू किया है। "ऐसा क्यों ?"—पूछनेपर उन्होंने कहा : "पहले हम रामधुन करते थे और लोग उसमें भाग लेते थे, लेकिन धीरे-धीरे हमें कुछ अनुभव आये और जैसे-जैसे साधनाका अनुभव बढता गया, वैसे-वैसे नये-नये अनुभव आये और हमने अपने मनमें काफी सोचा। आखिर हम इस निर्णयपर आये कि सार्वजनिक सभामें जहाँ आम जनता

इकट्ठा होती है, वहां मौनसे बढकर कोई प्रार्थना ही नही हो सकती। हमें परमेश्वरके गुणोंका चिन्तन करनेकी आदत होनी चाहिए। परमेश्वरका नाम तो हम अपने मनमें लेते ही हैं, जो जिसको भाता है। नामकी खूबी यह है कि वह माताके समान काम करता है। यह नाम तो अपनी-अपनी भाषामें लिया जाता है। परमेश्वरके अनन्त नाम हैं। अपने-अपने प्रयत्न और अभ्यासका जो नाम होगा, वही नाम मनुष्यके लिए याद करना आसान होगा। इस वास्ते किसी खास नामका हम आग्रह न रखें और मौनमें सब लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार प्रभुका नाम लें। वैसे ईश्वरके नाम अनेक हैं, परन्तु परमेश्वर वही है और उसके गुणोंका हमें चिन्तन करना है। इस तरह हम ध्यान करते हैं, तो ईश्वर-स्मरणका पूरा और सच्चा आनन्द मिलता है।

"ईश्वरका नाम हम इसलिए लेते हैं कि हमारा गुण-विकास हो। हमारे हृदयकी शुद्धि हो, हमारा बल बढे, आत्म-विश्वास प्राप्त हो। हृदयका बल बढ़ानेके काममें परमेश्वरके नामका उपयोग हो सकता है। और वही सच्चा, असली उपयोग है। इसलिए हमने तय किया कि सब लोग नाम तो अपना-अपना लें, लेकिन चिन्तन गुणोंका ही करें, ताकि उन गुणोंका स्पर्श हमारे हृदयको हो।

"रामधुनकी भूख कुछ लोगोंको है, लेकिन जैसे नदियां समुद्रमें डूब जाती हैं, वैसे ही मौनमें सब उपासना एकत्र हो जाती है, यहांतक कि जो मनुष्य परमेश्वरको "नास्ति" रूपमें देखता है, 'हमसे भिन्न कोई मनुष्य नही है', दुनियामें जो ऐसा मानता है, वह भी उपासना कर सकता है।"

* * *

जनताको बाबा समझाते हैं :

"अब पांच मिनट हम भी नही बोलेंगे और आप भी नही बोलेंगे। मौन प्रार्थनामें हर मनुष्य अपनी-अपनी मनोभावनाके अनुरूप परमेश्वरका चिन्तन करेगा। कोई रामका नाम लेगा, कोई विष्णुका; कोई शिवका, कोई अल्लाहका; कोई गॉडका तो कोई गोविन्दका। मौन प्रार्थनामें हम

केवल अन्तर्यामी परमेश्वरका ध्यान करेंगे। हमारा मूल रूप है आत्मा, जो अत्यन्त शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, निर्लेप और शान्त है। उस परमेश्वरके रूपका या उसके गुणोंका हम ध्यान करेंगे।' ... "

मौनकी महिमा अपार है।

शातिके ये पावन क्षण मानवको कितना ऊँचा उठाते हैं, इसकी अनुभूति तो कोई भी आसानीसे कर सकता है।

सारी सभा मौन है। शात है। चुप है। सब मेरुदण्डको सीधा कर एकाग्रचित्तसे प्रभुके पावन गुणोंका स्मरण कर रहे हैं, आँख मूँदकर।

Pin Drop Silence!

सूई भी गिरे तो खटका हो—ऐसी शाति।

बच्चे भी चुप, माताएँ भी। बहनें भी चुप, भाई भी। छोटे भी चुप, बड़े भी।

अद्भुत शाति! अद्भुत एकागता! अद्भुत मस्ती!

और ऐसे ही समय तो मौनमें डूबकर हम प्रार्थनाका वास्तविक आनन्द पाते हैं।

भावुक हृदयकी यही तो पुकार है

"बेखुदी छा जाय ऐसी, दिलसे मिट जाये खुदी,
उनसे मिलनेका तरीका अपने खो जानेमें है।"

० ० ०

सैर कर दुनियाकी ग़ाफ़िल : २ :

"सैर कर दुनियाकी गाफिल
ज़िन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िन्दगी गर कुछ रही
तो नौजवानी फिर कहाँ ?"

वह भी कोई आदमी है, जो सैर न करे ?

जीवनका सच्चा आनन्द छिपा पडा है सैरमें ।

घूमनेमें जो आनन्द है, सैर-सपाटेमें जो मौज-मस्ती है, क्या कोई मुकाबिला करेगा उनका !

भ्रमणसे चित्त प्रसन्न होता है, हृदयकी कली खिलती है । प्रकृतिकी तरह-तरहकी मनोरम झाँकियाँ आँखोंके सामने आती हैं । भाँति-भाँतिके लोग देखनेको मिलते हैं । तरह-तरहके अनुभव प्राप्त होते हैं—कुछ खट्टे, कुछ मीठे ।

जीवनका अपार सौंदर्य भरा है सैरमें ।

* * *

सैरके साधन भी अनेक निकाल रखे हैं मनुष्यने ।

घोडेसे लेकर ऊँटतक, बैलगाडीसे लेकर हवाई-जहाजतक, रिक्शासे लेकर रेलगाड़ीतक, साइकिलसे लेकर मोटर-कारतक, इक्कासे लेकर टमटमतक, एकसे एक नफीस, एकसे एक बढिया, एकसे एक आकर्षक, एकसे एक आराम-देह ।

जिसकी जैसी औकात—मनुष्य उपयोग कर सकता है ।

* * *

लेकिन, ऐसा नहीं है कि सैर इन साधनोंपर ही, इन वाहनोंपर ही निर्भर करती हो ।

विना सवारियोंके भी सैर की जा सकती है और मजेमें की जा सकती है।

न हो आपके पास बैल या घोडा, न हो आपके पास ऊँट या खच्चर, न हो आपके पास रिक्शा या टमटम, न हो आपके पास साइकिल या फटफटिया, न हो आपके पास कार या जीप, रेल या हवाई-जहाज, फिर भी आप सैर कर सकते हैं। और जरूर कर सकते हैं।

जिस ज़मानेमें ये नाना प्रकारके वाहन नहीं थे, उस ज़मानेमें भी लोग सैरके लिए निकलते थे। और हजारों मीलकी सैरपर निकलते थे।

पैदल, पैदल, पैदल !!!

*　*　*

सच पूछिये तो यात्राका पूरा आनन्द पैदल चलनेमें ही है।

"He travels best, who travels on foot !"

पदयात्रा ही यात्राका सर्वोत्तम प्रकार है।

*　*　*

आयुर्वेद-शास्त्रमें पद-यात्राकी महिमा भरी पडी है।

आरोग्य-शास्त्रमें पद-यात्राकी प्रशस्ति भरी पडी है।

अनुभव-शास्त्रमें पद-यात्राकी प्रशंसा भरी पडी है।

*　*　*

प्रकृतिका आनन्द लूटना है, तो पैदल घूमिये।

स्वास्थ्य ठीक रखना है, तो पैदल घूमिये।

ज्ञान प्राप्त करना है, तो पैदल घूमिये।

देशकी असली तस्वीर देखनी है, तो पैदल घूमिये।

जनता-जनार्दनके साथ समरस होना है, तो पैदल घूमिये।

*　*　*

यह ठीक है कि पैदल घूमनेमें समय लगता है, देर लगती है, आजके वैज्ञानिक युगमें उसे 'पिछडा' माना जाता है, पर जीवनका सच्चा आनन्द तो उसीमें है।

"हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा।"

*　　　　*　　　　*

पैदल आप अकेले घूम सकते हैं।

दुकेले घूम सकते हैं।

दस, पचास, हजार आदमियोंके साथ घूम सकते हैं।

हर बार आपको अनोखे अनुभव मिलेंगे।

भगवान्‌के नाना रूप आपके सामने आयेंगे।

सबसे आप परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

सबके दुःख-सुखमें आप शरीक हो सकते हैं।

सारांश, मानवके अधिकतम विकासका साधन है—पद-यात्रा।

*　　　　*　　　　*

पद-यात्रामें लगनेवाला समय व्यर्थ नही जाता।

पद-यात्रामें लगनेवाली शक्ति बेकार नही जाती।

पद-यात्रामें मिलनेवाला अनुभव ही जीवनका और जगत्‌का सच्चा अनुभव होता है।

*　　　　*　　　　*

तभी तो हमारे साधु-सन्यासी, हमारे धर्मोपदेशक, हमारे तीर्थयात्री अनादिकालसे पैदल घूमते आये हैं। और इसीलिए तो विनोबा कहते हैं:

"पैदल प्रवासमें कौड़ीका खर्च नही आता। एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जाना हो और परिचय करना हो, तो उसके लिए पद-यात्रासे बढकर बेहतर तरीका दूसरा हो नहीं सकता। दो-दो, तीन-तीन महीने अपने यहाँके नौजवान यात्रा करें तो निरीक्षण बढेगा, प्रेमभाव बढेगा, ज्ञान-प्रचार भी बढेगा। इस तरहसे अपने देशमें लोग घूमते थे। नानक, नामदेव, शंकराचार्य, रामानुज, चैतन्य महाप्रभु ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं।"

*　　　　*　　　　*

पद-यात्राको चैतन्यका लक्षण बताते हुए बाबा कहते हैं:

"आप यह कल्पना मत करिये कि इससे आप पिछड़ जायेंगे। यह डर अब छोड़ दीजिये। रेलमें पार्सल बनकर जानेमें चैतन्यका लक्षण नही है। चैतन्यका लक्षण पैदल चलना ही है। मनुष्य दीर्घायु बनेगा। पैदल चलनेमें समय जायगा, तो आयुवृद्धि भी होगी। साइकिलपर चलनेवालेकी पीठ कमान बन जाती है। जो पैदल चलता है, वह दीर्घायु होता है। इसलिए देशकी यात्रा पैदल करनी चाहिए। अपने देशमें काशीका मनुष्य चाहता था कि मैं रामेश्वर जाऊँ और समुद्रका जल लाकर भगवान्का अभिषेक करूँ। रामेश्वरमें रहनेवाला काशीकी गगा देखनेकी इच्छा करता था। ऐसी प्रेरणा इस देशमें थी क्योंकि देश एक राष्ट्र है, ऐसा मानते थे।"

पद-यात्राका आनन्द वही जानता है, जिसे उसका सौभाग्य प्राप्त होता है। यों लोग चलती रेलसे भी सैर-सपाटेका आनन्द लेते हैं, कैमरा और रजतपटसे भी घूमनेका शौक पूरा करनेकी चेष्टा करते हैं। पर *'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगुआ तेली'!*

तस्वीर तो तस्वीर, असली चीज असली चीज।

*　　*　　*

खुला आकाश।

खुली प्रकृतिकी गोद।

कही पर्वत, कही सागर।

कही नदी, कही तालाब।

कही बालूका मैदान, कही ऊसर और बजर।

कहीं चिकनी-चिकनी बडी-बडी चट्टानें, कही ककरीली और पथरीली जमीन।

कहीं सूखे मैदानमें खडा एकाकी पेड! मानो, कहता है कि भगवान सर्वत्र खड़े हैं हमारी रक्षाके लिए!

जिधर देखिये, मन मस्त हो उठता है।

जिस सिम्त नजर कर देखे हैं,
उस दिलवरकी फुलवारी है!
कहीं सब्जीकी हरियाली है,
कहीं फूलोंकी गुलकारी है!!

* * *

१९५५ की पहली अक्तूबर।

उडीसासे निकलकर हमने आंध्रमें प्रवेश किया ही था। शामको लम्बे-चौड़े सुरम्य मैदानमें प्रार्थना-सभाका आयोजन था।

सामने ऊँचे-नीचे पहाड।

बाबा गद्गद हो उठे।

बोले :

"चारों ओर ये छोटे-बडे पहाड। ये पहाड क्या करते हैं? ये अपने पास कोई चीज नहीं रखते। जो कुछ पानी गिरता है, वह पहाडोंकी वजहसे खिचकर आता है। अधिकसे अधिक वर्षा पहाड़ोंपर होती है, लेकिन यह साराका सारा पानी पहाड़ ठेल देते हैं, नदियाँ बहती हैं। परमेश्वरकी कृपा जिनपर हुई है, उनका धर्म इन पहाड़ोंके जैसा है। जिनके पास अधिक बुद्धि है, जिन्हें अधिक शक्ति मिली है, उनका यह काम है कि वे अपनी बुद्धि और शक्ति दूसरोंको दें। ऐसा यदि वे करते है, तो उनकी ऊँचाई शोभा देती है। अगर ये पहाड सारा पानी अपने पास रख लेते, तो हमें इनसे द्वेष होता और फिर हम द्वेषसे इन्हें खोद-कर इनसे पानी निकालते। लेकिन ये पहाड़ अपनी ऊँचाईका लाभ हमें देते हैं, और इसलिए इनके दर्शनसे हमारे मनमें आनद पैदा होता है।"

कोरापुटमें तबतक मिले ६ सौसे अधिक ग्रामोंके समग्रदानकी चर्चा करते हुए बाबा बोले :

"हम सोचते थे कि इतना औदार्य इन ग्रामीणोंको किसने सिखाया? हमको यही उत्तर मिला कि ये पहाड़ोंकी सन्निधिमें रहते हैं, जहांसे नदियाँ बहती हैं। इसलिए इनके हृदय भी ऐसे प्रवाहित, उन्नत और उदार बनते

हैं। ऋषिको पूछा गया कि ब्राह्मणका जन्म कहाँ हुआ ? यह 'ब्राह्मण' शब्द जैसे अर्वाचीन भाषामें जातिवाचक है, वैसा नही, क्योंकि जातिवाचक ब्राह्मण कहाँ पैदा होते हैं, यह ऋषिको मालूम नही। उसकी कल्पनामें जो है, वह तो उदार ब्राह्मण है, जिसके मनमें सबके लिए उदारता है। तो, ऐसे ब्राह्मण कहाँ पैदा होते हैं ? इसका जो उत्तर ऋषिने दिया है, वह सस्कृतमें है। सुन्दर श्लोक है, सुन्दर ध्वनि :

उपह्वरे गिरीणाम्
संगमे च नदीनाम्
धिया विप्रो अजायते ।

पर्वतोंकी सन्निधिमें ब्राह्मण पैदा होते हैं।

नदियोंका जहाँ सगम है, वही ब्राह्मण पैदा होते हैं।

ऋषि कहता है 'ब्राह्मण तो पहाड़ोंकी सन्निधिमें रहते हैं, लेकिन ध्यानसे पैदा होते हैं।' हम पहाड़ोंका ध्यान करते हैं, तो पहाड़ोंकी शक्ति हमें मिलती है। वे हमारे गुरु बनते हैं।"

प्रणम्य हैं हमारे ये गिरिदेव गुरुदेव !

* * *

मार्च १५, १६५६।

नदीका निर्मल तट।

वह कौन कम प्रेरक है ?

बाबा उस दिन कह उठे :

"पहाड़ोंकी सन्निधिमें और नदियोंके किनारे ज्ञानी पुरुषोंका जन्म होता है, ऐसा वेदमें वचन आया है। यह सामने नदी बह रही है। यह कजूस नहीं है। सतत उपकार करती रहती है और दूसरोंके लिए बहती रहती है। इसे अपने जीवनमें कोई प्रयोजन नही है, सिवा इसके कि दूसरोंकी सेवा करना। ये वृक्ष खड़े हैं। इनके जीवनमें इनका क्या है ? जो छाया चाहता है, उसे छाया देते हैं। पत्ती मांगता है, तो पत्ती तोड़ने देते हैं। कोई फूल चाहता है, तो फूल देते हैं। फल चाहता है, तो फल

लूटने देते हैं। घर बनानेके लिए कोई वृक्षको काटना चाहता है, तो काटनेवाला भी उसकी छायामें बैठकर उसे काटता है! परन्तु वह इतना परोपकारी है कि कोई शिकायत ही नही करता। ऐसे ही ये पहाड हैं। ये सदा देते हैं, ये साराका सारा पानी नीचे गिरा देते हैं। इस तरहसे ईश्वरकी सृष्टिमें केवल परोपकारकी ही भावना भरी है। सारीकी सारी सृष्टि परोपकारी है।"

* * *

प्रार्थना-प्रवचनके उपरान्त बाबा उठे और उस छोटी नदीमें, जिसमें घुटनोंसे भी कम पानी था, घूमने लगे। कभी पूरबसे पश्चिमको जाते, कभी उत्तरसे दक्षिण।

और मैं भाव-विभोर-सा बैठा सूर्यास्तका पावन दृश्य देखता रहा—चुप! शान्त!! एकाकी!!!

नदीका वह रेतीला कगार, अस्ताचलगामी भगवान् भास्करकी वह अद्भुत रूप-माधुरी, शीतल मद पवनके वे झकोरे। सामने ऊँची पर्वतमाला, वृक्षोंकी मनोहर अवली।

भावोंमें डूबा बैठा रहा घण्टों। संध्या धीरे-धीरे खिसक चली। अंधकार घनीभूत हो उठा। जगह-जगह दूर दो-चार दीपक टिमटिमाने लगे। उस निभृत स्थलसे मैं तभी उठा, जब दूरसे घटीकी आवाज कानोंके पर्देसे टकरायी।

चलूँ, भोजनकी घटी बज गयी!

सावधानी : यात्राका पहला सूत्र : ४ :

फरवरी, १९५६।

और उस दिन राजेन्द्र बाबू बाबासे मिलने पधारे थे।

सवेरेसे धूम-धाम : राष्ट्रपतिके स्वागतकी तैयारी।

शामको, दिनभरका तमाशा देखकर डेरेपर लौटा, तो देखा बिस्तर नदारद है!

और सिर्फ मेरा ही नहीं। मेरे साथ ठहरे सभी भाइयोंका वही हाल।

* * *

खोज-खाज की। इधर-उधर जाँच-पडताल की, तो दूसरे कमरेमें हमारे बिस्तर पड़े मिले।

दोपहरको बिस्तर फैलाकर ही सभा-स्थलकी ओर चला गया था। समेटनेका खयाल न रहा। सतरजीकी जरूरत पडी बीचमें—सभाके लिए। लोग बिस्तरोंको लपेटकर, दूसरे कमरेमें पटक, सतरजी ले गये।

गनीमत हुई—मेरा सारा सामान मिल गया। कुछ कपड़े पडोसवाले साथीके बिस्तरमें लिपटे मिल गये। सिर्फ एक चीज खो गयी—बिस्तर लपेटनेकी रस्सी!

* * *

आप शायद नहीं जानते कि यह रस्सी कितनी कीमती होती है। पैसोंमें उसका मूल्य भले ही कम हो, यों उसका दाम बहुत ज्यादा होता है।

क्यों?

इसीलिए कि गांव-गांव यात्रा करनेमें जहां खो जाय, वहां पैसा खर्चने-पर भी वह मिलती नहीं।

"वखत परे पर ना मिलै, माटी खरचे दाम।"

बिना रस्सी, बिस्तर बंधे तो कैसे?

और यहाँ रोज विस्तर बाँधना जरूरी !

*　　　*　　　*

सितम्बर, १९५५ ।

कोरापुटके जगलोंमें हमारी पद-यात्रा चल रही थी ।

बरसात केदिन ।

ऊँचा-नीचा पहाडी रास्ता ।

धानोंके लहलहाते खेत बीच-बीचमें मिलते ।

इन खेतोंकी मेंडोंपरसे हमें निकलना पडता, तो कदम-कदमपर फिसलनका सामना करना पडता ।

सडकपर, पगडण्डीपर, रास्तेपर, जहाँ देखिये फिसलनका खतरा ! जरा चूके कि गये !

*　　　*　　　*

उन दिनों एक अमेरिकन युवती मिरियम कुगलमेन थी हमारे साथ ।

हम लोग तो रास्तेमें बहुत सम्हलकर पैर जमाते । इसलिए फिसलकर गिरनेसे बच जाते, पर मिरियमके लिए तो यह सारा तमाशा एकदम नया था ।

फिसलनेके जहाँ-जहाँ मौके आते, मेरी चेष्टा रहती उसे बचानेकी ।

एक रोज वह बोल ही पडी :

"How do you happen to come at the right moment ?"

(ठीक मौकेपर आप कैसे आ टपकते हैं ?)

पर इसका मतलब यह नही कि मैं फिसलकर गिरता ही नही ।

जी, ऐसी बात नहीं ।

*　　　*　　　*

फरवरी, १९५६ ।

बरसात नही थी । फिर भी कीचड़ थी ।

अँधेरेमें हम लोग चल रहे थे ।

एक जगह कीचड़में कूद-फांदकर पार होनेकी चेष्टा कर रहा था कि औंधे मुँह गिर ही तो पडा !

और मेरे पीछे थे वालू भाई मेहता।

मैं गिरा तो वे भी गिरे।

वयोवृद्ध शरीर। दुर्बल काया। भूरी मूँछें। फिर भी उनमें भूदानके लिए इतना उत्साह कि अशक्त रहनेपर भी हमलोगोंसे आगे ही रहते। पैदल यात्राका भार वहन करना उनकी शक्तिकी वात नही, पर वे थे कि हिम्मत न हारते।

गनीमत हुई कि मेरे ऊपर वे गिरे और मैंने उन्हें हाथोंमें ले लिया, वर्ना उन्हें गहरी चोट लगनी मुश्किल न थी।

* * *

मार्च, १९५६।

एक दिन निर्मला देशपाण्डे तो अचानक ही फिसल पड़ीं।

अँधेरेमें, झुटपुटेमें हमलोग चल रहे थे।

एक जगह सूखा जैसा रास्ता था, लेकिन पैर रखा, तो घुटनेतक धँस गया कीचडमें।

और यह लीजिये—पैरकी एक चप्पल उसमें लुप्त ही हो गयी !

किसी तरह निर्मला वहनको निकालकर खडा तो किया, पर कपड़े सव कीचडमें खराव हो गये और कीचडमें लाख हाथ साननेपर चप्पल तो नहीं ही मिली।

"तव यह अकेली चप्पल किस कामकी ?"—ऐसा कहकर दूसरी चप्पल भी उन्होंने वही छोड, मेरी चप्पलोंसे आगेका रास्ता नापा।

* * *

गुणपुरमे अगले पडावको जाते समय एक दिन प्रभावती वहनका भी पैर कीचडमें गहरा धँस गया। किसी तरह उन्हें खींचकर निकाला। गनीमत हुई कि उनकी चप्पल कीचडके उस ढेरमेंसे सही सलामत निकल आयी !

* * *

उर्सुला बहन सेवाग्रामसे आयी थी। बाबाने उसे देखकर कहा : "यह तो ब्राह्मण-कन्या सी लगती है। जर्मनीकी है न ? ये 'जर्मन'— 'शर्मन' हैं हमारे !"

एक दिन रास्तेमें उसकी चप्पल खो गयी।

"You may use my chappals meanwhile !"

('तबतक आप मेरी चप्पलोंसे काम चला सकती हैं।') कहकर मैंने जब अपनी चप्पलें उसके सामने पेश की, तो बडे सकोचसे उसने मेरी प्रार्थना स्वीकार की।

पर ऐसी जगह और चारा ही क्या है ?

* * *

और बिना जूता-चप्पलोंका रास्ता ?

कुछ मत पूछिये, उसकी मुसीबत !

उडीसामें पहाडी रास्तेमें तो गनीमत थी, पर हैदराबाद और आंध्रमें तो ऐसा लगता कि सर्वत्र काँटे ही बिछा दिये गये हैं रास्तेमें !

पक्का रास्ता छोडकर दस कदम भी इधर-उधर कच्चे रास्तेपर या मैदानमें चलना पडे, तो आफत हो जाती !

बडे-बडे काँटे तो चुभते ही हैं, छोटे-छोटे गोखरू तो ऐसी आफत कर देते हैं कि न कुछ कहिये !

दौडनेकी कहे कौन, तेजीसे चलना भी दुश्वार हो जाता है।

* * *

पण्डित जवाहरलाल माधवरावपल्लीमें बाबासे मिलने पधारे।

उस दिन अक्सर डेरेसे सभास्थलपर जाना पडता और सभास्थलसे डेरेपर। कभी नहाने-धोने, कभी खाना खाने।

बिना चप्पलकी यह परेड, पग-पगपर गोखरू और काँटे, गरम बालू और तपती चट्टानें भुलायी नहीं जा सकती !

* * *

पद-यात्राके दौरानमें कहीं चप्पल टूट जाय, कहीं कोई चीज खो जाय,

कोई चीज ग़ायब हो जाय, छोटी-मोटी भी कोई वस्तु जाती रहे, तो जो परेशानी होती है, उसका मज़ा भुक्तभोगी ही बता सकते हैं !

* * *

हमारे सची भाई एक दिन नहाने चले ।

अपने छोटे विस्तरको तलाशा, तो लँगोटी ही नदारद । बड़े परेशान हुए !

कहाँ चली गयी लँगोटी ?

बहुत देर सोचनेके बाद याद पड़ा कि कलके पड़ावपर उसे सूखने डाला था, पर उठानेकी याद न रही ।

पिछला पड़ाव था ८-१० मील दूर एक स्कूलमें । हजारों लड़कोंका आना-जाना लगा था वहाँ ।

वहाँके दो-तीन अध्यापक थे उस समय हमारे साथ ।

मैंने उनसे प्रार्थना की कि लँगोटी खोजवाकर अगले पड़ावपर भेजवा देनेकी कृपा करें । पर, ऐसी खोयी चीज कहीं मिलती है ?

गयी सो गयी ।

बेचारे सची भाईको लँगोटीकी नये सिरेसे जोगाड़ करनी पड़ी !

* * *

मीरा व्यास है तो गुजरातके एक अधिकारीकी बेटी, पर उसे गवारा नहीं कि और कोई भाई-बहन उसके काममें हाथ बँटाये । वह कहती है कि मेरे लिए दूसरा कोई क्यों कष्ट उठाये ।

पड़ावपर पहुँचते ही नहानेकी जल्दी रहती है । बड़ियों (बैल-गाड़ियों) से सामान देरमें पहुँच पाता है । मीरा इसीलिए अपना झोला साथ लेकर चलती है । कोई भाई उसका झोला खुद लेकर चलना चाहे, तो मीरा मान नहीं सकती ।

फिर भी कोई-न-कोई भाई उसके इस 'श्रम' में दखल दे ही देता । अतः लाचार होकर उसने जीपमें झोला रखना शुरू किया ।

और एक दिन पूरा एहतियात रखनेपर भी उसका झोला जीपसे यहीं कूद ही तो गया !

पिछले पडावपर खोजवानेकी पूरी कोशिश की, पर अब उन बूँदों
र्शन कहाँ !

साडी, जम्फर, तेल, साबुन, गमछा, तौलिया, सब लापता !

* * *

त्रिभुवन भाई कपडे साफ करके उन्हें फैलानेके लिए मुश्किलसे दो
मिनटके लिए बाहर गये फूस के स्नानागारसे, कि १८० रुपयेकी उनकी
घडी नदारद ! घंटों तलाश की, पर सभाके लिए आसपास एकत्र जनताके
उस हुजूममें कहीं पता चलता है ?

* * *

इसी तरह एक दिन नगीन भाईका फाउण्टेनपेन गायब हो गया !

मिनटभरकी असावधानी और ६० रुपयेकी चपत !

* * *

मैंने मजाकमें कह तो दिया कि हमें परिग्रहसे मुक्ति दिलानेके लिए ही
ऐसी घटनाएँ घटती हैं, पर जब गुतकुलसे लौटते समय ट्रेनमें रातके समय
मेरा झोला लेकर कोई मुसाफिर चुपकेसे कहीं उतर गया, तो मुझे कितनी
परेशानी उठानी पडी, मैं ही जानता हूँ !

झोलेमें लोटा था, कटोरदान था, नहाने-धोनेके कपडे थे, कुछ जरूरी
कागज-पत्र थे। जरा आँख झपकी कि किसीने हाथ साफ कर दिया !

यात्री-दलके साथियोंको जब मेरी इस 'हजामत'की खबर लगी, तो
उनमेंसे सभी लोग चिन्तित हो पडे कि कहीं 'गीता-प्रवचन' का किया हुआ
मेरा अनुवाद भी तो उन कागज-पत्रोंके साथ गायब नहीं हो गया ?

अनसूया बहन बता रही थी कि बाबा भी एक दिन इस घटनाको
सुनकर बोले . 'क्या हमारा सारा श्रम व्यर्थ गया ?'

भगवान्की कृपा थी कि 'गीता-प्रवचन' का अनुवाद सही-सलामत था।

* * *

और मजेकी बात यह कि जिस डिब्बेमें सवार था, उसमें टट्टीका नल

ढीला था। टकीका पानी मिनटोंमें साफ हो जाता। बिना लोटेके, पानीके अभावमें, हाजतपर भी रोक लगानी पड़ी।

सकोची प्राणी, दूसरोंसे लोटा माँगता भी तो कैसे।

* * *

लाल स्याहीकी एक दावात थी मेरे पास।

महेश भाईने उसे अपने झोलेमें रख छोड़ा था। अचानक एक दिन उसकी डाट कुछ ढीली रह गयी।

नतीजा?

उनका पाजामा, तौलिया, कुर्ता, सब लाल रगमें शराबोर हो गया।

* * *

और ठीक होलीके दिन।

मेरे झोलेमें रखी लाल स्याहीकी दावातने भी वही करिश्मा कर दिखाया।

मैंने कहा : "चलो, रास्तेमें ही होली मन गयी। घरपर रहता, तो कपडे रग-बिरगे बनते ही। इधर हैदराबाद और आध्रमें हमारे प्रान्तकी तरह होली मनायी नही जाती। तो यहाँ भी रगका मजा आ ही गया।"

* * *

ये सब छोटी-छोटी घटनाएँ हमें क्या सिखाती है?

यही

कि

यात्राका पहला सूत्र है—सावधानी!

● ● ●

पड़ाव : डेरा : रैन-बसेरा : ५ :

किसीके पास एक भी घर नहीं होता।

सारी ज़िन्दगी किरायेके मकानमें कटती है।

किसीको एकाध घर होता है।

किसीको, सेठ-साहूकारको, राजा-रईसको, एकसे ज्यादा भी घर होते हैं—दो, चार, दस, पन्द्रह, बीस, पच्चीस। पर बाबाको तो ३६५ घर हैं।

हर रोज एक नया घर।

और मजेकी बात यह कि इन घरोंकी कोई ज़िम्मेदारी बाबापर नहीं। टूटे तो दूसरे बनायें, फूटे तो दूसरे सम्हालें, गिरे तो दूसरे उठायें। बाबाको क्या लेना-देना!

* * *

बाबा रोज चलते हैं। रोज पड़ाव बदलते हैं। आज यहाँ हैं, तो कल वहाँ।

"चरैवेति चरैवेति"—श्रुतिका यह मंत्र पकड़ रखा है उन्होंने।

कभी ६ मीलपर, कभी ८ मीलपर, कभी १० मीलपर बाबाका पड़ाव पड़ता है। कभी एकाध मील कम, कभी ज्यादा।

ये नये-नये पड़ाव एक-से-एक डिजाइनदार होते हैं।

कभी किसी सम्पन्न सद्‌गृहस्थका घर मिलता है, कभी किसी ग़रीबका।

कभी किसी स्कूलमें पड़ाव पड़ता है, कभी किसी मंदिरमें।

कभी किसी डाक-बँगलेमें रैन-बसेरा होता है, कभी किसी महकमा जंगलातकी चौकीमें। कभी किसी झोपड़ीमें।

जहाँ इसकी भी सुविधा नहीं मिलती—वहाँ तम्बूसे भी काम चला लिया जाता है।

और कुछ न हो तो "तरु तल वासा" किसने रोक रखा है ?

कुछ भी न हो, तो आकाशका छप्पर कहाँ गया है ?

* * *

बाबाके लिए कुटियाकी कुछ व्यवस्था करनेके बाद यात्री-दलके लिए, साथकी माँ-बहनोंके लिए, कुछ-न-कुछ प्रबन्ध किया जाता है। प्रबन्धक लोग अपनी शक्तिभर अच्छा इन्तजाम तो करते हैं, परन्तु जगह-जगहकी स्थितिके अनुसार वे बेचारे भी मजबूर रहते हैं।

भारत-सा दरिद्र देश और फिर हमारे गाँव तो ठहरे और भी अधिक दरिद्रताके प्रतीक।

* * *

फलतः यात्री-दलके लोगोंको अक्सर ही ऐसे पड़ाव मिलते हैं, जिन्हें सुविधाजनक तो कोई नहीं कह सकता।

परन्तु वे तो उसमें भी मस्तीका अनुभव करते हैं।

पक्की जमीन मिली तो ठीक, कच्ची जमीन मिली तो ठीक। पटा हुआ मकान मिला तो ठीक, फूसका छप्पर मिला तो ठीक।

पेड़के नीचे बिस्तर फैलाना पड़ा तो भी ठीक।

* * *

अक्सर तो ग्रामवासियोंके छप्परोंमें ही यात्री-दलको शरण मिलती है।

सब साथी भाई-बहन इधर-उधर छिटक जाते हैं। कोई कहीं, कोई कहीं।

एक साथ सबके ठहरनेका अवसर कम ही मिल पाता है।

* * *

नहाने-धोनेके लिए पानीका प्रबन्ध भी नित-नूतन रहता है। कभी कुएँपर नहाना होता है, कभी बावड़ीमें।

कभी नदी मिलती है, कभी तालाब।

कभी-कभी तो इतने थोड़े पानीमें गुजर करनी पड़ती है कि 'काक-स्नान' ही पर्याप्त होता है।

कभी स्वच्छ-साफ पानी मिलता है, कभी गदा-मैला-कुचैला।

देहाती जीवनमें जहाँ जैसा मिल जाता है, काम चलाना पड़ता है।

* * *

सर्दी और गर्मी, आंधी और तूफान, वर्षा और ववडर—प्रकृतिके अच्छे-भले सब रूप यात्रामें सामने आते हैं।

पदयात्री सवका डटकर सामना करते हैं। हँसते-हँसते, खुशी-खुशी।

* * *

कोरापुटकी एक रात।

महकमा जंगलातकी एक चौकीमें डेरा पड़ा था बाबाका। बहुत छोटी-सी जगह।

एक तरफके कच्चे बरामदेमें बहनोंके लिए व्यवस्था की गयी।

शामको हम लोग खाना खाने बैठे ही थे कि ऊपरसे इन्द्रदेवको रश्क हुआ।

काम-चलाऊ 'शेड', पत्तोंके छप्परके नीचे, हम लोग खाना खा रहे थे।

पानी पड़ना शुरू हुआ कि बिलवासी प्राणी भी बाहर निकलने लगे। बिच्छू, गोजर आदि पत्तलोंपर हमला करने लगे।

आधे पेट कच्चा-पक्का खाना खा-पीकर हम लोग भगे अपने तम्बू-की ओर।

और इतनी ही देरमें नीचेका फर्श पानीसे सराबोर हो चुका था। तम्बूके आसपास मिट्टीकी ऐसी मेंड नहीं बनायी गयी थी कि पानी बाहर ढुलक जाय।

सारा पानी भीतर आ रहा था। और पयालपर पड़े हमारे बिस्तर बुरी तरह भीग रहे थे।

बाहर एक चारपाई पड़ी थी। उसे हम लोग भीतर खींच लाये और उसपर सब बिस्तर उठाकर रख दिये।

परन्तु इतनेसे तो समस्या हल होनेवाली थी नहीं।

पानी कहता था कि आज मैं पूरी कमर निकालूँगा।

तम्बू ऊपरसे भी टपक रहा था, इधर-उधरसे भी पानीकी बौछारें पहुँचा रहा था और नीचे तो वह जलमय था ही।

साथी भाई इधर-उधर और कोई ठिकाना खोजने लगे।

बगलमें एक तम्बू और था। पर उसपर भी वही गुजर रही थी, जो हमपर।

किसी तरह बाबाके बगलमें थोडी-सी जगह निकालकर कई भाई उधर चल पडे। कुछ गाँवकी ओर चल दिये।

सबने जब बिस्तर उठा लिये, तो मेरा नम्बर आया।

मैंने कहा : "उधर अब जगह भी कम है। रहने दीजिये। मैं इसी भीगी चारपाईपर रात काट लूँगा।"

और सचमुच मैंने वह रात वही काटी।

* * *

इस तरहकी मिसालें अक्सर देखनेको मिलती हैं।

* * *

एक दिन एक ग्रामवासीके छप्परमें मेरा बिस्तर पडा था।

शामको जब सोनेकी तैयारीमें था, तभी बगलसे जानेवाली एक गायने अपने मुँहसे मेरे पानी-भरे लोटेको जो ठोकर लगायी सो नीचेका बिस्तर तर।

किसी तरह उसे ठीक-ठाक कर लेटा, तो मच्छरोंने काटना शुरू कर दिया और गोबरकी 'खुशबू' ने बेचैनी पैदा की।

फिर भी नींदका इन्तजार करता रहा, पर वह मानो वहाँ न आनेके लिए कसम खा बैठी थी।

लाचार मैंने उठाया बिस्तर और बाहर लाकर मैदानमें उसे फैला दिया।

रातमें सर्दीने जब जोर मारा, तो अपने-आप ही कब नीचे बिछा हुआ कम्बल ऊपर आ लिपटा, मुझे पता ही न चला।

देह तो अकड गयी जरूर, पर नींद मजेकी आयी।

* * *

खाना-बदोशोंका-सा यह जीवन देखनेमें अरुचिकर लगता है सही, पर इसकी भी अपनी एक मस्ती है।

इसका मज़ा वही जानता है, जो कुछ दिन इसका मज़ा उठाता है।

और फिर तो इसका ऐसा अभ्यास हो जाता है कि रत्तीभर भी अड़चन नहीं मालूम होती। आखिर हमारे लाखों भाई-बहन रोज़ ही तो ऐसा जीवन बिताते हैं!

न उनके रहनेका कोई ठिकाना, न सोनेका!

न उनके भोजनकी कोई व्यवस्था, न उनके पहनने-ओढ़नेकी।

हम यदि जनता-जनार्दनके साथ एकात्म्य स्थापित करना चाहते हैं, दरिद्रनारायणसे समरस होना चाहते हैं, तो ऐसे जीवनके अभ्यस्त होनेकी चेष्टा हमें करनी ही होगी।

* * *

और रोज़-रोजके ये नये पडाव एक शिक्षा तो हमें देते ही हैं—

"कंकड़ चुनि-चुनि महल बनाया,
लोग कहें घर 'मेरा'!
ना घर 'मेरा' ना घर 'तेरा',
चिड़िया रैन-बसेरा!!"

०००

कभी घी घना, कभी मुट्ठीभर चना : ६ :

"बन चले राम रघुराई।"

माँ बोली : "बेटा, सीताको मेरे पास छोड देते, तो बडा सहारा रहता।"

"जों सिय भवन रहे कह अंबा।
मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥"

तब, राम वनमें मिलनेवाले कष्टोंका वर्णन करने लगे।

उन्होंने सीतासे कहा :

"भूमि सयन वलकल वसन, असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल॥"

जमीनपर सोना होगा।

वृक्षोंकी छाल पहननी होगी।

कद-मूल-फल खाने होंगे।

और वे भी तो रोज-रोज़ न मिलेंगे।

अर्थात्

कभी-कभी उपवासकी भी नौबत आ सकती है!

*　　　*　　　*

पदयात्रीको वनयात्रीके इन सब कष्टोंका स्वागत करनेके लिए तैयार रहना होता है।

यह ठीक है कि जगह-जगह इस बातकी पूरी चेष्टा की जाती है कि दादा और उनके दलवालोंको पूरा आराम मिले, परन्तु हमारे जैसे गरीब देशमें बडी दिक्कत है। यहाँ तो इसीके लिए तैयार रहना चाहिए कि—

"जो कुछ मिले सो खाना, दाताका नाम जपना।"

तभी तो, पदयात्रामें कभी घी घना रहता है, कभी मुट्ठीभर चना।

कहावत है—

"कभी घी घना,
कभी मुट्ठीभर चना,
कभी वह भी मना।"

घर छोड़कर बाहर भटकनेवाले व्यक्तिको इन तीनों स्थितियोंका सामना करना पड़ता है।

पर, बाबाके साथ रहनेपर पहली दो स्थितियाँ ही रहती हैं, तीसरीकी नौबत नहीं आती।

यात्रामें आजतक कोई दिन ऐसा नहीं गया, जब किसीको भूखे रहनेकी नौबत आयी हो।

* * *

बिहारके एक भाईकी चर्चा करते हुए बाबाने एक दिन[1] प्रार्थना-प्रवचन में कहा :

"बिहारके ये भाई ६००-७०० मील पैदल चलकर बाबासे मिलने आये। रास्तेमें एक भी गाँव ऐसा नहीं मिला, जहाँ इन्हें भोजन न मिला हो। एक दफा खाते थे। लोग प्रेमसे खिलाते थे। पाँच साल पहले इस तरह चलनेकी लोगोंमें हिम्मत ही नहीं थी। अब तो हर साल सर्वोदय-सम्मेलन होता है। तब कितने ही लोग पैदल चलकर मिलनेको चले आते हैं।"

* * *

भारतकी श्रद्धालु जनता।

अतिथि-सत्कारकी हमारी पुरातन परम्परा।

स्वाभाविक है कि किसी गाँवमें कोई पहुँचे, तो उसके लिए वहाँकी जनता कुछ-न-कुछ साग-सत्तू जुटा दे।

न सही पूड़ी-कचौड़ी, न सही हलवा-मोहनभोग, कोदों, साँवा और मडुआकी रोटी कहाँ गयी है?

* * *

---

१. तेलकापली, ता० २ मार्च, ५६।

उडीसा यों ही ठहरा हमारे देशका सबसे गरीब प्रान्त।

तिसमें कोरापुटका जिला तो है दरिद्रताका प्रतीक।

इस कोरापुटमें घूमते समय भी हमें कभी कोई दिक्कत नही आयी।

भोले-भाले ग्रामवासी—उदारताके साक्षात् उदाहरण—हमें भूखा कैसे रहने देते?

जो लोग जरा-सा समझाते ही भू-क्रान्तिके लिए तैयार हो गये—ग्रामदानके लिए राजी हो गये, भारतमें ही नहीं, विश्वमें जिन्होंने ग्रामदान का 'रेकर्ड' खडा कर दिया, वे बाबा और उनके सहयात्रियोंकी भोजन-की भरपूर व्यवस्था न करते, यह सभव ही कैसे था? और एकाध वार तो ऐसी नौबत आयी जब 'सहस्रभोज' की, हजार-हजार लोगोंके भोजनकी उन्होंने व्यवस्था की। पचीस, पचास, अस्सी, सौ—आदमियोंकी तो रोज ही व्यवस्था की जाती थी।

* * *

पडावपर पहुँचते ही नाश्ता।

दोपहरमें भोजन।

शामको प्रार्थना-सभाके बाद फिर भोजन।

तीनों वार पर्याप्त खाद्य सामग्री पल्ले पडती है।

कभी-कभी तो नाश्ता इतना भारी पड जाता है कि कुछ भाई दोपहरको नागा कर जाते हैं।

बाबा एक दिन विनोदमें बोले : "लोग इसीलिए नाश्ता डटकर कर लेते हैं कि वह ठहरा नकद, भोजन ठहरा उधार!"

* * *

होटलोंमें, भोजनालयोंमें, वासोंमें यह कायदा है कि आदमी बढे तो—

"*दे दालमें पानी!*"

कभी-कभी यात्रामें भी ऐसे मजेदार प्रसग दीख जाते हैं।

एक दिन नदी किनारे बड़ी भारी "पगत" बैठी थी।

नाश्तेके लिए जो दही आया, वह बहुत पतला था।

मैंने साथियोंसे विनोदमें कहा : "लगता है कि हम लोग नदीके किनारे खाने बैठे हैं !"

कुछ लोग मेरा इशारा समझे, कुछ नहीं।

और तबतक दही परोसनेवाला एक भाई दर-असल नीचे नदीमें उतर ही तो गया !

लौटकर देखा, उसकी हँड़िया लबालब थी पानी नामधारी दहीसे !

* * *

एक दिन भोजनकी घंटी जब बजी, तब मैं कपड़े साफ कर रहा था।

जल्दी-जल्दी कपड़े निचोडकर, उन्हें फैलाकर 'वटशाल' (भोजनालय) में पहुँचा, तो देर हो चुकी थी।

लाचार दूसरी "पंगत" के लिए रुकना पड़ा।

उस दिन दाल, भात, तरकारीके अलावा खीर आदिकी भरपूर व्यवस्था थी।

जो साथी भाई खा रहे थे, उन्हें जबरन ज्यादा-ज्यादा खीर खिलायी जा रही थी।

तबीयत खुश हो रही थी कि चलो, बहुत दिन बाद आज मुझे भी खूब खीर खानेको मिलेगी।

पर, दूसरी पंगतमें जब मैं बैठा, तो इस "स्पेशल" (खीर) का कहीं पता भी न था !

मैंने मनमें कहा : "ले, 'लेट' होनेका मजा !"

* * *

नाश्तेमें कभी मिलता है दही-चिउडा, गुड, केला, कभी मिलता है उपमा (साहित्यिक लोग भ्रममें न पड़ें, "उपमा" दक्षिण भारतमें प्रचलित खानेकी एक जायकेदार चीज है), कभी इडली और चटनी। कभी-कभी मिल जाती है पूड़ी-कचौड़ी भी। कभी-कभी हलवा और लड्डू भी।

जब जैसा तब तैसा।

* * *

और भोजनमें मिलती है दाल, भात, तरकारी, चटनी, घी, दही, अचार, इमलीका पना आदि-आदि। दक्षिणमें रोटी ज़रा कम मिलती है। उत्तर भारतवालोंके लिए फिर भी कुछ-न-कुछ व्यवस्था करते हैं—ये दक्षिणी भाई।

* * *

दूध आदिका जहाँ प्रबन्ध हो जाता है, वहाँ खीर भी मिल जाती है। कभी-कभी तो इतना दूध पीना पडता है, इतनी खीर खानी पडती है मेज़बानोंके प्रेमाक्रमणके कारण, कि कुछ मत पूछिये।

* * *

कोरापुटमें गेहूँकी भी कमी है, चावलकी भी।

अतः हमें रोटियाँ तो कम ही मिलती—कोदों, साँवां, मडुआकी तैयार चीजें—भात, खीर, हलवा आदि ही ज्यादा मिलता।

एक दिन तो बडा ही मजा आया।

भात एक जगह न बनकर, कई-कई घरोंमें बना।

खाने बैठे, तो एक मटकेमें पका भात इधरसे आ रहा है, एक मटकेमें उधरसे। एक मटकेमें इस घरसे, तो एक मटकेमें उस घरसे।

आदिवासी भाइयोंकी यह व्यवस्था देखकर तबीयत बाग़-बाग हो गयी।

यात्रामें स्थान-स्थानकी स्थितिके अनुसार भोजन मिलता है। पर जो भी मिलता है, यात्री-दल प्रेमपूर्वक भगवान्का प्रसाद मानकर उसे ग्रहण करता है—इस वेद-मन्त्रका पाठ करके :

"ॐ सहनाववतु, सह नौ भुनक्तु
सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु
मा विद्विषावहै।"

उड़ीसामें हम लोग कहते थे : वामन पंडितके अनुसार—

"घेनिवा आगंरु मुखे सदा मो नित्य भक्ष्य
घेनिवि सतत मने हरि हे दया रख।
जीवन शकतिदाता अन्नहि पूर्ण ब्रह्म
उदर-भरण नुहें जाण ए यज्ञ कर्म॥"

● ● ●

दिन कैसे बीत जाते हैं ! :७:

अभी उस दिन कामाक्षी बहनका बंगलोरसे पत्र आया है। बहुत ही भावविभोर होकर इस बहनने लिखा है :

"पदयात्रामें मेरा एक महीना कितनी जल्दी बीत गया। ऐसा मालूम होता है कि मैंने एक अच्छा सपना देखा था। अब तो मेरी वही पुरानी-धुरानी गाडी चल रही है। न वह दिलचस्पी है, न वह नित्य-नूतनता।"

सचमुच, बाबाके साथ दिन कैसे बीत जाते हैं, कुछ पता ही नही चलता।

*   *   *

अभी हैदराबाद और आंध्रके प्रवासमें यह बहन हम लोगोंके साथ थी। वयका वार्धक्य और शरीरका स्थूलत्व उसे पैदल चलनेसे रोकता, पर—

"कहाँ रोके रुकती है धार।
चली जब घहराकर एक बार॥"

पैरोंमें छाले पडते, चला न जाता, रास्तेमें काँटे चुभते, थकावट आ जाती, पर मन न मानता। कहती : "बाबाके साथ रहूँ और मैं पैदल न चलूँ? जब कि बम्बईकी वह अपंग बहन—मणी बहन—लकडी लेकर रोज एक-दो मील चलती है, तब मैं न चलूँ, यह हो कैसे सकता है? 'बंडी' (बैलगाड़ी) और जीपका उपयोग तो बेबसीमें ही करना चाहिए।"

और तभी मुझे याद पड़ते भरत।
वे अयोध्यासे रामको मिलने वन जा रहे हैं।
नंगे पैर चलते हैं, तो सेवक बार-बार अनुरोध करते हैं :

"होइअ नाथ अस्व असवारा।"

भरत रो पड़ते हैं :

"राम पयादेहि पाँय सिधाये।
हम कहँ रथ, गज, बाजि बनाये ॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।
सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥"

* * *

सुबह ३ बजे उठनेकी घण्टी बजती है।

३॥ पर प्रार्थनाकी घण्टी बजती है।

प्रार्थनाकी समाप्तिपर यात्रीदलके सेनानायक घोषणा करते हैं :

"अगले पडावका नाम.......है। रास्ता......मील है। रास्ता कच्चा है......पक्का है या " कच्चा-पक्का है। सुबहके ५ बजे हम निकलते हैं।"

* * *

प्रार्थनासे उठकर सब लोग बिस्तर लपेटना शुरू करते हैं। "सामान समेटो, रस्सी खोजो, बिस्तर लपेटो"—चारों ओर यही धूम मचती है।

बाबाका सामान बसी भाई आदिके सहयोगसे बाल भाई पहलेसे ही बाँधना शुरू कर देते हैं।

इसके बाद बँधे-बँधाये बिस्तरोंको बडीमें या जीपमें लादना शुरू होता है। छोटा-मोटा सामान, झोला आदि हाथमें लेकर लोग कूचके लिए तैयार हो जाते हैं।

"श्री रमा रमण गोविन्द हरि" का स्मरणकर यात्रीदल चल पडता है।

प्रातः-भ्रमण यों ही बड़े आह्लादका विषय है, बड़े आनन्दका प्रसग है, फिर जब विनोबा जैसे मनीषीके साथ चलना हो, तो कहना ही क्या !

तब तो उसमें जो आनन्द भर जाता है, जो स्फूर्ति और प्रेरणा घुल जाती है, वह अतुलनीय है।

चलता-फिरता विश्वविद्यालय है वह !

* * *

बाबा ज्ञानी हैं, साधक हैं, भक्त हैं, भाषाविद् हैं, वेद, वेदाग, गीता, उपनिषद्, शास्त्र-स्मृतिके मर्मज्ञ हैं, अहिंसा, सर्वोदय और सेवा-शास्त्रके अनुभवी पुजारी हैं। नयी तालीमके आचार्य हैं। भूदानके अध्वर्यु हैं। अनेक विषयोंके धुरधर पण्डित हैं। स्मरण-शक्ति उनकी अद्भुत है। विवेचना-शक्ति उनकी तर्क-पूर्ण है। किसी भी विषयपर, किसी भी समस्यापर उन्हें छेड दीजिये, फिर देखिये ज्ञानकी अजस्र धारा फूट पडती है !

* * *

यह ज्ञान-चर्चा रास्तेभर चलती रहती है।

ऐसा नही कि इस चर्चामें केवल गम्भीर विषयोंका ही प्रतिपादन होता हो, वह तो होता ही है, अत्यन्त साधारण विषयोंपर भी विचारोंका आदान-प्रदान चलता है। राजनीति और अर्थ शास्त्र, सर्वोदय और तत्त्व-ज्ञान, हिंसा और विश्वशान्ति, जैसे प्रसग तो चलते ही हैं; खाने-पीने, पहनने-ओढने, पढने-लिखनेकी भी बातें कभी-कभी चल पडती हैं। हँसी और अट्टहाससे भी कभी-कभी सारा वातावरण गूंज उठता है।

कौन न स्नान करना चाहेगा इस ज्ञान-गगामें ?

* * *

रास्तेमें कितने ही गाँव मिलते हैं।

जगह-जगह लोग स्वागत करते हैं।

उडीसामें तो हर गांवमें महिलाएँ 'लुलू' ध्वनिसे बाबाका स्वागत करती—

"लू लू लू लू लू लू लू लू . . . "

जीभको कमान बनाकर जब वे एक साथ जोरसे यह ध्वनि करती, तो अद्भुत आनन्द आता।

फिर वे दौडती—अक्षत, रोली, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, माला लेकर बाबाकी पूजा करने।

उनके चरणोंपर जल उँडेलती। पाद-प्रक्षालन करती।

निकट होनेपर कभी-कभी मेरे पैरोंपर भी जलका अभिषेक हो जाता !

*　　　　*　　　　*

जगह-जगह बाजे-गाजेसे बाबाका स्वागत होता है। कहीं-कहीं वेद-मन्त्रोंसे।

कभी-कभी कोई भाई-बहन एकाध दान-पत्र भी बाबाको अर्पित कर देते हैं।

"गाँव-गाँव अस होइ अनन्दू।"

बाबा बात करते हुए चले जाते हैं। कहीं-कहीं जनता आग्रह करती है, तो एकाध मिनटके लिए रुककर भूदानका संदेश भी देते चलते हैं।

*　　　　*　　　　*

प्रातःकालके ये दो-तीन घण्टे इतनी जल्दी बीत जाते हैं कि पता ही नहीं चलता और नया पडाव आ जाता है बातकी बातमें।

किसीको भी मार्गका कोई श्रम नहीं मालूम होता, फिर चाहे ऊँची-नीची पगडण्डी हो, कँटीली-ककरीली गैल हो या नदी-नालोंका संतरण। ज्ञान-चर्चामें सब आकण्ठ डूबे रहते हैं।

आठ-साढ़े आठ, लम्बा रास्ता हुआ तो नौ-साढ़े नौ तक, हम लोग नये पड़ावपर पहुँच जाते हैं।

स्वागतार्थ एकत्र भीड़को दो शब्द कहकर बाबा अपने डेरेके भीतर चले जाते हैं। यात्री-दलके सदस्य इधर-उधर अपने लिए स्थान खोजनेमें जुट जाते हैं।

*　　　　*　　　　*

नाश्ता करके स्नानादिकी तैयारी होती है।

तबतक सामान लानेवाली बंडियाँ (बैलगाडियाँ) आ पहुँचती हैं। कभी-कभी जीप आदि भी मिल जाती है। कोरापुटमें तो न जीपका रास्ता था, न बंडियोंका। वहाँ तो बेचारे 'भार-वाह' ही हमारा सामान कंधों-पर लादकर चलते। ऊँची-नीची पहाडी पगडंडीपर सवारियोंकी गुंजाइश ही कहाँसे हो सकती है?

यात्री-दलके सदस्य कुछ देर ग्राम-सफाई आदिका काम करते हैं। कुछ लोग सडास आदिकी व्यवस्था करते हैं। कभी-कभी कुछ सदस्य ग्रामकी 'सर्वे' आदि करते हैं। वहाँकी स्थितिका अध्ययन करते हैं।

उडीसामें पडावपर पहुँचते ही ग्रामकी स्थितिका परिचय बाक़ायदा लिखा-लिखाया मिल जाता था। उसमें गाँवकी आबादी, स्त्री-पुरुषोंकी सख्या, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक स्थिति, भूमिका विवरण, भूमिहीनोंकी सख्या, उपज, खर्च, कर्ज, व्यसन आदि सारी बातोंका उल्लेख रहता था, पर हैदराबाद, आध्र आदिमें इसका विवरण पहलेसे तैयार न मिलता। फिर भी यात्री-दलके लोग स्थानीय स्थितिका यथाशक्ति परिचय प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं।

* * *

इसके वाद नहाना-धोना, कपडे साफ करना।

नदी मिली तो ठीक, नाला मिला तो ठीक, तालाब मिला तो ठीक; वावडी मिली तो ठीक। कुछ न मिला तो कुँआ ही सही।

तैरनेको मिल जाय तो कहना ही क्या, नही तो लोटे उँडेलकर ही स्नानका आनन्द प्राप्त कर लिया जाता है!

* * *

नहाते-धोते, कपडे साफ करते-करते भोजनकी घटी वज जाती है।

खा-पीकर कुछ देर विश्राम।

फिर सामूहिक चरखा-यज्ञ, लिखाई-पढाई-स्वाध्याय आदि।

* * *

थोडी देर वाद सायकालीन प्रार्थना।

प्रार्थनाके वाद वाबाका प्रवचन।

प्रवचनके उपरान्त हैदरावादमें वावाने 'दाता-सघ' का कार्यक्रम रखा था। उसमें भूमिदाताओं, सम्पत्तिदाताओं आदिसे परिचय और वार्ता चलती। विशेष मुलाकातें अपराह्नमें चलती हैं या इस समय।

* * *

शामको बाबा सान्ध्य-भ्रमणके लिए निकल पड़ते हैं।

थोड़ी देर घूमते-घूमते विभिन्न विषयोंपर वार्ताएँ चलती हैं, फिर कहीं किसी खेतमें बाबा बैठ जाते हैं। साथके सभी लोग उनके आस-पास गोलाकार बैठ जाते हैं। कुछ देर चर्चा चलती रहती है। उसके बाद डेरेपर लौटते हैं।

*   *   *

भोजनोपरान्त भी कुछ अन्तेवासी बाबाके चरणोंमें उपस्थित रहते हैं। उस समयकी वार्ता तभी समाप्त होती है, जब बाल भाई या जय भाई कहते हैं : "आठ तो बज रहा है !"

और उसके कुछ देर बाद सब लोग निद्राकी गोदमें जा पड़ते हैं।

जल्दी सोना, जल्दी जागना स्वास्थ्य, समृद्धि और सद्बुद्धिका उपाय ही है।

"Early to bed,
And early to rise,
Makes a man healthy,
Wealthy and wise !"

प्रात:से सन्ध्यातकका कैसा आनन्दमय कार्यक्रम !

• • •

यात्री-दलके सदस्य कुछ देर ग्राम-सफाई आदिका काम करते हैं। कुछ लोग सडास आदिकी व्यवस्था करते हैं। कभी-कभी कुछ सदस्य ग्रामकी 'सर्वे' आदि करते हैं। वहांकी स्थितिका अध्ययन करते हैं।

उडीसामें पडावपर पहुँचते ही ग्रामकी स्थितिका परिचय बाकायदा लिखा-लिखाया मिल जाता था। उसमें गांवकी आबादी, स्त्री-पुरुषोंकी सख्या, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक स्थिति, भूमिका विवरण, भूमिहीनोंकी सख्या, उपज, खर्च, कर्ज, व्यसन आदि सारी बातोंका उल्लेख रहता था, पर हैदराबाद, आध्र आदिमें इसका विवरण पहलेसे तैयार न मिलता। फिर भी यात्री-दलके लोग स्थानीय स्थितिका यथाशक्ति परिचय प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं।

*　　　　*　　　　*

इसके बाद नहाना-धोना, कपडे साफ करना।

नदी मिली तो ठीक, नाला मिला तो ठीक, तालाब मिला तो ठीक, बावडी मिली तो ठीक। कुछ न मिला तो कुँआ ही सही।

तैरनेको मिल जाय तो कहना ही क्या, नही तो लोटे उँडेलकर ही स्नानका आनन्द प्राप्त कर लिया जाता है!

*　　　　*　　　　*

नहाते-धोते, कपडे साफ करते-करते भोजनकी घटी बज जाती है।

खा-पीकर कुछ देर विश्राम।

फिर सामूहिक चरखा-यज्ञ, लिखाई-पढाई-स्वाध्याय आदि।

*　　　　*　　　　*

थोडी देर बाद सायकालीन प्रार्थना।

प्रार्थनाके बाद बाबाका प्रवचन।

प्रवचनके उपरान्त हैदराबादमें बाबाने 'दाता-सघ' का कार्यक्रम रखा था। उसमें भूमिदाताओं, सम्पत्तिदाताओं आदिसे परिचय और वार्ता चलती। विशेष मुलाकातें अपराह्नमें चलती हैं या इस समय।

*　　　　*　　　　*

शामको बाबा साध्य-भ्रमणके लिए निकल पड़ते हैं।

थोड़ी देर घूमते-घूमते विभिन्न विषयोंपर वार्ताएँ चलती हैं, फिर कही किसी खेतमें बाबा बैठ जाते हैं। साथके सभी लोग उनके आस-पास गोलाकार बैठ जाते हैं। कुछ देर चर्चा चलती रहती है। उसके बाद डेरेपर लौटते हैं।

* * *

भोजनोपरान्त भी कुछ अन्तेवासी बाबाके चरणोंमें उपस्थित रहते हैं। उस समयकी वार्ता तभी समाप्त होती है, जब बाल भाई या जय भाई कहते हैं : "आठ तो बज रहा है !"

और उसके कुछ देर बाद सब लोग निद्राकी गोदमें जा पड़ते हैं।

जल्दी सोना, जल्दी जागना स्वास्थ्य, समृद्धि और सद्बुद्धिका उपाय ही है।

> "Early to bed,
> And early to rise,
> Makes a man healthy,
> Wealthy and wise!"

प्रात-से सध्यातकका कैसा आनन्दमय कार्यक्रम !

• • •

यात्री-दलके सदस्य कुछ देर ग्राम-सफाई आदिका काम करते हैं। कुछ लोग सहास आदिकी व्यवस्था करते हैं। कभी-कभी कुछ सदस्य ग्रामकी 'सर्वे' आदि करते हैं। वहाँकी स्थितिका अध्ययन करते हैं।

उडीसामें पडावपर पहुँचते ही ग्रामकी स्थितिका परिचय बाक़ायदा लिखा-लिखाया मिल जाता था। उसमें गाँवकी आबादी, स्त्री-पुरुषोंकी सख्या, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक स्थिति, भूमिका विवरण, भूमिहीनोंकी सख्या, उपज, खर्च, कर्ज, व्यसन आदि सारी बातोंका उल्लेख रहता था, पर हैदराबाद, आध्र आदिमें इसका विवरण पहलेसे तैयार न मिलता। फिर भी यात्री-दलके लोग स्थानीय स्थितिका यथाशक्ति परिचय प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं।

* * *

इसके बाद नहाना-धोना, कपडे साफ करना।

नदी मिली तो ठीक, नाला मिला तो ठीक, तालाब मिला तो ठीक; बावडी मिली तो ठीक। कुछ न मिला तो कुँआ ही सही।

तैरनेको मिल जाय तो कहना ही क्या, नही तो लोटे उँडेलकर ही स्नानका आनन्द प्राप्त कर लिया जाता है!

* * *

नहाते-धोते, कपडे साफ करते-करते भोजनकी घटी बज जाती है।

खा-पीकर कुछ देर विश्राम।

फिर सामूहिक चरखा-यज्ञ, लिखाई-पढाई-स्वाध्याय आदि।

* * *

थोडी देर बाद सायकालीन प्रार्थना।

प्रार्थनाके बाद बाबाका प्रवचन।

प्रवचनके उपरान्त हैदराबादमें बाबाने 'दाता-सघ' का कार्यक्रम रखा था। उसमें भूमिदाताओं, सम्पत्तिदाताओं आदिसे परिचय और वार्ता चलती। विशेष मुलाकातें अपराह्नमें चलती हैं या इस समय।

* * *

शामको बाबा सान्ध्य-भ्रमणके लिए निकल पड़ते हैं ।

थोड़ी देर घूमते-घूमते विभिन्न विषयोंपर वार्ताएँ चलती हैं, फिर कहीं किसी खेतमें बाबा बैठ जाते हैं । साथके सभी लोग उनके आस-पास गोलाकार बैठ जाते हैं । कुछ देर चर्चा चलती रहती है । उसके बाद डेरेपर लौटते हैं ।

* * *

भोजनोपरान्त भी कुछ अन्तेवासी बाबाके चरणोंमें उपस्थित रहते हैं । उस समयकी वार्ता तभी समाप्त होती है, जब बाल भाई या जय भाई कहते हैं : "आठ तो बज रहा है !"

और उसके कुछ देर बाद सब लोग निद्राकी गोदमें जा पड़ते हैं ।

जल्दी सोना, जल्दी जागना स्वास्थ्य, समृद्धि और सद्बुद्धिका उपाय ही है ।

"Early to bed,
And early to rise,
Makes a man healthy,
Wealthy and wise !"

प्रातःसे मध्यान्तकका कैसा आनन्दमय कार्यक्रम !

• • •

प्रार्थनाका फल कब मिलता है ?

प्रार्थनाका भी कोई फल मिलता है ?

जी हाँ, मिलता है। जब मन और वाणी एकहीमें मिल जाते हैं, तब प्रार्थनाका फल मिलता है। उस मनुष्यको प्रार्थनाका कोई फल नहीं मिलता, जो मुँहसे तो कहता है—"हे प्रभो, यह सब कुछ 'तेरा' है"—लेकिन वास्तवमें यह मानता रहता है कि यह सब कुछ 'मेरा' है।

—रामकृष्ण परमहंस

संस्मरण

१. जिस दिन बाबा साठके हुए !

२. भारत माँकी यह नंगी तस्वीर !

३. ये विदेशी तमाशबीन !

४. मिसाले दरिया जो पाये दे दे !

५. और जब धरती बँटती है !

६. विरह-मिलनके क्षण—

७. जहाँ नया भारत जन्म ले रहा है !

८ जब टूटे हुए दिल जुड़ते हैं !

९. शिकायतियोंसे पाला पड़नेपर—

१०. सन् '१६ में : जब बाबा काशीमें थे !

११. विनोदकी घड़ियोंमें—

१२. और जब बाबा रो पड़ते हैं !

१३. कार्यकर्ताओंके बीच

१४. शिक्षणकी नयी दिशा

१५. बड़ोंका जमघट होने पर—

१६. योजन और नियोजन

०

जिस दिन बाबा साठके हुए ! : १ :

गुणपुर : कोरापुट : उडीसा ।

ग्यारह सितम्बर, सन् पचपन !

आज विनोवाके जीवनके साठ वर्ष पूरे हो रहे हैं ।

आँखें सवेरेसे ही बाबाके मार्गपर बिछी थी ।

आठके लगभग बाबा डाक-बंगलेपर पधारे ।

जयप्रकाश बाबू और प्रभावती बहन आदिने कुछ आगे जाकर तथा गोप बाबू, रमा देवी, मालती देवी चौधरी आदिने द्वारपर बाबाका स्वागत किया ।

डाक-बंगलेके आसपास जनताकी अपार भीड ।

ख़ूब धूमधाम, स्वागत, जयजयकार !

"आम गाँरे भूमिहीन
रहिबे नाहीं, रहिबे नाहीं !
आम गाँरे भूमिमालिक
रहिबे नाहीं, रहिबे नाहीं !!"

के गगनभेदी नारे !

* * *

स्नानादिसे निवृत्त हो बाबा बरामदेमें बिछी चौकीपर आ विराजे ।

फर्शपर मंगल-घट था और थालियोंमें सजे थे शरीफे, केले, नारियल आदि फल ।

धूप-दीपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी ।

वंशधाराके पावन तटपर खुले मैदानमें आध घंटेतक हम सबने सूत्र-यज्ञ किया । उसके बाद प्रार्थना और रामधुन ।

कई बालिकाओंके साथ मालती देवीने सुमधुर स्वरमें एक उड़िया भूदान-गीत गाया और तब श्रीगणेश हुआ बाबाके जन्मोत्सव-समारोहका।

* * *

सबसे पहले माता रमा देवीने बाबाके ललाटपर कुंकुम और अक्षत लगाकर आशीर्वाद दिया और पुष्पोंकी वर्षा की।

फिर आये 'लाल बाबा'—ईश्वरलाल व्यास। आपने बाबाके गलेमें माला पहनाकर आशीर्वाद दिया।

तब उठे बापा—गोप बाबू।

हर्षोत्फुल्ल होकर बापा बोले : "हमारा सौभाग्य है कि आज कोरापुट-के जंगलोंमें हम बाबाकी वर्ष-गाँठ मना रहे हैं। उड़ीसापर संतोंकी कृपा नित्य बरसती रही है। हमारे वन-पर्वतोंमें विनोबाने चातुर्मास बिताया। यहाँ सैकड़ों ग्रामदान मिले। संतके आशीर्वादसे हम इन गाँवोंमें सर्वोदय-समाज विकसित करनेकी चेष्टा करेंगे। यों तो एक ही सालमें हम दोनोंका जन्म हुआ, फिर भी मैं बाबासे कुछ महीने बड़ा हूँ। इस नाते मैं आशीर्वाद करता हूँ कि बाबा शतायु हों और समाजमें क्रान्तिका समग्र दर्शन देखनेकी उनकी जो इच्छा है, वह पूरी हो। भगवान् हमारे बाबाको चिरायु करें!"

* * *

और तब जयप्रकाश बाबूसे अनुरोध किया गया कि बाबाकी जयन्तीपर वे कुछ बोलें। श्रद्धा, भावना, प्रेमसे उनका हृदय भर आया। बोले : "मेरे लिए बहुत कठिन होता है कि ऐसे मौकोंपर अपना दिल और अपनी जबान अपनी-अपनी जगहपर मैं रख सकूँ। हमारा सौभाग्य है, देशके करोड़ों गरीबों और भूमिपुत्रोंका सौभाग्य है कि बाबाने आज अपने जीवनके ६० वर्ष पूरे किये। हम सब बराबर महसूस कर रहे हैं कि बाबा गाँव-गाँव, जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ घूम-घूमकर उस शक्तिको पैदा कर रहे हैं, जो हम सबके अन्दर भरी पड़ी है और जिसके बिना देशके लोगोंका कल्याण असम्भव है।"

* * *

कोरापुटने भूदान-यज्ञमें ५०० के लगभग ग्रामोंका सर्वस्वदान देकर जो अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया है, उसकी चर्चा करते हुए जे० पी० ने कहा कि "आज सारे देशकी आँखें कोरापुटकी ओर लगी हुई हैं। जो शक्ति आज दिल्लीमें बैठी है, वह भी कोरापुटकी तरफ आँख लगाये है कि यहाँ कोई नयी घटना घट रही है। यहाँ जो हो रहा है, वह अगर सफल होता है, तो सारे देशके लिए और सारी दुनियाके लिए एक नया मार्ग खुलता है। बाबाकी चार मासकी तपस्यासे इस शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ है। इसकी कुछ चिनगारियाँ उत्तरप्रदेश और बिहारमें कहीं-कहीं अवश्य प्रकट हुई थीं, लेकिन आज वर्षा और पानीके दिनोंमें भी आपका जिला एक नयी ज्योति जगमगा रहा है।"

* * *

बाबाके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जयप्रकाश बाबूने कहा कि "दुनियाके इतिहासमें ऐसा शायद कभी नहीं हुआ कि एक महापुरुषके जाते ही दूसरा महापुरुष उसी रास्तेपर लोगोंको लेकर आगे बढ़े। इस पुण्य-भूमिका और हम सबका सौभाग्य है कि राष्ट्रपिता गांधीजीके जानेके बाद बाबा हमारा हाथ पकड़कर हमें आगे ले जा रहे हैं। आज चारों ओर जो भय है तथा प्रलय और सर्वनाशकी जो शंका फैली है, उसे मिटानेके लिए जो ज्योति यहाँ जगी है, वह अमर रहेगी और सारे विश्वमें फैलेगी। आज इस पवित्र अवसरपर करोड़ों भारतीयोंकी आवाज़में आवाज़ मिलाकर हम भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि बाबा चिरायु हों। आज भारतको ही नहीं, सारी दुनियाको बाबाकी जरूरत है।"

* * *

अपने सहकर्मियों, कार्यकर्ताओं और उड़ीसाके निवासियोंकी यह श्रद्धा और प्रेम देखकर बाबा गद्‌गद हो उठे। बोले : "हमारे इस शरीरके साठ साल समाप्त हुए हैं। उसके उपलक्ष्यमें सब मित्रोंने यहाँपर अपना प्रेम प्रदर्शित किया, उसके लिए मैं आप सब लोगोंका उपकार मानता हूँ।"

विनोदमें आकर बाबाने कहा कि श्रुतिके अनुसार मनुष्यकी आयु सौ

वर्षकी होनी चाहिए। इसलिए हमने सौ सालोंके लिए सौ नम्बर मुक़र्रर किये हैं। इसमें हम हर सालके लिए एक-एक नम्बर नही देते। पहले पचास सालके लिए हर सालका आधा नम्बर, फिर पचहत्तर सालतक हर सालका एक नम्बर और आखिरके पचीस सालोंके लिए हर साल दो नम्बर। इस तरह नम्बर देना उचित है। इस हिसाबसे देखा जाय, तो ६० सालके लिए हमें मुश्किलसे ३५ नम्बर मिलेंगे। इसका मतलब यह होगा कि मनुष्य 'थर्ड क्लास' पास हुआ। तो उसके लिए किसी खास समारोहकी ज़रूरत नही मानी जायगी।

यह हुई बाबाकी पहली बात।

* * *

मुझे हँसी आयी, बाबा अपने सर्टिफिकेट तो अग्निनारायणको समर्पित करते हैं और 'थर्ड क्लास' पानेपर इस तरहसे मलाल करते हैं।

* * *

बाबाकी पहली बात गणितसे भरी थी, तो दूसरी बात मनोविज्ञान और अनुभवसे। जेलका एक किस्सा सुनाया उन्होंने। सुबह-शाम दिन-रात कई बार वहाँ कैदियोंकी गिनती हुआ करती है। जेलवाले हर घडी चौकन्ने रहते हैं कि कही कोई कैदी गायब न हो जाय।

हाँ, तो एक रातको एक वार्डर गिनती कर रहा था। एक, दो, तीन, चारसे शुरू करके वह तिरपन, चौवन, पचपनतक तो पहुँच गया, पर आगे उसकी गाडी रुक गयी। उसे झपकी आ गयी, तो बाबाके एक साथीने कहा : "रुका क्यों ? अपनी गिनती चालू कर।" नींद अपना काम कर रही थी, पर चेतना भी लुप्त नही हो पायी थी। चौवन, पचपन तो उसने कहा, पर आगे छप्पन कहनेके बजाय वह कह गया : 'बचपन!'

चौवन, पचपन, बचपन!

मुझे याद पडा एक विश्वविद्यालयका दीक्षान्त समारोह। देशके एक सम्मान्य नेताको "डॉक्टर अव लॉ" की सम्मानित उपाधि दी जा रही थी।

उपाधिदाता सज्जन उक्त डिग्रीका नाम लेते समय 'Honoris Causa'—"आनरिस काजा" के साथ-साथ बोल गये "डॉक्टर अव लाज़ा" ! हजारों छात्रों और दर्शकोंके ठहाकेसे सारा वायुमण्डल गूँज उठा।

बाबाने जब 'चौवन, पचपन, बचपन' का किस्सा सुनाया, तो हम लोग भी ठहाका लगाये बिना न रह सके। पर यही बाबा गम्भीर होकर बोले : "हम अपने अनुभवसे देखते हैं कि इतने वर्षोंका हमें कोई भार नही मालूम होता है। हमारे देशमें परमेश्वरकी कृपासे ऐसे कई वृद्ध मौजूद हैं, जो जवानोंके समान उत्साहसे काम कर रहे हैं। लेकिन मैं न तो वृद्धताका अनुभव कर रहा हूँ, न जवानीका। मुझे तो अनुभव होता है कि मेरा बचपन भी अभीतक समाप्त नही हुआ। जेलका किस्सा मुझे याद आया और लगा कि पचपनके बाद तो बचपन शुरू हो जाता है। बच्चोंके लक्षण यही हैं कि वे पानीमें खेलते-कूदते हैं, किसीकी कोई पर्वाह नही करते। माँ-बाप उन्हें पानीमें भीगनेसे मना करते हैं, तो भी वे माँ-बापकी बात नही मानते। इस जिलेमें आपने हमारे ये सब लक्षण देखे हैं। इसलिए हम तो बचपनका ही अनुभव कर रहे हैं और यह सारा समारोह हमें बेटगा मालूम हो रहा है।"

* * *

तीसरी बात बाबाने यह कही कि "मनुष्य साठ सालकी उम्रतक पहुँचा, तो उसका अर्थ इतना ही होता है कि उसे मालूम हो गया कि कैसे जीना चाहिए। उसके बाद तो उसे भरोसा हो जाता है कि अब मैं जी सकता हूँ। लेकिन लोग अगर यह समझने लगें कि यह आदमी बूढा हो गया, तो बडा मुश्किल काम हो जाता है। जवानोंका कोई भरोसा ही नही कि वे किस क्षण चले जायँगे। एक उम्रके बाद शरीर किस तरह रहता है, यह मालूम हो जाता है। इसलिए तभीसे जीवनका आरम्भ समझना चाहिए। इस लिहाज़से भी हमारा आरम्भ ही हो रहा है। अभी गोप बाबूने हमें आशीर्वाद देते हुए याद दिलाया कि वे हमसे कुछ महीने बडे हैं। लेकिन हमने तो उनका जो चित्र इस (कोरापुट) जिलेमें देखा, उसपरसे

हमें लगता है कि वे भी अभी बचपनमें ही हैं। इसलिए यह हमारी वाल-गोपाल मण्डली इकट्ठी हुई है और हमारा यह खेल चल रहा है।"

* * *

साठ सालके इस 'बालक' की बातें सुनकर लोगोंको बडी प्रसन्नता हुई। बाबा सचमुच ही इन दिनों वालक वन गये हैं। वही मस्ती, वही विनोद, वही खिलखिलाहट। बालकोंकी तरह उछलना-कूदना, पहाडोंपर चढना-उतरना, पानीमें भीगना, नदियों-नालोंको झूम-झूमकर पार करना बालपन नही तो क्या है !

सुभद्राकुमारी चौहानने अपनी एक कवितामें वचपनका चित्रण करते हुए कहा है

मैं बचपनको बुला रही थी,
बोल उठी बिटिया मेरी !
नन्दन वन-सी फूल उठी,
वह छोटी-सी कुटिया मेरी !!

वालकोंको देखकर सभीका चित्त प्रसन्न हो उठता है। क्यों ? इसी-लिए कि उनमें भोलापन है, सरलता है, निष्कपटता है, निर्विकारिता है।

और बाबामें ये सब गुण हैं ही।

फिर यदि वे अपनेको वालक मानते हैं, तो किसे आपत्ति हो सकती है ?

* * *

कालिदासने लिखा है . *'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवताम् विधत्ते।'* भक्त लोग एक क्लेश मिटते ही नये क्लेशका आरम्भ करते हैं। इसकी चर्चा करते हुए वावाने कहा कि हम वडे भाग्यवान् हैं कि हमें स्वराज्य-यज्ञमें तपस्या करनेका मौका मिला और अब दुवारा सर्वोदय यज्ञमें तपस्या करनेका अवसर मिल रहा है। आपने कहा कि "हमें आशा रखनी चाहिए कि यह काम पूरा हुए वगैर भगवान् अपने दर्शनके लिए हमें बुलानेवाला नहीं है। भगवान् जव किसीको ऐसा सौभाग्य देता है, तो उसके दोनों हाथोंमें लड्डू रहता है। भगवान् जल्दी बुलाता है, तो उसे दर्शनका आनन्द

मिलता है, और यदि जल्दी नही बुलाता, तो उसे भगवान्‌की ही सेवाका आनन्द मिलता है। इस तरह जिसके लिए इस बाजू आनन्द और उस बाजू भी आनन्द है, उसके जीवनमें सिवा आनन्दके दूसरी वस्तु रहेगी ही नही।"

'दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे !' की कैसी सुन्दर कल्पना है। हम तो आज बिलकुल उल्टे रास्ते जा रहे हैं। बाबाको दोनों ओर आनन्द दीखता है, हमें दोनों ओर दुःख। एक ओर नरककी यातनाओंका दुःख और दूसरी ओर 'गृह कारज नाना जंजाला' का दुःख। इधर कुँआ है, उधर खाई। जीवनका यह उल्टा दृष्टिकोण बदल दें, तो हमें भी सर्वत्र इसी प्रकार आनन्दके दर्शन होने लगें।

* * *

बाबाने इस बातपर प्रसन्नता प्रकट की कि आजका यह दिन कोरापुट जिलेकी यात्रामें आया है। बोले : "हम इस दिनको अपने साठ वर्षोंकी पूर्तिका उत्सव नही मानते, बल्कि यहाँपर जो भूमिक्रान्ति हो रही है, उसके संकल्पका दिन मानते हैं। मेरा बचपनसे बड़ा सौभाग्य रहा है कि मुझे हमेशा सज्जनोंकी संगति मिली है और सबका खूब अच्छा सहयोग मिला है। इस जिलेमें भी मुझे चार महीनेसे यही अनुभव आ रहा है।"

सत्संगतिकी महिमा कौन नही जानता ? तुलसी बाबाने कहा है :

"सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥"

संत तो पारस होते हैं। लोहेको कंचन बना देते हैं। फिर बाबा जैसा कंचन हो, तो कहना ही क्या ! जिसे जीवनके प्रारम्भ कालसे सज्जनोंकी संगति मिली, वह यदि अपने जीवनमें इतना ऊँचा उठा, तो इसमें आश्चर्य ही क्या !

बाबाके साथ पचासों कार्यकर्ताओंकी टोली चलती है। उनके लिए बाबाके हृदयमें कितना आदर है, कैसी श्रद्धा है, इसका विवेचन उन्होंने इन शब्दोंमें किया : "यह जिला (कोरापुट) मलेरियाके लिए प्रसिद्ध है। यहाँपर बीच-बीचमें बारिश भी खूब हुई है और घने जंगल तो

यहां हैं ही। फिर भी इस बारिशमें पचासों कार्यकर्ता साढे तीन, चार महीनेसे लगातार घूमकर कार्य कर रहे हैं। इसलिए अब यह शका नही रही है कि बारिशमें किस तरह काम हो सकेगा। यहांपर बहुत बडा कार्य हुआ है और कार्यकर्ताओंका ढाढस और उनकी हिम्मत बंध गयी है। बाबाको हर जगह कई सहूलियतें मिलती हैं, लेकिन इन कार्यकर्ताओं-को कोई सहूलियत नही मिलती। इसलिए आजके दिन हम इन सब कार्यकर्ताओंका अत्यन्त हृदयपूर्वक अभिनन्दन करते हैं। परमेश्वरसे हमारी मांग है कि वह इन सबको ऐसी ही सद्बुद्धि दे, इन्हें दीर्घायु करे। इन सबका परस्पर प्रेमभाव शतगुणित हो और सबकी हृदय-शुद्धि उत्तरोत्तर होती जाय।"

मुझे स्मरण आया वानरोंका वह सौभाग्य

"जिनहिं, राम जानत करि मोरे!"

*   *   *

बाबाके सह-यात्री-दलके कार्यकर्ताओंका कर्म *"निष्काम कर्म"* की पवित्र श्रेणीमें आता है, ऐसा बाबा महसूस करते हैं। वे कहते हैं : "हमारे कामका आधार हृदय-शुद्धि है। यज्ञ-कार्य हृदय-शुद्धिपर ही निर्भर करता है। हम देखते हैं कि कार्यकर्ता चार महीनेसे अविश्रात श्रम करते आ रहे हैं और उन्हें किसी प्रकारकी ख्याति या लाभ हासिल नही है। फिर भी वे काम करते जाते हैं, तो हमारे हृदयको बडा आनन्द होता है। काम तो सभी करते हैं, पर निष्काम कर्म दुर्लभ है। इस जिलेके कार्य-कर्ताओंको यह चीज सुलभ होते देख हमें प्रसन्नता होती है।"

*   *   *

आज देशके कोने-कोनेमें भूदानका व्यापक आन्दोलन चल रहा है, पर बाबा उसका रत्तीभर भी भार महसूस नही करते। उनकी मान्यता है कि परमेश्वर ही इसके नेता हैं। वे नेता न होते और इसका थोडा-सा भी भार बाबापर होता, तो वे टिक नही सकते थे। तभी तो वे कहते हैं कि ईश्वरकी प्रेरणा न होती, तो ये छोटे-छोटे कार्यकर्ता इस तरह काम

नही कर सकते थे। 'वह' जब चाहता है, तो जड़को चेतन बनाता है, नाचीज़को चीज़ बनाता है !

*　　　*　　　*

वस्तुतः निष्काम कर्मका मार्ग यही है। जहाँ कामना है, फलकी आसक्ति है, वहाँ चिन्ता है, भार है, परेशानी है। पर जहाँ फलकी आसक्ति ही नही, वहाँ भारका प्रश्न ही नही उठता। मैं तो काम करना जानता हूँ। *'राम काज कीन्हें बिना मोंहि कहाँ विश्राम?'* यह काम मेरा नही, 'राम' का है। मैं तो ठहरा उसके हाथका कठपुतला। अब वह बने तो उसका, बिगड़े तो उसका।

जीवनमें हम यह दृष्टि अपना लें, तो कहाँ टिकेंगी हमारी सारी चिन्ताएँ, सारी परेशानियाँ ? पलक मारते ही वे उड़ंछू हो जायँगी। परन्तु कहाँ सध पाती है हमसे यह साधना ?

*　　　*　　　*

भूदान-आन्दोलनके सम्बन्धमें किये जानेवाले कई तरहके आक्षेपोंकी भी बाबाने चर्चा की। आप बोले : "हमारे कुछ भाई हमें बहुत दफा कहते हैं कि आपने जो यह ५ करोड़ एकड़का संकल्प किया और उसके साथ सन् '५७ तककी जो मुद्दत लगा दी, उससे इसमें कितने ही दोष आ सकते हैं और अहिंसामें भी बाधा पड़ सकती है।"

बाबाने इन आक्षेपोंका उत्तर देते हुए कहा कि "यह कल्पना तभी सही हो सकती थी, जब हम इस संकल्पका कोई भार महसूस करते। लेकिन हम इसका कोई भार महसूस नही करते, इसलिए इसमें उतावलीकी या हिंसाकी कोई शंका नही हो सकती है। सोचनेकी बात है कि लोगोंसे पाँच करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त करनेका संकल्प हम कर ही कैसे सकते है ? हम यदि कोई संकल्प कर सकते हैं, तो इतना ही कि हम लोगोंके पास जायँगे और प्रेमसे अपनी बात समझायेंगे। ज़मीन देनेका संकल्प तो वे ही कर सकते हैं, जिनके पास ज़मीन है। पाँच करोड़ एकड़का

सकल्प तो सीधा-सादा गणित है। हमने कहा है कि देशके उद्धारके लिए इतना होना आवश्यक है।

"रही बात मीयादकी . सो वह भी हमारी कल्पना नही है। इतिहासके निरीक्षण और कुछ अपनी श्रद्धा—इन दोनोंके कारण हमारे मनमें यह विचार आया कि इस कामकी कुछ मुद्दत होनी चाहिए। हमने अपने मनमें वह मुद्दत मान ली। परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि इस सीमाके भीतर हम कुछ गलत ढङ्गसे काम करेंगे। हमारा रास्ता तो सीधा और सरल है। सत्य हमारा आधार है और अहिंसा हमारा प्राण। इन दो आधारोंपर निष्ठा रखकर हमने यह काम शुरू किया है।"

* * *

आक्षेपोंकी विनोदभरी व्याख्या करते हुए बाबा बोले : "मेरा गणितपर बहुत ज्यादा विश्वास है, लेकिन ये आक्षेपकर्ता उसपर जितना विश्वास रखते हैं, उतना मेरा भी नही है। वे पूछते हैं कि 'चालीस लाख एकड भूमि प्राप्त करनेके लिए तीन साल लगे, तो पाँच करोडके लिए कितना समय लगेगा ? और सन् सत्तावनके अन्दर यह काम कैसे पूरा होगा ?' मैं जवाब देता हूँ कि सत्तावन तक काम पूरा करनेकी बात ही क्यों करते हो ? यह काम तो एक दिनमें होगा। सारा देश सकल्प कर ले और एक तारीख मुकर्रर कर ले, तो उस दिन देशके सब गाँवोंमें जमीनकी प्राप्ति और बँटवारा हो जायगा। हाँ, उसके आगे जो निर्माणका काम करना होगा, वह एक दिनमें नही हो सकेगा। उसके लिए जितना समय लगना चाहिए, उतना लगेगा।"

* * *

उडीसामें जो भूमिक्रान्ति हो रही है, उसकी चर्चा करते हुए बाबा बोले : "बिहारमें हमने कहा था कि उडीसामें भूमिक्रान्तिका काम करना है। यहांके कार्यकर्ताओंने इस शब्द 'भूमिक्रान्ति' पर श्रद्धा रखकर काम किया और हमारे आनेके पहले ही कुछ गाँव ग्रामदानमें मिले। अब मैं

अपनी आँखों यहाँ उस क्रान्तिका स्पष्ट दर्शन कर रहा हूँ। मुझे खुशी हो रही है कि यहाँ इस कामका कुछ थोड़ा-सा विरोध हो रहा है।"

'विरोधपर खुशी क्यों ?' इसकी व्याख्या करते हुए बाबाने कहा कि "इतना होनेपर भी विरोध न होता, तो मेरे मनमें यह शका आती कि शायद हम कुछ-न-कुछ गलती कर रहे हैं। इस कामसे तो आजकी समाज-रचनाकी बुनियाद ही ढह रही है। तब इसका विरोध स्वाभाविक ही ठहरा।" बाबाने समझाया कि "जहाँ आप कुल जमीनको ईश्वरकी मालकियत ही मानने लगे हैं और उसकी तरफसे गाँवकी जमीन मानने लगे हैं, वहाँ पर आप व्यक्तिगत मालकियत ही समाप्त कर देते हैं। लेकिन आज तो ऐसे समाजशास्त्री ही नहीं, नीतिशास्त्री और तत्त्वज्ञानी भी मौजूद हैं, जो व्यक्तिगत मालकियतको एक पवित्र वस्तु मानते हैं। वे कहना चाहते हैं कि जो चीज दूसरेने अपने हाथमें पकड़ रखी है, उसे हम हिंसासे छीन लेते हैं, तो यह एक अन्याय हो जाता है। लेकिन यह चीज उसीकी इच्छासे उसके हाथसे नीचे गिरनी चाहिए, क्योंकि उसने वह वस्तु प्राप्त करनेके लिए काफी परिश्रम किया है। इसलिए उसे वह चीज छोड़नेमें ही अपने परिश्रमकी सार्थकता मालूम होनी चाहिए। समाजको मालकियत छोड़नेमें जब परिश्रमकी सार्थकता महसूस होने लगेगी, तब हम कह सकेंगे कि हमने क्रान्ति की है।"

* * *

व्यक्तिगत मालकियतकी समाप्तिका यह विचार कितना क्रान्तिकारी है, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। इससे हमारे समाजका आजका ढाँचा ही ढह जायगा। तभी तो बाबा कहते हैं कि "जब ऐसा नया विचार शुरू होता है, तो पुराने विचारवाले आश्चर्यमें पड़ जाते हैं और कुछ लोग विरोध भी शुरू करते हैं। इसमें हमें ताज्जुब नहीं मालूम होना चाहिए। इस तरह जो थोड़ा विरोध शुरू हुआ है, उससे हमें बड़ा लाभ होगा। उससे विचार-मथन होगा, जिससे ज्ञानाग्नि पैदा होगी।"

अन्तमें बाबाने कहा कि "यहाँपर जो काम शुरू हुआ है, उसकी पूर्णता हमें करनी है और उसको रग-रूप देना है। हमें ऐसा सकल्प करना है कि हम इस काममें अपनेको शून्य बना दें। इस कामको आगे ले जानेकी शक्ति भगवान् आप सबको दे, यही मेरी भगवान्से प्रार्थना है।"

* * *

'सबको हमारा प्रणाम'—कहकर बाबाने जब अपना प्रवचन समाप्त किया, तो हम सब मानो सोतेसे जागे। अभीतक लाउडस्पीकर बोल रहा था, टेप रेकार्डिंग मशीन बाबाकी वाणीको कैद करती जा रही थी, परन्तु हम सब मन्त्रमुग्ध-से बैठे थे। श्रवणपुटों-से बाबाकी अमृत-वाणीका पान करते हुए हम कल्पना-लोकमें विचर रहे थे। ऐसा लगता था कि हम उस जगत्में जा पहुँचे हैं, जहाँ न हिंसा है, न अशान्ति, न लडाई है, न झगडा, न दुःख-दैन्य है, न अभाव। चारों ओर सुख, शान्ति और आनन्दकी त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है और सभी लोग उसमें निमज्जन करके भाव-विभोर हो रहे हैं।

* * *

चारों ओर अद्भुत आनन्द बिखरा था। धूप-दीपकी सुगन्धसे सारा वातावरण गमक रहा था। श्रद्धालुओंने अपनी-अपनी श्रद्धा बाबाके चरणोंमें निवेदित की। मैंने भी अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपनी ३ पुस्तकें—*'सन्तों-की वाणी'*, *'सेवाकी पगडण्डी'* और *'भारतवर्षका आर्थिक इतिहास'*—बाबाके चरणोंमें रख दी और उनके पैर छू लिये। सर्व-सेवा-सघका प्रकाशन भी साथ लाया था। उसका भी एक सेट बाबाको अर्पित किया।

और तब आया प्रसाद-वितरणका नम्बर।

फल बँटते देख बाबाके आसपास भीड़ एकत्र हो गयी।

पहले तो बाबा हरएकको फल देते जाते थे, परन्तु भीड़ बढ़ते देख बाबाका 'बचपन' मचल पडा। फल उठा-उठाकर उन्होंने इधर-उधर फेंकने शुरू किये। लोग उछल-उछलकर फल गपकने लगे। बड़े भी, छोटे भी, स्त्री भी, पुरुष भी।

पता नही कबतक चलता यह खेल, पर एक अन्तेवासी बाबाको पकड़कर भीतर कमरेमें ले गया और तब भीड़ प्रसाद लेकर इधर-उधर छितरा गयी।

* * *

उस दिन बाबाके लिए हरएकके हृदयमें एक ही कामना थी—

तुम सलामत रहो हजार बरस,

हर बरसके दिन हों पचास हजार !

● ● ●

भारत माँकी यह नंगी तस्वीर : २ :

बात है अक्तूबर १९४५ की।

उन दिनों मैं रोज तीसरे पहर सिगरासे जाता था हिन्दू विश्वविद्यालय।

रास्तेमें एक छोटे-से गाँवसे मुझे रोज गुजरना पड़ता।

और वहाँ मैं रोज देखता एक बच्चा।

दुबला-पतला, काला-कलूटा।

शरीर अस्थि-पंजरमात्र।

शायद उसे बीमारी थी सूखाकी।

उसकी माँ उसे रोज तेल लगाती मिलती।

पर, उसकी वह शक्ल देख मैं रोज सिहर उठता।

'हे भगवान्! ऐसा दुर्बल, अशक्त, रोगी, कंकाल बेटा देकर उस माँकी गोद भरनेकी ही क्या जरूरत थी!'

* * *

कोरापुटमें घूमते हुए मैंने ऐसे असंख्य बच्चे देखे।

शरीर हड्डियोंका ढाँचा, पेट हँडिया-सा।

गड्हेमें धँसी आँखें।

और उनके माँ-बाप?

उनकी ही हालत कौन अच्छी थी!

न पेटभर दाना : न तनभर कपड़ा।

छप्परपर घासके दो तिनकोंका भी टोटा।

* * *

उस दिन पद्मपुरमें सुना कि पासमें ही एक समग्रदानी ग्राम है।

नाश्तेके बाद ही हम लोग चल पड़े वहाँकी जाँच-पड़तालके लिए।

मेरे साथ थे सुरेश रामभाई, द्वारको भाई और गोविन्द रेड्डी। कुशा और नारायणको ले लिया दुभाषियेका काम करनेको।

धानके लहलहाते खेतोंसे होकर, छोटे-छोटे नालोंको पार करते हुए हम ठीक दोपहरमें तीन मील दूर उस गांवमें जा पहुँचे।

* * *

सिर्फ १२ आदिवासी परिवारोंका गांव।

सभी परिवार आपसमें सम्बन्धित। कोई किसीका भाई, कोई किसीका भतीजा, कोई किसीका चाचा, कोई किसीका ताऊ।

मकान सबके एक-दूसरेसे सटे हुए। सबकी बनावट भी एक-सी।

एक ओर पशुओंका बाड़ा। एक सीधमें।

बीचमें खाली ज़मीन खुली हुई।

फिर समानान्तर रेखामें मकान।

मिट्टीकी दीवालें, फूसके छप्पर।

बाहर दालान, फिर एक कोठरी, उसके बाद एक कोठरी।

दूसरी ओर रसोई।

रसोईके आगे थोड़ी-सी खुली, घिरी हुई ज़मीन।

उस ज़मीनमें साग-सब्ज़ी।

साग-सब्ज़ीमें बैगन, भिण्डी, नेनुआ, लौकी, कद्दू, परवल, गोभी आदि। जब जैसी ऋतु हो।

* * *

एक मकानके दरवाज़ेपर हम लोग जा डटे।

गरीबी थी, फटे-हाली थी जरूर। पर सफाई बे-जोड़ थी।

सब मकान "लिपे पुते अरु स्वच्छ सुघर" थे।

आदिवासी ग्रामोंमें सर्वत्र हमें यह विशेषता देखनेको मिली।

* * *

कुशाकी मातृभाषा है उड़िया।

हिन्दी भी वह जानता है।

हम लोग हिन्दीमें प्रश्न करते, वह उडियामें अनुवाद करता।

पर आदिवासी तो उडिया भी ठीकसे नही समझते।

तब नारायणसे हम लोग काम लेते।

नारायण उडियाके अलावा उन लोगोंकी विशेष भाषा बोल लेता है।

इस तरह दो-दो दुभाषियोंके माध्यमसे हम लोगोंने वार्ता शुरू की।

हम कुशासे कहते, कुशा नारायणसे कहता, नारायण उन लोगोंसे कहता।

दोनों ओरसे यह तेहरी कवायद !

नारायणके ही प्रयत्नसे इस गाँवका समग्रदान मिला है।

वह यहाँकी स्थितिका जानकार है। इसलिए कुशाके मुखसे हमारा प्रश्न सुनते ही अक्सर वह खुद जवाब देने लगता। पर, हमें तो प्रत्यक्ष जानकारी चाहिए थी। इसलिए उससे हम कहते : "भाई, आप नही, आप नही ! इसे 'पचारो' (पूछो), इसे 'पचारो'।"

*　　　*　　　*

भाषाकी दिक्क़त तो थी जरूर। हमारे दुभाषिये भी अपने फनमें बहुत माहिर न थे। इसलिए विस्तारसे हम बारीकीमें नही जा सके। फिर भी गाँवकी स्थितिका बहुत कुछ सही अंदाज हमें लग गया।

*　　　*　　　*

"बारहमें भूमिवान् परिवार कितने हैं, भूमिहीन कितने ?"

"नौ भूमिवान्, तीन भूमिहीन।"

"सबसे अधिक ज़मीन किसके पास है ?"

संयोगसे हम उसीके दरवाजेपर बैठे थे, जिसके पास सबसे ज्यादा जमीन थी।

"कुल कितनी ज़मीन है तुम्हारे पास ?"

"२२ एकड।"

"परिवारमें कुल सदस्य कितने हैं ?"

"स्त्री बच्चे लेकर सात।"

"उपज ?"

"सालमें कोई १८० मन धान ।"

"गुज़र हो जाती है मज़ेमें ?"

"किसी तरह ले-देकर काम चल जाता है। बचता कुछ नही। २० मनके करीब धान बेच देना पडता है। कभी-कभी पद्मपुरके साहूकारोंसे गल्ला उधार लेना पडता है।"

"उधार लेनेका क्या तरीका है ? कितना लेनेपर कितना देना पडता है ?"

"गाँवमें हमसे कोई २० मन उधार लेता है, तो उसे २५ मन लौटाना पडता है। हम पद्मपुरवालोंसे जब उधार लेते हैं, तो २० मनका २८ मन देना पडता है।"

"यहाँकी सब ज़मीन तुम्ही लोगोंकी है ?"

"नही। यहाँकी कुछ जमीनके मालिक पद्मपुरके लोग हैं। वहाँके कुछ ब्राह्मण अपनी गायें यहाँ छोड जाते हैं। जबतक वे ब्याती नही, तबतक यही चरती हैं।"

"चरवाई तुम्हें क्या मिलती है ?"

"गोबर छोडकर कुछ नही !"

* * *

"कोई ग्रामोद्योग चलता है यहाँ ?"

"कोई खास नही। यों रस्सी-टोकनी, पत्तोंकी छतरी आदि लोग तैयार करते हैं, पर उससे कोई खास आमदनी नही।"

"कर्ज़ कितने लोगोंपर है ?"

"करीब-करीब सब लोग क़र्ज़के चगुलमें फँसे हैं। खानेभरको मिलना मुश्किल है।"

"कोई व्यसन है ?"

"शराब कभी-कभी पीते हैं हम लोग।"

* * *

इतनी जाँच-पडतालके बाद हम लोग आये मुख्य प्रश्नपर।

"अच्छा, यह तो बताओ भाई कि तुमने क्या सोचकर अपनी सारी जमीन भूदानमें दे दी? उससे तुम्हे क्या फायदा होगा? अभी तुम्हारे पास २२ एकड जमीन है। नये सिरेसे भूमि बँटेगी, तो तुम्हें १५-१६ एकड जमीनसे ज्यादा न मिलेगी। इसमें तुम्हारा क्या फायदा है?"

और तुरत बाबाके शब्दोंमें हम "विद्वानो" को करारा तमाचा मिला!

"फायदा होता है व्यापारमें। वहाँ सौका डेढ सौ मिलता है। यह व्यापार तो है नही। यों ही हम कौन बहुत अच्छी हालतमें हैं! अब सब मिल बाँटकर खायेंगे, थोडी तकलीफ ही सही।"

श्रद्धासे हमारा मस्तक नत हो गया उस भोले-भाले आदिवासी ग्रामीणके चरणोंमें!

* * *

"विनोबासे तुम्हें कोई अपेक्षा है? कुछ चाहते हो बाबासे तुम?"

"हमें चाहिए सिर्फ १ कुँआ और १ स्कूल।"

"अभी पीनेवाले पानीका क्या प्रबन्ध है?"

"एक खेतमें एक गडही है। उसीसे भर लाते हैं। बरसातमें तो वह खेतमें ही एकरस हो जाता है। पानीकी बडी तकलीफ है हमें।"

"और शिक्षा?"

"उसका हाल भी बुरा है।"

"गाँवमें कोई पढा-लिखा नही है?"

"एक आदमी है। थोडा-सा ट-ट-प-प जानता है। वह फुर्सतके समयमें बच्चोंको थोडा-सा पढाता है।"

* * *

बातचीतके बाद हम लोग घुसे घरोंके भीतर।

प्रत्यक्ष दर्शनका अनुभव कुछ दूसरा ही होता है।

और तब तो हम लोगोंकी आँखें खुल गयी!

सबसे सम्पन्न उस आदिवासीके घरके भीतर थे दो-चार कपड़े, दो-चार बर्तन।

सबसे बड़ी सम्पत्ति जो हमें उस घरमें दिखी, वह थी—पीतलके दो कलशे।

एक अन्य घरमें, तीन एकड़वालेके घरमें भी थी आलमूनियमकी एक छोटी-सी थाली।

इनके अलावा घर-घरमें थे मिट्टीके थोड़े-से बर्तन।

लौकीको खोखला बनाकर जिस तरह साधू बाबा तूँबी बना लेते हैं, उसी तरह इन लोगोंने कुछ बर्तन बना रखे हैं, चम्मच, कटोरी आदि!

* * *

क्या कोई अपरिगही होगा, ऐसा अपरिग्रही!

न कपड़े-लत्ते, न बर्तन-भाडे, न और ही कोई सामान।

पेटके ही जहाँ लाले हैं, वहाँ गहनों आदिका तो सवाल ही कहाँ उठता है?

* * *

और इनका भण्डार-गृह?

क्या है वहाँ?

मिट्टीके एकाध छूँछे घड़े।

बहुत हुआ, तो एकाध बर्तनमें कोदों, सांवां, महुआ आदिके कुछ दाने!

* * *

एक अर्धनग्ना बहन हमें खींच ले गयी अपने रसोई-घरमें।

चूल्हेपर एक बड़ा-सा मिट्टीका घड़ा चढ़ा था।

"क्या है इसमें?" पूछते ही उसने ढक्कन खोलकर दिखाया।

सफेद पानी जैसी कोई चीज हमें लगी।

मुट्ठीभर कोदों सांवांका ५, ७ सेर पानीमें पकाया हुआ मांड था वह!

द्वारको भाईने उसे चखकर देखा, कोई स्वाद नहीं, कोई ठोस चीज नहीं उसमें।

और उस बहनने बताया : "बाबू, बच्चे रोते हैं, तो हम इसीमेंसे एकाध चम्मच देकर उन्हें बहला देते हैं।"

मुझे याद पडा अश्वत्थामाका दूध !

बच्चोंका ही नही, पुरुषोंका भी, स्त्रियोंका भी यही मुख्य खाद्य है।

घी, दूध, दही, मट्ठाके तो इन्हें कभी दर्शन ही नही होते !

सेव और अगूर, किशमिश और बादाम, पिस्ता और अखरोटकी तो बात ही क्या, शायद नाम भी न सुना होगा इन्होंने इन सबका, आम और अमरूद भी इन्हें नसीब नही होते !

* * *

न तो खानेको पेटभर दाने, न लज्जा ढकनेभरको वस्त्र !

स्त्रियाँ फटे चियडोंसे गुजर करती हैं।

पुरुषोंकी तरह वे भी लँगोटी लगाये दीखती हैं। ओढनीके नामपर तो शायद ही किसीके पास फटा चियडा हो !

* * *

मेरा जन्म गाँवमें हुआ है।

पालन-पोषण भी गाँवमें हुआ है।

देशके सैकडों गाँवोंमें मैं घूम चुका हूँ।

विभिन्न प्रान्तोंके अनेक गाँव मैंने देखे हैं।

पर मुझे मानना पडता है कि उडीसाके कोरापुटके इन गाँवोंमें मैंने दरिद्रताका जैसा नगा नाच देखा, वैसा और जगह कम ही देखनेमें आया।

हैदराबादके भी गाँवोंमें मैंने घूम-घूमकर गरीबीका दृश्य देखा है। आन्ध्रके भी गाँवोंमें यही दुर्दशा देखी है।

कम-से-कम हरिजन-बस्तियोंका तो सर्वत्र ही बुरा हाल है।

अभावकी ऐसी पीडा दूसरे स्थानोंमें कुछ कम भले हो, पर कुछ कम-ज्यादा होनेसे क्या होता है ! सब जगह एक ही रोना है।

* * *

हैदराबादके एक गांवमें हरिजन मुहल्लेमें हम लोग चक्कर लगा रहे थे।

साथमें थे विट्ठल भाई और एक जर्मन युवती उर्सुला।

उर्सुला बहन नर्स है। सेवाग्रामसे आ गयी थी इधर।

उसका मातृत्वसे भरा हृदय बच्चोंको देखकर आर्द्र हो उठता।

घरोंमें घुसकर वह गोदमें उठा लेती छोटे बच्चोंको।

उन्हें वह चूमती, प्यार करती, उनकी रेंट साफ कर देती!

माताएँ तो चकित रह जातीं—खादीकी नीली साड़ीमें आवेष्टित एक विदेशी महिलाको ऐसा करते देखकर।

और वह हमें बताती चलती : "इस बच्चेको पिलही है", "इसकी आँखोंमें बीमारी है", "इसके पेटमें खराबी है।"

जगह-जगह भूमिहीन भाई-बहन हमें घेर लेते।

अपनी कष्ट-कथा सुनाने लगते वे।

"खानेको नहीं है, पहननेको नहीं है, रहनेको नहीं है, जोतने-बोनेको नहीं है।"

अभाव, गरीबी, रोग, बीमारी, अशिक्षा।

सर्वत्र गांव-गांवमें एक ही कहानी! एक ही दर्द! एक ही मुसीबत!

आंख खोलकर कोई देखे भी तो।

*　　　*　　　*

और एक गांवमें।

एक चर्चमें, गिरजाघरमें बाबाका डेरा था।

तीसरे पहर चर्चके सामनेके मैदानमें प्रार्थना-सभा जुटी।

बाबा बोलने लगे, तो हरिजनोंकी बात निकल आयी।

एक ग्राममें एक भाई रोकर अपने घरमें ताला लगा रहा था।

पूछा तो उसने बताया कि उसका बाप मर गया है। इस गांवमें कोई उनकी लाश उठानेवाला नहीं, इसलिए वह जा रहा है पड़ोसके गांवमें! अपनी बिरादरीवालोंको बुलाने!

बाबा तो चौंक पड़े—मुर्दातक उठानेमें यह जात-पांतका बखेड़ा !

सहज भावसे बाबाने पूछ दिया : "आपके यहां तो ऐसा नही ?"

बहुत झेंपते हुए, उस गांवके लोगोंने भी मजूर किया : "हम लोग भी हरिजनोंका मुर्दा नही छूते !"

और उस दिन बाबाका पूरा प्रवचन इसी करुण प्रसगको लेकर हुआ।

भाई-भाईमें यह भेद !

आत्माकी एकता माननेवाले भारत जैसे पुण्य देशमें जात-पांतकी ये दीवालें !

सचमुच हम भूल बैठे हैं इस तत्वको—

"एकै बूँद, एक मलमूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक ज्योतितैं सब उत्पन्ना, को बाह्मन, को सूदा ॥"

* * *

यह है हमारी भारत मांकी नगी तस्वीर।

* * *

इस तस्वीरको देखकर, इन चेहरोंको देखकर यदि हमारा हृदय विदीर्ण न हो उठे, हमारे मनमें इन रोते चेहरोंपर मुसकराहट लानेकी भावना न उत्पन्न हो, तो हम आदमी नही, पत्थर हैं, पत्थर !

* * *

बापूसे किसीने पूछा था कि जब सन्देह मुझे घेर लें, किंकर्तव्यविमूढ़ता जकड ले, जब मेरा अहकार प्रबल हो उठे, तो मैं क्या करूँ ?

उन्होंने जो जवाब दिया, वह गांठ बांधने लायक है। लिखा उन्होंने :

"I will give you a talisman. Whenever you are in doubt, or when the self becomes too much with you, try the following expedient :

Re-call the face of the poorest, and the most helpless man whom you may have seen and ask yourself, if the step you contemplate is going to

be of any use to *him*. Will he be able to gain anything by it ? Will it restore him to a control over his own life and destiny ? In other words, will it lead to 'Swaraj' or Self-rule for the hungry and also spiritually starved millions of our countrymen ?

Then you will find your doubts and your self melting away."

'गरीबसे गरीब, दुःखीसे दुःखी व्यक्तिका जो चेहरा तुमने कभी देखा हो, उसकी याद करके अपनेसे पूछो : "मैं जो करने जा रहा हूँ, उस कार्यसे उस चेहरेपर कोई रौनक आयेगी क्या ? उससे उसे कोई लाभ होगा क्या ? उससे वह अपनेपर, अपने जीवनपर, अपने भाग्यपर कुछ नियंत्रण पा सकेगा क्या ? उसकी शारीरिक क्षुधा, उसकी मानसिक क्षुधा मिटेगी क्या" ?'

• • •

ये विदेशी तमाशबीन ! : ३ :

तमाशा किसे प्रिय नही ?

बालकोंके लिए ही नही, बडे बूढोंके लिए भी तमाशा परम् आकर्षणकी वस्तु है।

कही कोई तमाशा आ भर जाय, फिर देखिये लोग कैसे बेतहाशा दौड़ते हैं उस ओर !

छोटे-बडे, बच्चे-बूढे, तरुण-तरुणी, स्त्री-पुरुष—सभी।

* * *

और विनोबा भी तो एक तमाशा है !

हवाई जहाजके युगमें वह पैदल घूमता है।

* * *

जहां लोग एक-एक धुर जमीनके लिए लाशें बिछा देते हैं, पुश्त-दर-पुश्ततक मुकद्दमे लडते रहते हैं, वहां विनोबा लोगोंसे दस बीस, पचास सौ ही नही, लाखों एकड जमीन यों ही छीन रहा है—सिर्फ प्रेमकी जादूभरी छडी दिखाकर !

* * *

धन सम्पत्ति, रुपया पैसा, आज हमारे लिए सबसे प्रिय वस्तु है। उसके लिए हम झूठ बोलने, चोरी करने, डाका मारने, बेईमानी और जालसाजी करनेमें भी नही चूकते, शोषण और अत्याचार, अन्याय और विश्वासघात करनेसे भी बाज नही आते, उसी सम्पत्तिके बारेमें विनोबा कहता है, मैं उसका मूल्य मिटा डालनेके लिए पैदा हुआ हूं !

* * *

भूमिका वैषम्य आजके युगकी कठिनतम समस्या है।

इसे सुलझानेके अभीतक दुनियाको दो ही तरीके मालूम थे :

एक तरीका—कत्लका !

दूसरा तरीका—कानूनका।

विनोबाने इन दोनों तरीकोंसे निराला एक नया तरीका, तीसरा तरीका निकाला है—करुणाका !

* * *

और इस करुणाके तरीकेको भारतमें जो सफलता मिल रही है, उसे देखकर आज सारा संसार दाँतों तले उँगली दबा रहा है !

भारत तो आश्चर्योंका खज़ाना है।

एक-से-एक नये करिश्मे हैं यहाँ !

कभी खूँरेज़ीके बिना, कत्लके बिना, हिंसाके बिना किसी देशने आज़ादी पायी थी ?

गांधीने बिना एक भी बूँद रक्त गिराये भारत जैसा बड़ा देश स्वतन्त्र बना डाला !

और अब गांधीका ही एक चेला, उसीकी तरह एक लँगोटीवाला गाँव-गाँव पैदल घूमकर भूमिकी विषम समस्याको प्रेमके ज़रिये सुलझा रहा है !

* * *

वह ज़मीनवालोंसे ज़मीन माँगता है, पैसेवालोंसे पैसा माँगता है, बुद्धिवालोंसे बुद्धि माँगता है, श्रमवालोंसे श्रम माँगता है।

और मज़ेकी बात यह कि लोग उसे ज़मीन भी देते हैं, पैसा भी देते हैं, बुद्धि भी देते हैं, श्रम भी देते हैं और खूब देते हैं !

यही नहीं, सारा-का-सारा ग्राम उठाकर उसे दे देते हैं ! और अब तो ऐसे ग्रामोंकी संख्या हज़ारसे ऊपर जा चुकी है !

* * *

यह विनोबा भारतमें एक नयी हवा तैयार कर रहा है। प्रेमकी हवा, शांतिकी हवा, सद्भावकी हवा, उदारताकी हवा, त्यागकी हवा, अहिंसाकी हवा !

भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, श्रमदान, जीवनदान—जैसे दानकी अनेक नदियाँ विनोबाने बहा रखी हैं। एक-से-एक प्रेरक, एक से-एक अद्भुत, एक-से-एक प्रभावशाली।

*   *   *

तो, इस तमाशेको देखनेके लिए विनोबाकी पदयात्रामें विदेशियोंका आना स्वाभाविक ही है।

अक्सर ही हम देखते हैं, कभी कोई अमेरिकासे यह तमाशा देखने आ रहा है, कभी कोई आस्ट्रेलियासे। कभी कोई जर्मनीसे आ रहा है, तो कभी कोई फ्रांससे। कभी कोई इग्लैण्डसे आ रहा है, तो कभी कोई जापानसे।

*   *   *

और मजा तो उस दिन आया, जब हम लोगोंने हैदराबादके माधवराव पल्ली पडावपर देखा कि रूस, जो अभीतक यहाँ नही आया था, उसके भी प्रतिनिधि बाबाका तमाशा देखने आये हैं। और इतना ही नहीं, उन्होंने बाबाकी पदयात्राकी फिल्म भी उतारी! दूसरे दिन हम लोग रोजकी भाँति अपने नये पडाव श्रीरगपुरकी ओर बढ रहे थे और ये फिलमवाले हमारे आगे-आगे दौड-दौडकर हमारी फिल्म उतार रहे थे!

*   *   *

उस दिन (१६-६-'५५) पेनकम (कोरापुट) में ग्रामराज्यकी व्याख्या करते हुए बाबाने कहा :

"हम गाँववालोंको समझाते हैं कि आप लोग "मैं-मेरा" और "तू-तेरा" छोड दें और "हम और हमारा" कहना शुरू कर दें। अगर कोई हमसे पूछे कि तुम्हारी जाति क्या है, तो कह देना कि हम जाति-पाँति नही मानते! हम इस गाँवके रहनेवाले हैं।

"इसके आगे हम लोगोंको धंधा देना चाहते हैं, परन्तु जातियाँ नहीं बनाना चाहते। क्योंकि हम चाहते हैं कि हरएकको खेतीमें कुछ-न-कुछ समय देना ही चाहिए और फिर बचे हुए समयमें हर कोई अपना-अपना

धधा कर सकता है। अब जातियां नही रहेंगी, वृत्तियां रहेंगी। हर कोई कहेगा कि मेरी वृत्ति या तो बढईकी है या बुनकरकी है या शिक्षककी है। ये सारी वृत्तियां हैं, जातियां नही। सब मिलकर खेती करेंगे। तो सब जातियां किसानके साथ एकरूप होंगी और हर मनुष्य किसान होगा। इस तरहका ग्रामराज्य हमें बनाना है।

"हमारा विश्वास है कि ये छोटे-छोटे गांव हमारी कल्पनाके अनुसार बनेंगे। हम इन सब लोगोंको समझानेके लिए घूम रहे हैं कि भाइयो, इसके आगे तुम्हारे दिन आनेवाले हैं। तुम देख रहे हो कि ये विदेशी लोग तुम्हें देखनेके लिए आते हैं। ये लोग यह देखनेके लिए आते हैं कि अपनी सारी जमीन देनेवाले गांवके लोग कैसे होते हैं, जरा हम देखें। वे समझते हैं कि ये लोग ऐसा काम कर रहे हैं कि जिससे ये हमारे गुरु होंगे और सारी दुनियासे हिंसाको मिटा देंगे, क्योंकि अंग्रेज, फ्रेन्च, जर्मन, अमेरिकन आदि सबने जो राज बनाया है, वह सारा स्वार्थके ऊपर खड़ा है। वहांपर हरएकका व्यक्तिगत अधिकार इतना बढा दिया है कि फिर एक समाजवाद निर्माण हुआ है, जो उस व्यक्तिवादके विरुद्ध खड़ा हो गया। अब दोनोंके बीच टक्कर शुरू हुई है। पर जब वे देखते हैं कि सर्वोदयमें व्यक्तिवाद और समाजवाद, दोनों लीन होते हैं, तो उन्हें कुतूहल होता है कि यह काम कैसे चल रहा है, जरा देखें।"

उस दिनकी प्रार्थना-सभामें थे दो विदेशी : आल्फ्रेड नास और मिरियम कुगेलमैन।

आल्फ्रेड जर्मनीका, मिरियम अमेरिकाकी।

*   *   *

बाबाकी साठवीं वर्षगांठपर उनके दर्शन करनेके लिए १० सितम्बरको मैं गुणपुर (कोरापुट) पहुंचा।

आल्फ्रेड पहुंचा दूसरे दिन शामको।

व्यासजी बोले : "जरा इससे बात कर देखना अंग्रेजीमें। हिन्दी यह समझता नहीं। इसके भोजन आदिका खयाल रखना।"

और तबसे कुजेन्द्रीतक आल्फ्रेड चौवीसों घण्टे हमारे साथ रहा। वडा मस्त, परिश्रमी युवक।

*　　*　　*

आल्फ्रेडका घर है पश्चिमी जर्मनीमें।

पिछले युद्धमें वह बदूकघारी सिपाही रहा है।

और उसके वाद तीन साल रहा है—युद्धवन्दी।

युद्धकी विभीषिकाओंने इस नौजवानका हृदय पलट दिया है। अव वह कट्टर शातिवादी बन वैठा है।

एक दिन वावाने उसे भेटका मौका दिया।

और उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए वावाने अहिंसाकी बडी सारगर्भित व्याख्या कर दी :

"अहिंसा हृदयकी वस्तु है, ऊपरकी नही। हाथमें तलवार रखकर भी मनुष्य अहिंसक हो सकता है और हाथमें कोई हथियार रखे बिना भी मनुष्य हिंसक हो सकता है।"

उसके एक प्रश्नका उत्तर देते हुए वावाने कहा कि "सारा विश्व एक होना चाहिए। उसमें जगह-जगह Belts (मण्डल, घेरे) नही होनी चाहिए।"

*　　*　　*

वावासे प्रभावित होकर उसने लिखा : "विनोवाजी अपने प्रवचनोंमें जो कुछ कहते हैं, वह कोई नयी चीज नही। पर जिस तरहसे वे कहते हैं और जिस प्रक्रियासे अपने विचारोंको अमलमें लाते हैं, वह प्रक्रिया क्रान्तिकारी है। उनके भाषण हृदयसे निकलनेवाले और हृदयको छूनेवाले होते हैं। अन्यथा, यह कैसे सम्भव था कि क्या अमीर और क्या गरीव, सभी स्वयप्रेरणासे अपनी जमीन भूदानमें देते? केवल व्यक्तियोंने ही नही, कुल गांवके गांवोंने भूमिकी मालकियत छोड दी है। विनोवाजीकी सफलता केवल भूमिके दानमें नहीं है, वल्कि लोगोंके हृदय एव मानसके परिवर्तनमें है। वास्तवमें यही क्रान्ति है, जो हो रही है। और केवल भारतके लिए नहीं, सारे विश्वके लिए यह एक नये समाजकी बुनियाद डाल रही है। विनोवा हमें उस चीजकी याद दिलाते हैं, जिसका आजसे दो हज़ार वर्ष

पूर्व जन्म हुआ, लेकिन जो अबतक साकार नहीं हो सकी हैं—वह है सत्य और प्रेममें विश्वास। अब समय आ गया है जब लोगोंको, विशेषत. संसारके निवासियोंको पूर्वकी आवाजका अनुगमन करना चाहिए।"[1]

* * *

मिरियम, पेंसिलवेनिया (अमेरिका) की निवासिनी युवती, अभी-अभी तुर्कीमें २ साल तक अध्यापिकाका Contract (ठेका) पूरा करके लौटी हैं। देश जा रही थी, तो सोचा भारत होकर क्यों न जाऊँ !

और भारत जब आयी तो विनोबाका तमाशा न देखे, यह हो कैसे सकता था ?

* * *

यह भोली-भाली युवती हमारे देहातोंमें घूमती तो छोटे-छोटे अनेक बच्चे उसे घेर लेते।

और तभी उसे आ सताती जनसख्या-वृद्धिकी बात !

एक दिन वह इस समस्यापर मुझसे घण्टों उलझी रही, पर वह ठहरी Birth control (सतति-निग्रह) की उपासिका। मेरी बातोंसे उसे समाधान न हुआ। तब एक दिन बाबासे उसने पूछ दिया :

"What will happen to the accomplishments of Bhoodan in the next generation if the birth-rate is not checked ? Won't India be faced with the problem of too many mouths to feed from her land again in 30 years ?"

'यों ही जनसख्या बढती गयी, इसकी वृद्धि न रोकी गयी तो भूदानका क्या हश्र होगा ? ३० सालमें फिर न भारतके सामने जन-वृद्धिकी समस्या आ खड़ी होगी ?'

बाबाने उसकी शकाका निर्मूलन कर दिया। बादमें कुजेन्द्रीमें एक दिन उन्होंने कहा : "हमारे साथ हमारी यात्रामें एक अमेरिकन बहन थी।

---

१. भूदान यज्ञ सीन बाइ दि वेस्ट, पृष्ठ ४२।

पांच-सात दिन पहले वह गयी। वह दूसरे देशमें किसी कॉलेजकी प्रोफेसर थी और अमेरिका वापस जा रही थी। *हिन्दुस्तानमें ऐसे लोग आते हैं और आजकल तो फैशन पडा है यहाँ आकर भूदानको देखनेका।* उसने भी पढ-सुन रखा था कि हिन्दुस्तानका घोर मसला है जातिभेद, हिन्दुस्तानका घोर मसला है दारिद्रय, हिन्दुस्तानका घोर मसला है जनसख्याकी वृद्धि। जब बाहरकी ऐसी बहनें आती हैं तो स्वाभाविक ही लडके-बच्चे उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे होते हैं। उसने हमसे सवाल पूछा कि 'मैं आपके साथ घूम रही हूं तो देखती हूं कि यहां बहुत बच्चे हैं। हिन्दुस्तानकी जनसख्या इतनी बढती रही तो कैसे होगा?' हमने सोचा कि यह गलतफहमी उसके मनमें रह जायगी और न मालूम अमेरिकामें जाकर वह क्या सुनायेगी।

"हम जिन-जिन गांवोंमें जाते हैं, वहांकी लिखित जानकारी हमारे पास रहती है। तो दस-पांच गांवोंकी जानकारी हमने उसके सामने रखी। देखनेमें आया कि हर घरमें मुश्किलसे एक बच्चा है। अक्सर हर घरमें पांच जनसख्या रहती है और इस हिस्सेमें (उडीसामें) साढे तीन है। इसलिए सतानोंकी तो कोई समस्या ही नही है। जहां घरमें ५ व्यक्ति हैं, वहां भी सतानोंकी समस्या नही है और जबतक हर मनुष्यके पीछे एक मुँह और दो हाथ हैं, तबतक जनसख्याका सवाल ही नही उठता।' धरतीको पापका भार होता है, धर्मकी सतानका नही।"[१]

* * *

मिरियमने शुरू-शुरूमें बहुत झिझकते हुए बाबासे एक मजेदार सवाल पूछा: "क्या यह जरूरी है कि आपके साथ रहनेवाले non-smoker (धूम्रपान न करनेवाले), निर्व्यसनी और ब्रह्मचारी हों?"

बाबाने मुसकराकर कहा: "ऐसा अनिवार्य तो नही है, पर ऐसे लोग रहें तो अच्छा!"

* * *

१. विनोबा गॉव गॉवमें स्वराज्य, पृष्ठ २०-२१।

१६ मार्च १९५९ : कोडनूर, कुर्नूल, आंध्र ।

और यह लीजिये कुमारी ईव वरेट !

अमेरिकाकी "कूरियर" नामक पत्रिकाकी प्रतिनिधि ।

भारत आयी तो विनोबाकी 'Story' (कहानी) लिये बिना कैसे जाती ?

रातको आयी और दूसरे दिन सबेरे हम लोगोंके पीछे पड़ गयी : 'बाबासे मेरी बात करा दो । मुझे आज ही लौट जाना है ।'

* * *

युवती पत्रकार : बातोंमें परम-पटु ।

प्रातः-भ्रमणमें नागप्पा और मुझसे वह सारे रास्ते बात करती रही ।

एक-दो विषयोंपर ही नहीं, हम लोग जीवनके असंख्य विषयोंपर जानकारी लेते-देते रहे—दर्शनसे लेकर गार्हस्थ्य जीवनतक, विवाहसे लेकर तलाकतक । राजनीति छोड़कर शायद ही कोई विषय अछूता रहा हो । (राजनीतिक चर्चामें पड़ना उसने जान-बूझकर अस्वीकार किया था ।)

* * *

मैंने रास्तेमें ही बाबासे कहा : 'वरेट आज ही आपसे भेंट करना चाहती है । उसे समय दे सकेंगे क्या ?'

बाबा बोले : 'ये लोग तो वापसी टिकट लेकर आते हैं । उससे कहो कि कुछ दिन साथ रहकर देखे, सुने, समझे, तब मुझसे भेंट करे ।'

लेकिन वह नहीं मानी । प्रभाकरजीसे कहकर उसने बाबाको भेंटके लिए राजी कर ही लिया ।

* * *

भेंटके लिए बाबा बैठे तो सबसे पहले उसने अपने कैमरेसे 'टिक' की, फिर हम लोगोंसे बोली : 'मैं बाबाके सामने बैठती हूँ, आप हमारा Snap (फोटो) ले लें ।'

और जब प्रश्नोत्तरके बाद उठी तो उसने अपनी कहानी को Finishing Touch (अंतिम रंग) देते हुए बाबाके जूतोंका फोटो ले लिया—जिन्हें पहनकर बाबा हजार मील चले !

*　　　*　　　*

और बरेटका प्रश्न ?

बाबासे उसने पूछा कि "अमेरिका लोकतन्त्रके पथपर अग्रसर होनेमें भारतकी किस प्रकार मदद करे ? अमेरिकाकी ओरसे हार्दिक शुभेच्छाओं-के बावजूद कुछ भारतीय-पत्र अमेरिकाकी वैदेशिक-नीतिकी कडी आलोचना करते हैं। तब क्या उपाय है कि जिससे अमेरिका भारतका उत्तम प्रेमपूर्ण पडोसी बन सके ?"

बाबा बोले : "मेरी रायमें अमेरिका भारतकी सबसे अच्छी मदद यही कर सकता है कि वह अपने प्रेमका विस्तार केवल भारतके लिए नहीं, बल्कि सारी दुनियाके लिए, संसारके सभी देशोंके लिए करे, यहां-तक कि रूस भी, जिससे आज अमेरिका थोडा भय खाता है, उससे वंचित न रहे। हम अपने आपको जितना प्रेम करते हैं, उतना ही अपने पडोसियोंको भी करें। प्रेम सर्व-स्पर्शी होना चाहिए। आंशिक प्रेम संदेह-की सृष्टि करता है।

"अमेरिकाका सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य यह है कि वह जिस लोकतान्त्रिक मार्गमें मान्यता रखता है, उसका स्वयं अनुसरण करे। उसकी मान्यताओंमें सचाई है, यह माना, पर, मुख्य काम यह करना है कि भयका निराकरण होना चाहिए। आज रूसको अमेरिकासे भय है, और अमेरिकाको रूससे। इसी तरह पाकिस्तानको भारतसे भय है, भारतको पाकिस्तानसे। इसी भय और अविश्वासका परिणाम है—शस्त्र-प्रतियोगिता।

"जो राष्ट्र सर्वप्रथम भय त्याग करनेकी हिम्मत करेगा, वही लाभान्वित होगा। वह अपनी और सारी दुनियाकी रक्षा करेगा।"

और अन्तमें बाबाने कहा कि काश, ईसाई धर्ममें विश्वास करनेवाला महान् राष्ट्र अमेरिका भय-त्यागका यह पहला कदम उठाता !

*　　　*　　　*

और वह आस्ट्रेलियन युवक—गिवसन !

अपनी पाकेट रेकार्डिंग मशीन बाबाके सामने रखकर उसने पूछ दिया : "भूदानकी दिशामें आस्ट्रेलिया क्या करे ?"

बाबा बोले : 'आस्ट्रेलियामें ज़मीन ज्यादा है, जापानमें कम। अच्छा हो वह जापानको आमन्त्रित करे—आओ हमारे यहाँ। हम तुम्हें जमीन देते हैं, खोदो, खाओ !'

*　　　*　　　*

और हमारे ये इमाई भाई ?

यह काषाय वेषधारी जापानी बौद्ध-भिक्षु बहुत दिनोंतक बाबाके साथ था।

हँसमुख, प्रसन्न, सीधा-सादा।

बाबाने इससे जापानी सीखना शुरू कर रखा था।

एक दिन मुझसे बोला : 'निर्मला तो बाबाका सबक ठीकसे तैयार कर लिया करती थीं, मीरा नहीं कर पाती। मैं उसे समझाता हूँ, पर वह ठीकसे समझ ही नहीं पाती। आप इस काममें मेरी मदद करें तो बड़ी कृपा हो।'

और तब वह मेरे सामने खोलकर बैठ गया—जापानी भाषामें बच्चों-की कहानियोंकी एक किताब।

बाबा उसी किताबसे पढ रहे थे।

*　　　*　　　*

बड़ी मजेदार कहानी थी—

एक सियार था। एक दिन वह चौंककर भागा, यह चिल्लाता हुआ कि 'भागो, भागो, पृथ्वी फट रही है !' जंगलके और जानवर भी उसके साथ भागने लगे। सब लोग यही चिल्लाते चले जा रहे थे कि 'भागो, भागो, पृथ्वी फट रही है !' होते-होते अन्तमें शेर मिला। उनसे भी सबने कहा : 'भागो, भागो, पृथ्वी फट रही है !' उसने पूछा : 'कहाँ ? किसने देखी ?' आखिर लोग घटनास्थलपर पहुँचे। वहाँ देखा कि नारियलका एक गोला

नीचे चट्टानपर फूटा पडा है। उसके गिरनेकी आवाजसे ही सियार चौंका था और यह सोचकर भागा था कि पृथ्वी फट रही है!

* * *

इमाई भाईकी दिक्कत यह थी कि वे हिन्दी कम जानते हैं और अंग्रेजी तो उससे भी कम। इसलिए बहुत-से शब्दोंका ठीक-ठीक अर्थ व्यक्त करना उनके लिए कठिन होता और तब वे भाषा-विज्ञानके आदि-स्रोत—हाव-भाव और संकेतका सहारा लेते। उनकी वह भाव-भंगिमा, वह दौड-भागकर भाव व्यक्त करना भला कभी भूल सकता है?

* * *

२ मार्चको महाबुद्ध-संघकी सभा हो रही थी।

इमाई भाईने बाबासे संदेश माँगा।

बाबाने लिखा: "आज देश-देशके बीच गलत-फहमियाँ हैं। धर्म-धर्मके बीच गलत-फहमियाँ हैं। सबको समान भावसे देखनेवाली जाति, धर्म, पंथ आदि किसी प्रकारका भेद न करनेवाली ताकतें जब उठ खडी होंगी, तभी विश्वशान्तिकी आशा की जा सकेगी। वैसे संस्था, संघ आदिमें मेरा बहुत विश्वास नहीं है। शील, चारित्र्य, प्रेम, करुणा—ये ही मुख्य बातें हैं। मैं आशा करता हूँ कि बौद्ध-महासंघ इन गुणोंके सार्वजनिक प्रचारके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करेगा।"

* * *

और यह बौद्ध-भिक्षु, ज्योजून् इमाई विनोबाके साथ रहकर उनका मुरीद बन गया। लिखा उसने—

"मुझे विनोबाजीके साथ कुछ समय रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके साथ रहकर मुझे उनके तथा उनके महान् यज्ञके विषयमें कुछ ज्ञान भी हुआ। उनके द्वारा प्रारंभ किया गया यह भूदान-यज्ञ संसारको एक नया संदेश दे रहा है। मैं इस यज्ञको केवल भूमिदानतक ही सीमित नहीं समझता। इस दानका आधार बोधिसत्वका महान् सूत्र "दान-पारमिता" है, अर्थात् ऐसा दान, जिसमें सम्पूर्ण जीवन, प्रकाश तथा

ज्ञानका दान दिया जाता हो। इस प्रकारके दानसे सच्ची सेवा तथा सच्चे दानकी भावना मनुष्यके हृदयमें जाग्रत् हो उठनी है।

"बौद्ध-धर्मका दूसरा महामन्त्र "*अहिंसा परमो धर्मः*" है। श्री विनोबाजीके इस आन्दोलनका मूलमन्त्र भी यही है। मेरा विश्वास है कि भूदान-यज्ञसे बौद्ध-धर्मके इन दो सूत्रोंका प्रचार जनतामें स्वतः ही हो जायगा। बौद्धधर्मका अस्तित्व भारतमे प्राय मिट-सा गया था, किन्तु आज मुझे आशा होती है कि श्री विनोबाजी जैसे महानुभाव द्वारा बौद्धधर्मको पुन. जीवित होनेमें अवश्य सहायता मिलेगी, क्योंकि उनके यज्ञका आधार बौद्धधर्मके दोनों महान् सूत्र ही हे। मेरी प्रार्थना है कि भूदान-यज्ञ सफलता प्राप्त करे और ससारके समक्ष एक नया आदर्श रखे।"

* * *

ऐसे तमाशबीनोंको देखकर ही किसीने उन्हें आगाह किया है—

तमाशा ख़ुद न बन जाना,
तमाशा देखनेवाले !

० ० ०

मिसाले दरिया जो पाये दे दे ! : ४ :

तुझे इमारतकी गर तलब है
लटा दे दौलतको बेकसोंमें,
मिसाले दरिया जो पाये दे दे
मिलेगा, मत इन्तज़ार कर, दे !

सभी जानते हैं :

"नदी न संचै नीर !"

और तभी तो उसमें प्रवाह रहता है, जीवन रहता है, शक्ति रहती है, स्फूर्ति रहती है।

और जो सचय करता है, देता नही, कजूसी करता है, उसमें वदबू आने लगती है, कीड़े पड जाते हैं, जैसे वद तालाव !

* * *

वावा भूदानके जरिये, सम्पत्तिदानके जरिये देश और समाजको यही पाठ तो पढा रहे हैं कि दो, दो, दो ! अपने लिए कुछ मत रखो। जनता-जनार्दनके चरणोंमें सर्वस्व समर्पण कर दो। आजके दु ख-दैन्यको, हाहाकारको मिटानेका एकमात्र उपाय यही है।

वावा सिर्फ उन्हीसे जमीन नही लेते, जिनके पास वहुत ज़मीन है। वे उन ग़रीव किसानोंसे भी जमीन लेते हैं, जिनके पास नाममात्रके लिए ही जमीन है।

जिनके पास हजारों-लाखों एकड ज़मीन है, जिनके पास पचासों-सैकडों एकड जमीन हैं, उनसे भूदान मांगना तो समझमें आता है, पर जिनके पास २, ४ एकडकी कौन कहे, सिर्फ एकाध एकड ही जमीन है, उनसे भूदान मांगनेमें कौन-सी तुक है ?

सवाल तो सीधा है।

लेकिन इसका जवाब भी सीधा है ।

बाबा कहते हैं कि गरीबसे भी दान लेना है, अमीरसे भी । काश्तकारसे भी भूमि लेनी है, जमीदार और तालुकदारसे भी ।

अर्थात्, ज़मीन लेनी सबसे है; फिर उसके पास ज्यादा हो या कम, यह सवाल ही नही उठता ।

कारण, यह तो यज्ञ है । इसमें तो हर व्यक्तिकी आहुति पड़नी चाहिए ।

* * *

और एक बात ।

वह यह कि "भूदान" का अर्थ है—लोगोंसे भूमिका ममत्व छुड़ाना । जिसके पास लाखों एकड़ ज़मीन हैं, वह भी अपनी उस जमीनसे चिपटा बैठा है, जिसके पास आधा एकड जमीन है वह भी । बाबाको तो दोनोंकी आसक्ति छुडानी है ।

और इतना ही नही ।

यह भी है कि जमीनवाले हर आदमीसे दरिद्रनारायणका पूरा हिस्सा लेना है । यह नही कि आपके पास लाख एकड़ है तो आप दो हजार एकड़ देकर छुट्टी पा लें, सो नही । आप यदि भूदानमें विश्वास करते हैं, उसका सिद्धान्त स्वीकार करते हैं, देशके सभी 'भूमिहीनों' को 'भूमिवान्' बनाना चाहते हैं, तो आपको कम-से-कम छठा हिस्सा इस यज्ञमें देना ही चाहिए । आप अपनी जमीनपर अपने इन गरीब भाइयोंका यह अधिकार मानते हैं तो आपको इन्हें पेटभर देना होगा । वर्ना, हमें आपका दान नही चाहिए, नहीं चाहिए !

* * *

स्कूलोंके लिए, पाठशालाओंके लिए, विश्वविद्यालयोंके लिए, आश्रमोंके लिए, मन्दिरोंके लिए अभीतक लोग ज़मीनका दान मांगते रहे हैं, पाते रहे हैं; पर गरीबोंके लिए, भूमिहीनोंके लिए दान मांगनेका यह आन्दोलन अपने ढगका पहला है ।

इतना ही नही, भूमिदान दीजिये तो उसके साथ साधनदान भी दीजिये । ऐसी आशा भी बाबा दाताओंसे रखते हैं।

*　　　　*　　　　*

और सम्पत्तिदान ?

यह तो और भी अनोखा है ।

आजका तरीका है कि रुपया दिया, चेक काटा और बस दाताकी सूचीमें नाम दर्ज ।

पर बाबाके सपत्तिदानका तरीका बिलकुल दूसरा है । यहां तो दाताकी पूरी कवायद हो जाती है ।

*　　　　*　　　　*

बात है—२३ सितम्बर '५५ की । कुजेन्द्रीमें बाबाने बडी तफसीलसे बता दिया दोनों प्रकारके दानोंका भेद—

फड (कोष) इकट्ठा करनेवाले पैसा अपने हाथमें लेते हैं ।

हम पैसा अपने हाथमें ही नहीं लेते ।

फड इकट्ठा करनेवाले बडे लोगोंके पास पहुँचते हैं ।

हम सर्वसाधारणसे सम्पत्तिदान लेते हैं ।

फड इकट्ठा करनेका सामूहिक आन्दोलन नहीं होता ।

हमारे सम्पत्तिदानका सामूहिक आन्दोलन चल रहा है ।

फडमें कोई निश्चित रकम ली जाती है ।

हम आय या व्ययका एक निश्चित हिस्सा लेते हैं ।

फड एक दफा देकर दाता मुक्त हो जाता है और लेनेवाला बँध जाता है ।

सम्पत्तिदानमें दाता ही उल्टे बँध जाता है । लेनेवाला अनेक चिन्ताओंसे मुक्त हो जाता है ।

फडमें विनियोगकी जिम्मेदारी लेनेवालेपर रहती है ।

सम्पत्तिदानमें दातापर इसकी जिम्मेदारी रहती है । उसे मार्ग-दर्शन हमसे लेना होता है ।

.... फंडमें पैसेका जो उपयोग होता है, उसका लोगोंको कम ज्ञान होता है।

सम्पत्तिदानमें जो खर्च होता है, वह स्थानपर ही होता है, और वह सबके सामने होता है।

फंडमें दाता अपनेको मालिक समझता है।

सम्पत्तिदानमें दाता अपनेको मालिक नहीं, पंच या ट्रस्टी समझता है।

.. फंडमें ऐसा मानते हैं कि दाता समाजपर उपकार करता है।

सम्पत्तिदानमें दाता समझता है कि मुझे एक विचार दिया गया है, मेरी सम्पत्तिका एक हिस्सा समाजके काममें लगा है, ऐसा मौका मुझे मिला, यह तो मुझपर ही उपकार हुआ है!

* * *

सम्पत्तिदानमें एक-से-एक बढकर विशेषताएँ हैं। जैसे,

दाता दानवाली रकम लेनेवालेको न देकर अपने पास ही रखता है।

दाता एकमुश्त रकम नहीं देता। आजीवन या किसी निश्चित अवधि-तक अपनी आमदनी या खर्चका एक निश्चित हिस्सा देता रहता है।

दाता प्रतिज्ञा करता है कि "दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए किये गये विनोबाके आह्वानपर मैं सम्पत्तिदान-यज्ञमें शरीक होता हूँ और सम्पत्तिदान-यज्ञकी योजनाके अनुसार उसमें अपना हिस्सा अर्पण कर उसका विनियोग करता रहूँगा और उसके खर्चका वार्षिक हिसाब प्रान्तीय भूदान-समितिको भेजता रहूँगा।

"अपने इस संकल्पका अंतर्यामी रूपमें मैं ही साक्षी हूँ और अपनी अन्तरात्मासे वफादार रहूँगा। ईश्वर मुझे बल दे।

"मेरी वर्तमान आयका अन्दाज रुपये मासिक ...... वार्षिक ....
फ़िलहाल हिस्सेका परिमाण आयका हिस्सा ...... वाँ"

...... हस्ताक्षर

दाता साधनदान, सेवक-निर्वाह-खर्च और सत्साहित्य-प्रचारके लिए अपनी दानकी रकमका विनियोग खुद करता है। हर साल अपना हिसाब प्रान्तीय भूदान-समितिके पास भेजता है। खर्चमें उसका मार्ग-दर्शन भी लेता है।

*　　　　*　　　　*

यह जरूरी नहीं कि सम्पत्तिदान रुपयेकी शकलमें ही हो। किसान अन्न दे सकता है, बढ़ई हल बना दे सकता है, कोई दूसरे साधन भी दे सकता है।

*　　　　*　　　　*

लोग बाबापर व्यंग्य कसते हैं कि बाबाको न चाहिए जमीन, न चाहिए सम्पत्ति, उसे तो सिर्फ दान-पत्र चाहिए। वह तो कागज माँगनेवाला देव है।

बाबा कहते हैं: "ठीक है। मेरे दिलमें तो दाताके पैसेकी बनिस्बत उसके वचनकी कीमत कहीं अधिक है।"

*　　　　*　　　　*

तात्पर्य यह कि भूदान हो, सम्पत्तिदान हो, सबमें एक ही बात है, एक ही तत्त्व है:

"सपति सब रघुपति कै आही।"

यह सारी सम्पत्ति, यह सारी जमीन, यह सारी मिलकियत, मेरी नहीं, मालिककी है, प्रभुकी है, ईश्वरकी है, समाजकी है।

"समाजाय इदं न मम।"

और जब ऐसा है, तब—

तेरा तुझको सौंपते
क्या लागै है मोर?

*　　　　*　　　　*

सम्पत्तिका यह प्रवाह, सम्पत्तिकी यह धारा बहती ही रहनी चाहिए। सदा, एकरस, अनवरत।

*　　　　*　　　　*

आजके पूँजीवादी युगमें पैसेको वेजा महत्त्व मिल गया है। आज वह हमारे लिए सर्वस्व वन वैठा है। आज हमारे मुँहपर एक ही मन्त्र है—

टका धर्मं टका कर्मं टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हाटका टकटकायते ॥

आजका मानव रात-दिन टकेके फेरमें रहता है। और उसके लिए वह ईमान और सचाईको भी उठाकर ताकपर रख देता है। कारण, समाजने उसे ऐसी गलत प्रतिष्ठा दे रखी है।

वावा कहते हैं कि हमें यह सम्पत्ति ही निकम्मी वना देनी है। और जव ऐसा होगा, तव सम्पत्ति खुद-व-.खुद हमें ढूँढती हुई पास आयेगी। श्रीमान् लोग हमारे पास आकर कहेंगे : "वावा, कृपा करके हमारी सम्पत्ति लीजिये और हमें प्रतिष्ठा दीजिये।"

*　　*　　*

वावा तो कहते हैं कि मैं तो अपने जीवनमें यह महसूस करता हूँ कि मेरा जन्म इस सम्पत्तिको तोड़नेके लिए ही हुआ है।

सम्पत्ति-दानकी जो प्रक्रियाएँ हैं, जो शर्तें हैं, जो तरीके हैं, उनसे यह दावा स्पष्ट हो जाता है।

भूदान और सम्पत्तिदान अहिंसा और सत्य, ईमानदारी और व्यवहार-शुद्धि फैलानेवाला और इस तरह पुराने रूढ मानव-मूल्योंको वदलनेवाला आन्दोलन है। कोई इसमें घुसकर देखे भी तो !

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।
हौं वौरी ढूँढन गयी, रही किनारे वैठ ॥

● ● ●

और जब धरती बँटती है ! :५:

"रात अँधेरी कटके रहसी ।
धन-धरती अब बटके रहसी ॥
भूखी जनता चुप कद रहसी ।
जोर जुलुम अब घटके रहसी ॥"

भूदान-सेवक आज गाँव-गाँव, गली-गलीमें गाते फिर रहे हैं—

"धन-धरती अब बँटके रहसी ।"

यह नारा बड़ा आकर्षक है, बड़ा हृदयग्राही । जो सुनता है, एक बार चौंके बिना नहीं रहता । कारण, इससे गरीबीकी जड़पर कुठाराघात होता है, आर्थिक असमानताके मूलपर प्रहार होता है । साम्ययोगका मूल-मन्त्र छिपा है इसमें ।

* * *

और जब सचमुच धरती बँटती है !

तब ?

जो देखता है, उसकी आँखें कृतकृत्य हो उठती हैं ।

* * *

सोमवार : १९ सितम्बर, १९५५ ।

गरेण्डा : कोरापुट : उड़ीसा ।

अपराह्नकी पावन वेला ।

झुंड-के-झुंड ग्रामवासी आ रहे हैं । गाँवके उत्तरी किनारेपर सभाका आयोजन है ।

यों तो भूदानका संदेश वहन करनेवाली सभा रोज होती है, पर आजकी सभा अनोखी है । कारण, आज भू-क्रान्तिका स्पष्ट दर्शन होनेवाला

है । आज दरअसल धरती बँट रही है । और इतना ही नहीं, धरती बाँटनेका शुभ कर्म करनेवाला है—भूदान-यज्ञका प्रणेता—विनोबा स्वयं ।

* * *

मंचपर बाबा बैठे हैं ।

बगलमें मनमोहन भाई हैं । भू-वितरणके प्रमाण-पत्रोंका ढेर उनके सामने है ।

एक-एक आदाताकी पुकार होती है । वह आता है, मंगला मासी उसके मस्तकपर कुंकुमका टीका लगाती हैं । मनमोहन भाई उसका प्रमाण-पत्र बाबाके आगे बढ़ाते हैं । बाबा उनपर उड़िया लिपिमें 'विनोबा' लिखकर आदाताके हाथोंमें अर्पित कर देते हैं । वह नतमस्तक हो प्रसाद ग्रहण करता है !

आदाताका नाम पुकारनेके साथ ही मनमोहन भाई यह भी सुनाते चलते हैं कि पहले इसके पास कितनी जमीन थी और अब इसे कितनी मिल रही है ।

* * *

कलतक जो भूमिहीन था, उसे आज २० एकड़का प्रमाण-पत्र मिल रहा है । और कलतक जिसके पास १८० एकड़ भूमि थी, आज वह केवल ७ एकड़का प्रमाण-पत्र पा रहा है ।

और मजा यह कि दोनों आदाता हर्षसे गद्गद हैं !

* * *

जिसके पास एक भी धुर जमीन नहीं थी, उसे आज २० एकड़ जमीन मिल रही है, इसलिए उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक है । पर, वह नायक, जो १८० एकड़के बदले केवल ७ एकड़ पा रहा है, क्यों खुश है ?

कभी सोचा है आपने ?

लोगोंने इस नायकसे कहा था, प्रार्थना की थी, अनुनय-विनय की थी कि "आप गाँवके नायक हैं, कल आप इतनी ज्यादा जमीनके मालिक थे, अब आप सिर्फ ७ एकड़ न लें, औरोंसे दस-पन्द्रह एकड़ ज्यादा ले लें", तो

वह शानसे बोला : "नही भाई, ऐसा क्यों ? मैं ज्यादा क्यों ले लूं ? मेरे हिस्सेमें जितनी जमीन पडती है, उतनी ही लेना मेरा फर्ज है। और जब मैं नायक हूं तो नायक होनेके नाते मेरा फर्ज है कि पहले आप सबको खिला लूं, फिर खुद खाऊं।"

*　　　*　　　*

श्रद्धासे इस मुखियाके चरणोंमें हमारे मस्तक नत हो गये। तुलसीदासका आदर्श हमारे नेत्रोंके समक्ष था—

मुखिया मुखसो चाहिए, खान-पानकों एक।
पाले-पोसै सकल अग, 'तुलसी' सहित विवेक ॥

*　　　*　　　*

बहुतोंको पता नही कि भूदानमें मिली हुई यह जमीन बंटती किस हिसाबसे है। वे पूछ सकते हैं कि आखिर इसका मतलब क्या है ? किसीको बीस एकड मिल रही है, किसीको सात एकड और किसीको उससे भी कम ! ऐसा क्यों ?

बात यह है कि वितरणका काम दाल-भातका कौर नही। बाबा ठीक ही कहते हैं कि अगर हम भूमि-वितरणमें कामयाब होते हैं तो सर्वोदय सफल होता है और नाकामयाब होते हैं तो सर्वोदयके प्राण खतरेमें हैं।

बाबाका यह भी कहना है कि भू-वितरण एक बड़ी ही कठिन और उलझन-भरी समस्या है, फिर भी हमें इस कामको पूरा करना है और ठीक समयपर करना है, क्योंकि वस्तुत. यही काम हमारी असली कसौटी है।

*　　　*　　　*

होता यह है कि भूदान मिलनेके बाद भूदानके कार्यकर्ता दानपत्रोंकी मौजेवार सूची तैयार करते हैं, फिर दानमें मिली जमीनका पूरा विवरण इकट्ठा करते हैं। तब दानपत्रोंकी ठीक ढगसे जांच करनेके बाद वे दानकी भूमिकी जांच और उसकी नाप-जोख, पैमाइश करते हैं। तब वे देखते हैं कि अमुक गांवमें भूदानमें कुल कितनी ज़मीन ऐसी है, जो बांटी जा सकती

है। उसका खसरा तैयार किया जाता है और भूमिहीन-परिवारोंकी सूची बनायी जाती है।

इसके बाद यह तय किया जाता है कि गाँवके प्रत्येक भूमिहीनको कितनी जमीन दी जानी चाहिए। प्रत्येक ऐसे परिवारको, उसके सदस्योंके हिसाबसे, निर्वाहके लिए पर्याप्त भूमि देना अनिवार्य है। जिसका परिवार छोटा होगा, उसे उसी परिमाणमें कम, जिसका बड़ा होगा, उसे उसी परिमाणमें ज्यादा ज़मीन दी जायगी। यही कारण है कि छोटे परिवार-वालोंको कम जमीन दी जाती है, बड़े परिवारवालोंको ज्यादा।

इतनी सब तैयारी कर लेनेके बाद वितरण-सभा बुलायी जाती है। सभाकी सूचना एक सप्ताह पहले सारे गाँवमें घर-घर पहुँचा दी जाती है। जिस दिन सभा होती है, उसके एक दिन पहले फिरसे गाँववालोंको उसकी खबर दी जाती है।

वितरण-सभामें भूमिहीनोंका चुनाव करना पड़ता है। गाँवके कुल भूमिहीन-परिवारोंके लिए यदि पर्याप्त भूमि उपलब्ध होती है, तब तो भूमिहीन-परिवारोंमेंसे चुनावका प्रश्न ही नहीं उठता; अन्यथा चुनाव करना पड़ता है। मतभेद होनेपर गोटी डालकर निर्णय कर लिया जाता है।

इसके बाद उसी सभामें सूची तैयार करके भूमि-वितरणकी घोषणा कर दी जाती है। फिर हर परिवारको मिलनेवाली जोत (Holding) का निश्चय किया जाता है और आदाताको उसका प्रमाण-पत्र देकर वितरणकी विधि पूरी की जाती है। जिस दिन प्रमाणपत्र दिया जाता है, उसी दिनसे उस खातेपर आदाताका कब्जा मान लिया जाता है।

* * *

और प्रमाणपत्रमें क्या रहता है ?

उसमें आदाताका पूरा पता देकर लिखा रहता है कि उसे संत विनोबाजी-को भूमिदान-यज्ञमें मिली हुई जमीनसे नीचे लिखे विवरणकी भूमि प्रदान की जाती है। आजकी''''''तारीखसे उस भूमिपर निम्नलिखित शर्तोंके साथ भूदान किसानके सभी कानूनी अधिकार इन्हें प्राप्त होंगे—

१. प्रदत्त भूमिमें आदाताको निजकी खेती करना अनिवार्य होगा। दूसरे किसीको जोतनेके लिए देने, बेचने, गिरवी रखने, दान करने, किसी अन्य तरहसे देने या स्वत्व-निवृत्तिका अधिकार न होगा।

२. प्रदत्त भूमिका जो लगान नियत होगा, आदाताको प्रत्येक वर्ष समयपर उसे अदा करना होगा।

३. प्रदत्त भूमि अगर पहलेसे जोती हुई है, तो उसमें खेती तुरत करनी होगी। यदि अगले दो सालतक परती रखी जायगी, तो समिति (प्रान्तीय भूदान-यज्ञ-समिति) को अधिकार होगा कि उस जमीनको दूसरे भूमिहीन किसानको दे दे।

४. प्रदत्त भूमि अगर परती जमीन है, तो उसे तीन सालकी अवधिके भीतर आबाद करना अनिवार्य होगा।

प्रमाण-पत्रमें प्रदत्त भूमिका विवरण देकर लिखा रहता है कि 'उपर्युक्त निर्णय गाँवके निवासियोंकी सभामें तथा उनके सहयोगसे हुआ है।'

प्रमाण-पत्रपर वितरण-सभाके सभापति और प्रान्तीय भूदान-यज्ञ-समितिके अधिकारीके हस्ताक्षर भी रहते हैं।

* * *

बाबा ये प्रमाण-पत्र बाँटते गये, आदाता विनयावनत होकर उन्हें लेते गये। यहाँ मार्केकी बात यह थी कि 'समग्र-ग्रामदान' हुआ था और सबके बीच ग्रामकी सारी भूमि बाँट दी गयी थी। सारा ग्राम 'परिवार' बन गया था और मालकियतकी भावनाके मूलपर प्रहार किया गया था।

* * *

बाबाके हाथसे जैसे-जैसे लोगोंको प्रमाण-पत्र मिलते, सारी सभा हर्षसे गद्गद हो उठती। जो भी व्यक्ति इस दृश्यको देखता, मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। सभीके हृदयोंसे मानों एक ही आवाज, एक ही ध्वनि निकल रही थी :

हम तो आज नयन फलु पावा।

* * *

बाबाकी कल्पना आज साकार हो रही है। भूदान-गंगा 'ग्रामदान' तक आ गयी है।

और अब वह 'ग्रामराज' और 'रामराज्य' का रूप धारण करने जा रही है!

प्रार्थना-प्रवचनमें आदाताओंपर बाबाका आशीर्वाद बरस पड़ा :

"जिन भाइयोंको जमीन मिल रही है, ये उसके अधिकारी नही होंगे, मालिक नही होंगे। सहूलियतके लिए यह व्यवस्था की जा रही है। इस जमीनको न तो कोई बेच सकेगा, न रेहन रख सकेगा। सब लोग मिलकर काम करेंगे। सब लोग एक-दूसरेकी मदद करेंगे। पानीकी व्यवस्था सब लोग मिलकर करेंगे। ग्रामदानवाले हर गांवमें गांवकी अपनी दूकान रहेगी। अब ग्रामका कार्य आरम्भ हो रहा है। हमें कई काम करने होंगे, तभी सब लोग सुखी होंगे।"

गांववालोंकी ओर देखते हुए बाबा बोले : "यहाँके लोगोंको चर्म-रोगकी बड़ी शिकायत है। उसका उपाय करना है। इनकी आंखें भी खराब हैं। उन्हें भी सुधारना है। ये रोग दवा-दारूसे नहीं सुधरते। इसके लिए सबको छाछ मिलनी चाहिए। हम चाहते हैं कि सब बच्चे दूध पियें। दूधके लिए हमें गोरक्षा सीखनी होगी।

"अब गांवकी भूमि गांवकी हो गयी है। पहले सब लोग अलग रहते थे। अब सब एक होकर रहेंगे। सब एक-दूसरेकी मदद करेंगे। अब कर्ज लेनेकी जरूरत नही पड़नी चाहिए।

"अब सब लोगोंको शराब छोड़नी पड़ेगी। शराबसे न तो ताकत बढ़ेगी, न शरीरमें फुर्ती रहेगी। धर्म भी बिगड़ेगा, दिमाग भी। पैसा भी बर्बाद होगा। आप सबको निश्चय करना चाहिए कि हम कभी भी शराब न पियेंगे। भगवानका नाम लेकर शराब छोड़ दो। मिल-जुलकर रहो। भगवान्की प्रार्थना करो। झूठ मत बोलो। एक-दूसरेसे झगड़ा मत करो। आलस छोडो। उद्योग करो। अब गांवका कोई भी आदमी

मिलके कपड़े न खरीदें। गाँवके कपड़े गाँवमें बनने चाहिए। सब लोग सूत कातें, धुनें, बुनें और पहनें। इससे गाँवकी लक्ष्मी गाँवमें रहेगी।

"आपके ग्रामदानसे हमें बड़ी खुशी हुई है। हमने जो बातें कहीं, उनपर अमल करो। इससे सब सुखी होंगे। सबपर भगवान्का आशीर्वाद रहेगा। सबकु प्रणाम।"

* * *

बाबाका भाषण सुनकर, उनका आशीर्वाद पाकर सब लोग निहाल हो उठे। गाँवभरमें ही नहीं, आसपास चारों ओर प्रेम, अहिंसा और सेवाकी त्रिवेणी प्रवाहित हो उठी। जो भी उसमें अवगाहन करता, पवित्र हो उठता!

* * *

और शामको?

सूर्यास्तकी पावन वेलामें सबसे पहले बाल-गोपालोंकी एक बड़ी-सी गोलाकार पगत बैठी। सबको खीर परोसी गयी। शायद किन्हीं-किन्हीं बालकोंको तो उस दिन जीवनमें पहली बार ही खीर खानेको मिली होगी!

सबके सब हर्ष और आनन्दमें शराबोर हो रहे थे!

ग्राम-दानियोंको भी उस दिन भोज मिला। मडुआ और साँवांके बने वे व्यजन, वह खीर और लपसी हम सबको तो परम सरस, स्निग्ध और सुस्वादु लगी ही, ग्रामवासियों को भी वैसी ही लगी। प्रेमसे शराबोर जो था उसका कण-कण!

उस दृश्यको याद करता हूँ तो लगता है—

ख़्वाब था जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफ़साना था!

० ० ०

विरह-मिलनके क्षण— : ६ :

जगन्नाथपुर : कोरापुट : उडीसा ।

१ अक्तूबर १९५५ ।

प्रातः ३।। बजे । प्रार्थनाकी शांत वेला ।

मालती चौधरीने भरे कण्ठसे शुरू किया :

सबसे ऊंची प्रेम सगाई ।
दुर्योधनको मेवा त्यागो, साग विदुर घर खाई ।।
जूठे फल सबरीके खाये, बहु विधि प्रेम लगाई ।
प्रेमके बस नृप-सेवा कीन्ही, आप बने हरि नाई ।।
राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हो, तामें जूठ उठाई ।
प्रेमके बस अर्जुन रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई ।।
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन, गोपिन नाच नचाई ।
'सूर' कूर इस लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई ।।

* * *

उडीसासे बाबा विदा हो रहे हैं ।

इतने दिन जिन भाई-बहनोंके साथ रहे, जिनके प्रेमपूर्ण आतिथ्यमें शराबोर रहे, उन्हींसे आज विछोह हो रहा है ।

विदा करनेवाले भाई-बहनोंकी आँखें गंगा-जमुना बन रही हैं ।

पड़ावसे प्रस्थान करते ही रामधुन शुरू :

"प्रेम मुदित मनसे कहो
राम राम राम ।
राम राम राम राम
राम राम राम ।........"

आंखें सजल हैं, गला भरा है, कठ रुंधा है, शब्द नही निकलते, फिर भी रामधुन जारी है।

बग़लमें नदी।

छोटी-सी नदी। बरसाती नदी।

पानी ज्यादा नही था, कही घुटनोंसे कुछ ऊपर, कही घुटनोंसे कुछ नीचे।

परन्तु कंकड-पत्थर तो थे ही।

बापा मुझसे बोले: "वहांपर बडा पत्थर है। तुम खड़े हो जाओ। बाबाको बचाकर निकाल देना।"

मैं वहां खडा हो गया।

नदी पार कर बाबा दूसरे तटपर पहुंचे। महादेवी ताईने उनके चरण पोंछकर खादीके जूते पहनाये। तब सब लोग आगे बढे।

*　　　*　　　*

सारा वातावरण करुणासे ओतप्रोत।

पर, बाबा चले जा रहे हैं, निर्विकार।

हज़ारों भाई-बहनोंकी भीड रामधुन करती चली आ रही है, पीछे-पीछे।

आजका पडाव सिर्फ तीन मीलपर है—इसलिए सवेरे ५ के बजाय ६ पर प्रस्थान हुआ।

थोडी देरमें आ गयी सीमा-रेखा।

और हम लोग उडीसासे चलकर आध्रमें आ घुसे।

*　　　*　　　*

सूर्योदयकी मनोहर वेला।

हरी-भरी प्रकृतिकी आकर्षक गोद। दूर ऊंची-नीची पर्वत-माला।
जिधर देखिये, चित्त प्रसन्न हो उठे।
दोनों ओर अपार जन-समूह।

बीना बेन् संख धुनि द्वारा—आध्र बाबाका स्वागत कर रहा है।

खुले मैदानमें बड़े कलात्मक ढंगका फूल-पत्तियोंसे सजा-सजाया स्वागत-द्वार बना है, जिसमें चटाईका बना 'सुस्वागतम्' लटक रहा है। चौकी बिछी है। उसपर दरी है। खादीकी शुभ्र चादर है। लाउड-स्पीकरका सरंजाम है।

सुब्रह्मण्यम् आदि आध्रके भाई फूल-माला, आरतीसे शखध्वनिके बीच बाबाका स्वागत करते हैं।

चारों ओर भीडकी रेलपेल है। साइकिलों, मोटरों, जीपोंकी भरमार है।

* * *

बाबा चौकीपर आसीन होते हैं, तब विदाई और स्वागत-समारोह आरम्भ होता है।

उडीसाकी एक बहनके साथ रतन भाई उड़िया भाषामें गाते हैं :

> *"हे शान्ति दूत !*
> *माटी पानी पवन*
> *अहिंसारु देशे।*
> *प्रेम-राज्य स्थापन कुं,*
> *विश्व प्रेमोपासन कुं,*
> *जीवन जाति संरक्षण कुं,*
> *अहिंसा धर्म पालन कुं ...... !"*

साधु सुब्रह्मण्यम् गारु तेलुगुमें बाबाका स्वागत करते हैं। कहते हैं कि साम्ययोग साधन और सर्वोदय-लक्ष्यकी सिद्धिके लिए बाबा सारे देशका भ्रमण कर रहे हैं। आध्र प्रवेशपर हम आपका हृदयसे स्वागत करते हैं।

* * *

और तब खड़े होते हैं हमारे वयोवृद्ध बापा—गोप बाबू।

मूर्तिमन्त उड़ीसा हैं बापा।

भूरी दाढी, नंगा बदन, एक लँगोटी मात्रका परिधान।

सेवा, त्याग, प्रेमकी ज्वलन्त मूर्ति।

बापा हिन्दी बोल लेते हैं, साहित्यिक हिन्दी नही, कामचलाऊ हिन्दी—वह हिन्दी, जो हमारी राष्ट्रभाषा है।

गद्गद कण्ठसे बापा बोले :

"आज विनोबाजीसे विदा लेनेके लिए हम यहाँ आये हैं। आठ महीने हमने एक परिवार-सा काम किया। इसे हम विदा तो नही समझते। मुझे तो आशा है कि फिर मिलनेके लिए ही हम जा रहे हैं। यहाँ मिलें या ऊपर (स्वर्ग)। एक दिशामें हम जा रहे हैं। हिन्दुस्तानकी भलाई हो, दुनियाकी भलाई हो। सारी दुनियाके लिए, मनुष्य-जन्म सिद्ध करनेके लिए बाबाने भूदानका काम उठाया है। हम यह काम करते रहेंगे, तो हमारा सम्बन्ध बना रहेगा। यकीन दिलाते हैं कि हमसे जो बनेगा, करेंगे। सफलता भगवान्के हाथ।"

गला भर आया। बापा बैठ गये।

* * *

विश्वनाथ दास एम० पी० उत्कल प्रान्तीय काग्रेसकी ओरसे बोले :

"विदाईका कार्य दुःखका कार्य है ही, पर बाबा तो भगवद्-इच्छा-सम्पादनके उद्देश्यसे निकले हैं। आस्ट्रेलिया, कनाडा, रूस आदि देशोंमें भी भूमिकी विषम समस्या है। भूमिमें लोगोंकी जो आस्था है, उसे छुडानेके लिए ही भगवान्ने विनोबाको भेजा है। यह भगवत्प्रेरणा है। इसलिए यह विदाई दुःखका विषय नही है। भगवान्ने विनोबाको शक्ति दी है कि वे जनताकी भूमिके प्रति जो आस्था है, उसे शिथिल करें। २५०० वर्ष पूर्व बुद्ध आये थे। आज विनोबा आये हैं—भूमि-आस्था छुडाने। इसमें सिर्फ उडीसाका प्रश्न नही है। विनोबा सबके लिए कष्ट उठा रहे हैं। भगवान् इनकी कामना सफल करें। हमें दुःख है कि उत्कलमें हम ठीकसे इनकी सेवा नही कर सके। ये यहाँ जो बीज वपन करके जा रहे हैं, वह उगेगा।"

*

मनमोहन भाईने उडीसा भूदान-समितिकी ओरसे आठ मासके काम-का लेखा-जोखा सुनाया :

दाताओंकी संख्या	६४७५७
कुल मिली भूमि	२,५७,२७७ एकड़
कोरापुटमें दाताओंकी संख्या	२१ हजारसे अधिक

ग्रामदान : ८१२

कोरापुट	जिला	६०५	ग्रामदान
वालेश्वर	,,	१२३	,,
गजम	,,	३७	,,
मयूरभंज	,,	३७	,,
ढेंकानल	,,	५	,,
कालाहाडी	,,	३	,,
पुरी	,,	१	,,
कटक	,,	१	,,
		८१२	

सम्पत्तिदानी	३५२—कोरापुटमें २५६
जीवनदानी	१०३
वितरित भूमि	३७,८२२ एकड—२२०० परिवारोंमें ।

*   *   *

भरे गलेसे उड़ीसाकी बहनोंने विदा-गीत गाया ।

और तब प्रेममें गद्गद होकर बाबाने अपना प्रवचन आरम्भ किया :

"हम प्रेमके प्रवाहमें बहते हैं । दाहिने हाथमें प्रेम, बायें हाथमें प्रेम । इधर उड़ीसा, इधर आंध्र । मैं दोनोंके मध्य हूं । जो लोग पहुँचाने आये, उन्होंने बड़े प्रेमका काम किया । जो स्वागत कर रहे हैं, वे भी प्रेम दिखा रहे हैं । प्रेम सर्वत्र है । माँ अपने दूधके साथ प्रेम ही पिलाती है । फिर भी आज दुनियामें इतने झगड़े हैं । क्यों ? इसलिए नहीं कि प्रेमका अभाव

है, बल्कि इसलिए कि प्रेमका प्रवाह रुक गया है। प्रेम प्रवाहित नही है। बँधे पानीमें कीड़े पड जाते हैं। झरना बहता रहता है। वह स्वच्छ और निर्मल रहता है। कुटुम्बी जनोंका प्रेम सीमित रहता है। इससे दोष हो जाता है। जाति-प्रेम—अपनी जातिसे ही प्रेम, दूसरीसे नही, इसलिए उसमें भी दोष आ जाता है। अद्भुत प्रक्रिया है। कुछसे प्रेम, कुछसे द्वेष। इस द्वेषको मिटानेके लिए प्रेमको व्यापक बनाना जरूरी है।

"भारत एक हुआ। आज़ादी मिली। हममें व्यापक प्रीति उत्पन्न हुई। 'हम भारतीय हैं', यह भाव आया। यह भारतीयता सीमित होगी तो दोष होगी। भारतीयताकी परिणति अब मानवतामें होनी चाहिए। भूदान उसीका एक अग है। प्रेमकी यह व्यापक प्रक्रिया उडीसामें दीख पडी है। यहाँ कुछ ग्रामदान मिले हैं। कुटुम्बके प्रेमका विकास हुआ है। धर्म, जाति, भाषाके प्रेममें पडकर हम यदि सकुचित बनेंगे, तो द्वेषका जन्म होगा। हम यह सब भेद मिटा डालना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सब लोग एक बनकर रहें।"

लवणम्की ओर देखते हुए बाबा बोले: "यह भाई नास्तिक है। हमारे भाषणका अनुवाद करता है। बहुतसे लोग भगवान्का नाम तो लेते हैं, पर भगवान्का काम नही करते। नामपर हम झगडा करते रहें, तो कहना होगा कि हमने भगवान्को पहचाना ही नही। आस्तिक हो या नास्तिक, यदि मानव-धर्मको मानता है तो वह भक्त ही है। राम भक्त, कृष्ण-भक्त, शैव, द्वैती, अद्वैती आदि तत्त्वज्ञानके भेद हमारे मार्गके बाधक न बनने चाहिए। काले, पीले, नीले, गोरे, तरह-तरहके रगोंके लोग होते हैं। यह विविधता है। इसपर हमें ध्यान नही देना है। हमें मुख्य वस्तु पकडनी है, और वह है—*विश्व-प्रेम*।"

* * *

अन्तमें बाबाने मनमोहन भाईका आभार माना। ८ मास उन्होंने बाबाके प्रवचनोंका उडियामें अनुवाद किया।

मनमोहन भाईकी वह ध्यानस्थ मूर्ति—जो देखता मुग्ध हो जाता।

बाबाके मुँहसे वाक्य निकला नही कि ठीक उसी तरह नपे-तुले शब्दोंमें, हूबहू वैसे ही accent के साथ, वैसे ही उच्चारणके उतार-चढावके साथ, शुद्ध और सही अनुवाद तैयार !

और तब बाबाने सबको हाथ जोड दिये—

'सबकुं प्रणाम ।'

• • •

जहाँ नया भारत जन्म ले रहा है ! : ७ :

स्वराज्य तो मिला, पर आगे ?

एक बडासा प्रश्न-चिह्न ? हमारे सामने है।

अंग्रेज अपना बोरिया-बँधना समेटकर अपने देशके लिए रवाना हो गये।

भारतमाता विदेशी बंधनोंसे मुक्त हो गयी।

बापूके आदेशोंपर चलकर हमने गुलामीकी जंजीरें टूक-टूक करके फेंक दी !

पर क्या इतना ही हमारा लक्ष्य था ?

* * *

अंग्रेजोंने भारतसे अपनी शासन-सत्ता उठा ली।

विवशता, लाचारी और परिस्थितियोंने ब्रिटिश सरकारको मजबूर कर दिया कि वह भारतसे हट जाय।

पर हटते-हटते भी अंग्रेज भारतको खोखला बनाते गये। उन्होंने भारतका शवच्छेद करके उसे हमारे हवाले किया।

उसके रक्तकी एक-एक बूंद उन्होंने चूस ली।

उसकी आलीशान इमारतकी नीव उन्होंने खोखली कर डाली।

उसकी एक-एक ईंट उन्होंने ढहा दी।

और उसके बाद कहा : 'यह लो, यह है तुम्हारा स्वराज्य!'

* * *

भारत-मांकी नगी तस्वीर हमारी आंखोंके सामने है।

हम आजाद हैं जरूर, पर हम भूखे हैं, नगे हैं, हमारी झोंपडीपर साबित छप्पर भी नही।

न हमारे पास पेटभर अन्न है, न तनभर वस्त्र।

पाई-पाईके लिए भाई भाईके गलेपर छुरी रेतनेको आमादा है !

लाखों भाइयोंको हम छूनेमें घिनाते हैं !

हमारे लाखों भाई शराब पीते हैं, गाँजा पीते हैं, चरस फूंकते हैं, ताडी पीते है !

गन्दगी हमारे रोम-रोममें भरी है।

करोडों भाई-बहनोंके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है।

महिलाओंको हम 'पैरकी जूती' मानते हैं !

असख्य सामाजिक कुरीतियाँ हमने पाल रखी हैं।

*　　*　　*

कैसी गन्दी तस्वीर है यह !

गरीबी, भुखमरी, दरिद्रता !

अज्ञान, अशिक्षा, अस्पृश्यता !

रोग, बीमारी, व्यसन !

गन्दगी, आलस्य, बेकारी !

कलह, जात-पांत, साम्प्रदायिकता !

सोचते ही कलेजा थर्रा उठता है।

एक व्याधिवस नर मरहिं,
ये असाध्य बहु व्याधि।

*　　*　　*

यह तस्वीर चौंकानेवाली है।

यह तस्वीर हमारे रोंगटे खडे करनेवाली है।

परन्तु, इससे क्या !

हमने जब विदेशी शासन-सत्ताको उखाड़ फेंका, तो क्या हम इस गन्दी तस्वीरको सुन्दर नहीं बना सकते ?

माना, आज भारत आर्थिक और सामाजिक दृष्टिसे गिरा हुआ है, पर हमने जब राजनीतिक क्रान्ति कर डाली, तो क्या हम आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति न कर सकेंगे ? करेंगे और जरूर करेंगे।

*　　*　　*

रोना और सर पीटना, निराश और हताश होकर हाथपर हाथ धरकर बैठ रहना कापुरुषोंका काम है। हमारा काम नहीं।

आज हमारी आलीशान इमारत ध्वस्त है। कोई पर्वाह नही। हम उसे नये सिरेसे, और भी अच्छी, और भी शानदार रूपमें, फिरसे खड़ी करेंगे। यही न होगा कि उसमें कुछ देर लगेगी, पर हम पस्तहिम्मत होनेवाले नही।

एक ज़माना था, जब भारतमें घी-दूधकी नदियाँ बहा करती थी। लोग इसे 'सोनेकी चिडिया' कहते थे। वैभव और सम्पन्नताके लिए सारा ससार इसका लोहा मानता था।

हमें नये भारतमें वैसीही श्री और सम्पन्नता लानी है।

*　　*　　*

और सचमुच, हमने भारत-माँकी बिगडी तस्वीर सँवारनी शुरू कर दी है।

दो ढाई साल पहले पटनाके गाधी-मैदानमें लाखोंकी भीड़में मैंने जवाहरलालको कहते सुना था—"मुझे सारे देशका दौरा करना होता है। मैं जगह-जगह नये भारतका निर्माण होते देखता हूँ, तो मुझे खुशी होती है।"

भारतका प्रधान-मत्री जब देशके कोने-कोनेमें छोटी-बडी असख्य योजनाएँ कार्यान्वित होते देखता है, तो उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक है। गिरे हुए देशको ऊपर उठानेका, जहाँ भी, जो भी, कार्य होता है, उसे देखकर किसे खुशी न होगी?

*　　*　　*

और ऐसी ही एक खुशनुमा तस्वीर खडी की जा रही है उडीसामें!

सितम्बर '५५ का अन्तिम सप्ताह।

सर्व-सेवा-सघ, गाधी-स्मारक-निधि, कस्तूर-बा-ट्रस्ट, हरिजन-सेवक-सघ आदि देशकी सभी प्रमुख रचनात्मक सस्थाओंके प्रमुख प्रतिनिधि कुजेन्द्रीमें एकत्र थे।

सवाल था कोरापुट, भूमि-क्रान्तिके तीर्थ कोरापुटके नव-निर्माणका ।

*   *   *

भूदान-यज्ञकी पांचवी मज़िल है—भूमिक्रान्ति ।

उसकी पहली भूमिकाका नामकरण विनोबाने किया—*अशांति-शमन* : तेलगानामें स्थानिक दुःख-निवारण ।

दूसरी भूमिका थी—*ध्यानाकर्षण* : सारे देशका ध्यान भूदानकी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न ।

तीसरी भूमिका थी—*निष्ठा-निर्माण* : उत्तर प्रदेशमें ५ लाख एकड भूमि और सारे भारतके लिए २५ लाख एकड भूमि प्राप्त करनेके सकल्पकी पूर्ति ।

चौथी भूमिका थी — *व्यापक भूमिदान* : विहारकी कुल भूमिके षष्ठांशकी प्राप्तिका प्रयत्न ।

पांचवी भूमिका है —*भूमि-क्रान्ति* : ग्रामका एक परिवार बनाना : फिर ग्रामराज्य और तब रामराज्य ।[1]

*   *   *

तो, कोरापुटमें भूदान-यज्ञकी पचम भूमिका तैयार थी । दो-चार, दस बीस ग्रामोंकी तो बात ही क्या, यहाँ तो ग्रामदानोंकी ऐसी होड़ मची कि सारी दुनियाने दाँतोंतले उँगली दबायी । बाबा जब उड़ीसामें प्रवेश कर रहे थे, तब उन्हें ८० गाँव मिल चुके थे, पर २ अक्तूबर '५५ को जब उन्होंने उडीसा छोड़ा, तब तक लगभग ७०० ग्राम प्राप्त हो चुके थे ![2]

*   *   *

इतने गामोंका सर्वस्वदान मिले, इतने गाम एक-स्वरसे यह घोषणा कर दें कि हम सारे ग्रामका एक परिवार बनाकर रहेंगे, सब मिलकर काम

---

१. लेखक : भूमिक्रान्तिका तीर्थ : कोरापुट, पृष्ठ ३०-३२ ।

२. एक सालके भीतर अक्तूबर '५६ मे यह सख्या ११४८ तक जा पहुँची है !

करेंगे, सब मिलकर खायेंगे—तब भी यदि हम ग्रामराज्य और रामराज्यके बापूके स्वप्नको साकार बनानेके लिए सचेष्ट न हों तो कब होंगे ?

*   *   *

अखिल भारत-सर्व-सेवा सघके प्रधान-मन्त्री श्री अण्णा साहब, अनन्त वासुदेव सहस्रबुद्धेने २६ सितम्बर '५५ को कोरापुटके कार्यकर्ताओंसे कहा कि "कोरापुटके नव-निर्माणकी जिम्मेदारी हमारे ऊपर है। पचवर्षीय योजनाके पहले भारत सरकारने सर्व-सेवा-सघको लिखा था कि वह नवनिर्माणके लिए कोई क्षेत्र चुन ले। हमारी ओरसे सरकारके सामने तीन माँगें पेश की गयी •

(१) जो क्षेत्र हमें मिले, उसमें भूमिका सम-वितरण हो ;

(२) हम उस क्षेत्रमें नयी तालीमका प्रयोग कर सकें और

(३) उस क्षेत्रकी पचायतें यदि अत्यधिक बहुमतसे, अर्थात् ६०, ७० प्रतिशतके बहुमतसे निर्णय करें कि अमुक वस्तु इस क्षेत्रमें न आनी चाहिए, तो उस क्षेत्रमें उक्त वस्तुका निषेध किया जा सके।

उस समय सरकार इतना बडा क़दम उठानेके लिए तैयार न हो सकी। इसलिए बात जहाँकी तहाँ रह गयी। परन्तु अब जब कोरापुटमें इतने ग्रामदान मिले हैं, तो स्थिति बदल गयी है।

अभी हालमें नेहरूजीने धीरेन भाईसे कहा कि तुम कोरापुटमें अपना प्रयोग करो। वहाँ अब तीनों बातोंकी सुविधा है। भूमिका सम-वितरण हो ही गया। शिक्षा वहाँ अभी है ही नही। इसलिए नयी-तालीमका मज़ेसे प्रयोग कर सकते हो। रही बात बाहरी चीज़ोंकी, सो बाहरी चीज़ें वहाँ आती ही कहाँ हैं ? "

*   *   *

और तब सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओंने बाबाके मार्ग-दर्शनमें कोरापुटके नव-निर्माणकी योजनाएँ बनायी। कृषि, गोपालन, ग्रामोद्योग, वस्त्र-स्वावलम्बन, नयी तालीम, स्वास्थ्य, यातायात, सहकारिता आदि सभी प्रमुख

समस्याओंपर विचार किया गया और सबके संयुक्त प्रयाससे कोरापुटको नया रूप देनेका निश्चय किया गया।

* * *

एक तो जंगली, पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ प्रदेश, दूसरे दरिद्रताका नग्नतम रूप, तीसरे रोग और बीमारियोंका प्रधान क्षेत्र, चौथे शिक्षाका सर्वथा अभाव, पाँचवें सभ्य जगत्से सर्वथा पृथक्—ऐसा है कोरापुटका यह क्षेत्र।

और सर्व-सेवा-संघने इस पिछड़े, पीड़ित, अशिक्षित और अविकसित क्षेत्रको ही नवनिर्माणके लिए चुना है तथा अपनी पूरी शक्तिसे यहाँपर कार्य आरंभ कर दिया है।

* * *

ऐसे क्षेत्रमें काम करना कितना कठिन होता है, इसका सहज ही अन्दाज़ लगाया जा सकता है।

इस क्षेत्रमें अधिकतर आदिवासी रहते हैं। उनकी भाषा न तो उड़िया है, न तेलुगु। इन दोमें किसी भी भाषाको वे नहीं समझते। उनकी अपनी स्वतन्त्र भाषा है। अत. उनके बीच काम करनेवाले सेवकों-के समक्ष पहली समस्या रहती है भाषा सीखनेकी। सर्व-सेवा-संघने अपने कार्यकर्ताओंके लिए उड़िया भाषामें उनकी लिपि सीखनेके लिए एक 'गाइड' तैयार की है। पहले उनकी भाषा सीखी जायगी फिर उनकी भाषाका माध्यम लेकर शिक्षा आरम्भ की जायगी।

* * *

कोरापुटके ६॥ हजार गाँवोंमें अभी मुश्किलसे २०० पाठशालाएँ हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र कोरी पटिया (slate) है। अब यहाँ गाँव-गाँवमें पाठशाला खुलेगी। खेतके साथ पाठशाला चलेगी, जिसमें नयी तालीम-की शिक्षा मिलेगी। अण्णा साहबके शब्दोंमें "दो-चार सालके बाद ५-६ हजार लड़के जिस खेतके साथ मिली हुई पाठशालामें पढ़ते रहेंगे,

उसमें धीरे-धीरे युनिवर्सिटीतककी तालीम वे पा सकेंगे, भले ही उनकी भाषामें उनकी किताव हो या न हो।"[1]

* * *

कोरापुटमें नवनिर्माणके कार्यका श्रीगणेश कृषिसे हो रहा है। अवतक ४७२ गाँवोंकी कुल ७६,५१,८६६ एकड भूमिमेंसे ५३,७८,७८६ एकड भूमि लोगोंमें वांटी जा चुकी है। १७३१ एकड सामुदायिक कृषि-कार्यके लिए छोड रखी गयी है, और २१००० एकड कृषियोग्य परतीके रूपमें छोड दी गयी है।

* * *

गाँवकी सारी जमीनके तीन विभाग किये जाते हैं: एक wet land धानकी खेती, दूसरी dry land रवीकी खेती, तीसरी वजर, जो खेतीके काम आ सकती है, लेकिन लायी नही जाती है। हर परिवारको आवादीके अनुपातमें जमीन वाँट दी जाती है। यह बँटवारा अन्तिम नही माना जाता। जरूरत हुई तो दस साल वाद इसमें हेर-फेर भी किया जा सकता है।

* * *

जमीनके बँटवारेके वाद खेतीके लिए वैल और औजार देनेका सवाल आता है। आदिवासियोंके पास पहलेसे ही वैल कम हैं। महाजनसे लेनेका अर्थ है—५, ६ माहके लिए प्रति वैल २०) देना और उसे इतने दिन चारा खिलाना। इसका अर्थ होता है महाजनके पंजेमें सदाके लिए फँस जाना। ऋणके इस स्थायी वन्धनसे किसानोंको मुक्त करनेके लिए यह सोचा गया कि धानकी खेतीवाली ५ एकड जमीनके पीछे, और सुश्कीवाली १० एकड जमीनके पीछे किसानको एक वैल-जोडी दी जाय। कम जमीन वाले २-२, ३-३ परिवारोंको मिलाकर एक वैल-जोड़ी दी जाय। अभीतक

---

१. रिपोर्ट: आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन, काँचीपुरम्. १९५६ पृष्ठ १११।

१००१ बैल-जोडियाँ १५६५ परिवारोंमें बाँटी जा चुकी हैं। इन बैल-जोडियोंका मूल्य है १ लाख २६ हजार रुपया।

बैलोंके अलावा खेतीके औजार कुदाल, फावडे, हल आदि भी देनेका विचार किया गया है।

*　　*　　*

कोरापुटमें जगलों और पहाडोंका प्रावल्य है। प्रकृतिकी यह मनोरम सुषुमा आर्थिक दृष्टिसे लाभकर नहीं है। सिंचाईके लिए न तो नहरें हैं, न कुएं। वर्षा यहाँ खूब होती है। सालमें ४, ५ मास लगातार। इस ६०, ७० इंच वर्षाका उपयोग यदि खेतीके लिए हो सके, तो खेतीकी आयमें पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। धानकी खेती कमसे-कम दुगुनी-तिगुनी बढ सकती है।

इतनी वर्षा होनेपर भी तमाशा यह है कि गर्मीके दिनोंमें पानीकी बडी कमी रहती है। पीनेके पानीके भी लाले पडते हैं। फिर कपडे आदि धोनेका सवाल तो दूर है। इसलिए कुछ कुओंकी खुदाईका काम भी जहाँ-तहाँ चालू किया गया है।

*　　*　　*

इस पहाडी और जगली प्रदेशमें जाना भी कठिन है। किसे पर्वाह है, जो इन जगलों और पहाडोंकी खाक छाने। वह तो बाबाने इस एकान्त प्रदेशमें अविरल पद-यात्रा की, तो उनके साथ हम जैसे कितने ही भाई इस क्षेत्रमें घूमे और उन आदिवासियोंसे मिले; जिनको कभी कोई बात ही नहीं पूछता था।

ऐसे प्रदेशमें यातायातकी समस्या टेढ़ी है। यहाँपर नहरें निकालना भी बहुत कठिन है। पर कोरापुटके विकासके लिए ये दोनों बातें अनिवार्य हैं और सर्व-सेवा-सघने इस दिशामें भी कदम बढाया है।

*　　*　　*

ऐसे प्रदेशमें रास्ते बनाने और नहरें आदि निकालनेके लिए इस कलाके दक्ष व्यक्तियोंकी आवश्यकता है। इन कामके लिए इंजीनियर

चाहिए, ओवरसियर चाहिए। पर इस काले-पानीके प्रदेशमें जाये कौन ? बिल्लीके गलेमें घण्टी बांधे कौन ?

और फिर सर्व-सेवा-संघके पास इतना पैसा भी कहां, जो मोटी रकम देकर इंजीनियरों और ओवरसियरोंको यहां लाये ?

पर भारत जैसी त्यागभूमिमें सेवाके पुजारियोंकी कमी नही। अण्णा साहबकी अपीलपर, उनके आवाहनपर इस उपेक्षित क्षेत्रकी सेवा करनेके लिए भी अनेक युवक मैदानमें आ गये हैं।

कई इंजीनियरोंने अपनी सेवाएं इस पुण्यकार्यके लिए अर्पित की हैं। उनके साथ ६-७ लडकोंने काम सीखकर ३ मासमें इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है कि वे खुद जाकर सर्वे कर लेते हैं। गुजरात विश्वविद्यालयसे भी १४ इंजीनियर कोरापुट पहुंचे हैं। उन्होंने भी सर्वेका काम हाथमें ले लिया है। सर्वे और इंजीनियरिंगकी शिक्षा देनेकी भी व्यवस्था शुरू की गयी है। इससे यह समस्या भी शीघ्र ही हल हो सकेगी, ऐसा विश्वास है।

*   *   *

कृषि और ग्रामोद्योगोंकी ट्रेनिंगका भी काम चल रहा है। ग्रामदानमें मिले सारे गांव ४ वर्गोंमें बांट दिये गये हैं। हर वर्गमें २०० ग्राम हैं। विकास-कार्यको आगे बढानेके लिए ८ केन्द्र खोले गये हैं। एक केन्द्रके अन्तर्गत २० से लेकर २५ तक ग्राम ५ मीलके अर्धव्यासमें आते हैं। ५० केन्द्रोंमें लगभग २०० कार्यकर्ता, जिनमें ४० आदिवासी, ४५ महिलाएं और ११० नवयुवक हैं, सेवाकार्यमें संलग्न हैं। ये कार्यकर्ता ग्रामनिवासियोंके सुख-दु.खके सहभागी बन गये हैं।

*   *   *

रायगढामें गत जून '५६ में एक कारखानेकी स्थापना की गयी है, जिसमें हर माह ५०० चरखे तैयार होंगे। साबुन, तेल और धान साफ करनेके उद्योग-धंधे भी संतोषजनक प्रगति कर रहे हैं। वास्तुकलाके प्रशिक्षणकी भी व्यवस्था की गयी है।

स्वास्थ्य-सुधारकी दिशामें भी सर्व-सेवा-संघ सचेष्ट है। २ डॉक्टरोंकी सहायतासे अबतक ५००० व्यक्ति रोग-मुक्त किये जा चुके हैं।

* * *

ग्रामवासियोंको महाजनके चगुलसे बचानेके लिए सर्व-सेवा-संघने 'अपनी दूकान' की योजनाको प्रोत्साहन दिया है। सब चाहते हैं कि हमारे गाँवमें हमारी दूकान हो। इसके लिए हर परिवारके पीछे कुछ पूँजी बनायी गयी और एक केन्द्रके लगभग २०० परिवारोंके लिए १५०), २००) की पूँजी इकट्ठी हो गयी। इस पूँजीके ५ से १० गुनेतक रक़म सर्व-सेवा-संघकी ओरसे लगा दी गयी। आज सर्व-सेवा-संघकी ४० हजार रुपयेके लगभग पूँजी इस काममें लगी है।

मिट्टीका तेल, नमक, मिर्च, खानेका तेल, हाथ-करघेका कपड़ा और अनाज इस दूकानमें रहता है। अभी ऐसी २७ दूकानें चल रही हैं। किसी भी दूकानमें घाटा नहीं है। किसी-किसीमें ४ मासके भीतर सौ-पचासका लाभ ही हुआ है। बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति भी इतनी अच्छी तरहसे अपनी दूकान चला लेते हैं, यह बात बड़ी ख़ुशीकी और गौरवकी है। आदिवासियोंकी प्रामाणिकता इसका मूल कारण है।

* * *

इसी तरह कोरापुटके निवासियोंके सर्वांगीण विकासके लिए और भी कितनी ही योजनाएँ चालू हैं। इन ग्रामीण भाई-बहनोंको आत्मनिर्भर बनाने इनकी जाति-पाँति, छुआछूत आदि कुरीतियाँ मिटाने, गन्दी आदतें छुड़ाने, शराब, बीड़ी आदि व्यसन दूर करने और इन्हें देशका स्वस्थ, सुशील और समृद्ध नागरिक बनानेके लिए सर्व-सेवा-संघ पूर्णतः सचेष्ट है। ग्राम-सभाके माध्यमसे ग्रामराज्यकी कल्पना सार्थक करनेका प्रयत्न हो रहा है। अण्णा साहबके तत्वावधानमें ये सारी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। इनका सफल होना अनिवार्य है।

* * *

बीच-बीचमें अण्णा साहब परामर्शके लिए बाबाके पास आते रहते हैं और उनके मार्गदर्शनमें सारा कार्य चलाते हैं। उडीसाकी सरकार, भारत सरकार, गाधी-स्मारक-निधि, कस्तूरबा-ट्रस्ट, हरिजन-सेवक-सघ आदि सभी सस्थाएँ इस पिछडे प्रदेशको उठानेके लिए तत्पर हैं।

हमारा विश्वास है कि पाँच-दस सालके भीतर ही कोरापुटका नकशा इतना ज्यादा पलट जायगा कि लोग दाँतोंतले उँगली दबाकर कहेंगे—

एक हम हैं कि लिया अपनी सूरतको भी बिगाड़।
एक ये हैं, जिन्हें तस्वीर बना आती है।।

० ० ०

जब टूटे हुए दिल जुड़ते हैं ! : ८ :

चिप्पगिरि : आन्ध्र : मार्च २८, १९५६ ।

सवेरे रास्तेमें ही दामोदर भाईने बाबाको बताया कि यह गाँव ऐतिहासिक है। आन्ध्रकी प्राचीन वैभवशाली नगरीका ध्वंसावशेष है। यहाँ शिवजीका एक विशाल मंदिर है। और उसीमें आज हमारा पड़ाव है।

दूरसे ही हम कह उठे :

खँडहर बता रहे हैं
इमारत बुलन्द थी !

* * *

स्वागतार्थी भीड़में उत्साह भरपूर था, पर वहीं इस राज़का पर्दाफाश हो गया कि गाँवमें दो दल हैं। दोनों एक-दूसरेसे द्वेष रखते हैं; पर भूदानके प्लेटफार्मपर दोनों एक हैं !

विनोबापर, भूदानपर दोनोंकी अविचल श्रद्धा है।

एक ही गाँवके निवासी, दोनोंके मकानोंमें भी ज्यादा फासला नहीं; पर पचास सालसे अदावतकी जो गाँठ दोनोंके बीच पड़ी सो पड़ी !

और जब दिल टूट जाते हैं, आपसमें मनमुटाव हो जाता है, द्वेषकी आग भभक उठती है तो विवेक टिक कहाँ पाता है ?

वही यहाँ हुआ। और इसीसे—

इस घरको आग लग गयी, घरके चिराग़से !

* * *

भाई-भाईका यह झगड़ा, यह मनोमालिन्य इतना बढ़ा कि उसके चलते गाली-गलौज, मारपीटतक ही नहीं, ख़ूनतक नौबत आ पहुँची !

कई कत्ल हो गये। कई खून हो गये।

और जहाँ कत्लतककी नौबत आ जाती है, वहाँ आपसमें कैसी दुश्मनी हो जाती है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

पचासों वर्षसे यह द्वेष चलता आ रहा है।

* * *

मजेकी बात यह कि दोनों पक्षवाले पढ़े-लिखे, शिक्षित, समझदार लोग।

दोनों ओरके लोग सेवा करनेको आतुर।

दोनों ओरके लोग जन-सेवक।

दोनों ओरके लोग भूदानके प्रति हमदर्दी रखनेवाले।

* * *

ऐसी पृष्ठभूमि, फिर यह सम्भव कैसे था कि अहिंसाके पुजारीका जादू उनपर न चलता?

* * *

विशाल मंदिरके एक प्रांगणमें बाबाका डेरा लगा, दूसरेमें अन्तेवासियोंका।

भव्य शिवलिंगका दर्शन करके नारायण भाई मस्त हो उठे। पलथी मारकर बैठ ही तो गये और गा उठे :

भुवनेश्वर हे,
मोचनकर बंधन सब,
मोचन कर हे।

* *

दोपहरमें बाबासे अलग-अलग दोनों पक्षवाले मिले।

बाबाने उनसे और बातें तो की, पर आपसी मनमुटाव दूर करनेके बारेमें कुछ न कहा। शामको प्रार्थना-सभामें ही उन्हें जो कहना था, सो कह डाला। वे बोले :

"जहाँ ऐसा भव्य मंदिर और ऐसा भक्ति-भाव है, वहाँ भला ये झगड़े

टिक सकते हैं ? अंधकार और प्रकाश कभी साथ-साथ रह सकता है ? यदि वह रहता है, तो इसका मतलब यही है कि भक्तिभाव इतना मजबूत नहीं है कि वह मनुष्यके मानसिक विकारोंपर काबू पा सके। मूर्तिपर केवल 'पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयम्' चढा देनेसे काम नहीं चलेगा। हृदयमें स्वच्छ, शुद्ध निर्मल भाव भरने होंगे। आपको चाहिए कि उसमें भक्तिके फूल और ज्ञानके फल आने दीजिये और अन्तरात्माकी पूजा कीजिये।"

* * *

कहा है :

"जब दिलमें नहीं दर्द,
जबाँमें हो असर क्या ?"

किसी भी व्यक्तिका कोई असर तभी पडता है, जब उसके पीछे कुछ ठोस आधार होता है। हृदयसे निकली वाणी जादूका असर करती है। दर्द-भरे दिलसे निकली पुकार पत्थरोंको हिला देती है, मनुष्यकी तो बात ही क्या !

* * *

बाबाने मानो इन विरोधी भाइयोंके हृदयमें सोये भगवान्को मधुर स्वरमें जगाया :

"जागिये रघुनाथ कुँवर
पंछी वन बोले ॥"

'भला जरा सोचो तो कि ऐसे पवित्र स्थलमें तुम रहते हो, ऐसे भव्य मन्दिरकी छायामें निवास करते हो, रोज ही शिवमहिम्न-स्तोत्रका पाठ करते हो, भगवान् आशुतोषकी आरती उतारते हो, फिर भी तुम्हारे हृदयमें अभीतक द्वेषकी अग्नि भभक रही है। ऐसा तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम भक्त हो, तो तुम्हारे हृदयमें विकार रहना ही न चाहिए। तुम जब शिवकी आराधना करते हो, तो तुम्हारे मनमें अ-शिवभाव रहने ही न चाहिए। तुम तो शुद्ध निर्मल सच्चिदानन्दके भक्त हो। अपने मूल

स्वरूपको तुम भुला बैठे हो। उठो, जागो—यह मत्सर छोडो ! यह राग-द्वेष, यह मनोमालिन्य उठाकर फेंक दो···· '

*　　　*　　　*

भूमि तैयार थी। जोतनेकी देर थी। बाबाने उसे जोत दिया।

*　　　*　　　*

बाबाके शब्दोंने जादूका असर किया। रही-बची कसर यात्री-दलके दामोदर भाई, ओम्प्रकाश भाई, नारायण भाई आदिने पूरी कर दी।

और यह लीजिये, प्रेमकी खेती अमृतजल पाकर लहलहा उठी !

*　　　*　　　*

मन्दिरके प्रागणमें एक ओर नक्षत्रोंकी छायामें हम सब अतेवासी बैठे थे।

बाबासे कुछ आध्यात्मिक चर्चा चल रही थी। इसी समय दल-के-दल लोग वहाँ आकर जुटने लगे।

दोनों पक्षोंके दो प्रमुख भाइयोंको आगे करके एक वृद्धने कहा :

"बाबा ! अब ये दोनों भाई मिलकर रहेंगे, आपसी झगडा भूल जायेंगे।"

कैसा हृदयस्पर्शी दृश्य !

बाबा क्षणभर शात रहे। फिर स्वतः उनके मुखसे वेद-मत्र फूट पड़ा :

"ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु···"

उसके बाद—

"समानीव आकूतिः।
समाना हृदयानि व.॥
समानमस्तु वो मनः।
यथा वः सुसहासति॥"

कहते हुए बाबाने दोनोंको आशीर्वाद दिया—

'परमेश्वर आपको सदा ऐसी बुद्धि दे।'

*　　　*　　　*

नारियल हमारे मगल-द्रव्योंमें प्रमुख स्थान रखता है। यज्ञ हो, हवन हो, पूजा हो, पाठ हो, विवाह हो, यज्ञोपवीत हो, मंगल-कार्योंमें, दान-दक्षिणामें नारियलका उपयोग होता है।

और फिर दक्षिण तो नारियलोंकी खान।

जल-भरा नारियल तोडा गया। बाबाने अपने हाथसे दोनों भाइयोंको उसका प्रसाद वितरित किया।

गद्गद हृदयसे दोनों भाई बाबाको प्रणाम करके चल पडे।

कलके दुश्मन, आज दोस्त बन गये !

* * *

और फिर रातको हम लोगोंको वह दावत मिली कि क्या पूछना!

पचासों वर्षका पुराना मनोमालिन्य मिटनेसे दोनों दलोंके लोग, उनके परिवारके लोग, उनके पास-पड़ोसी, उनके नौकर-चाकर, उनके हित-मित्र, सब प्रसन्नताके सागरमें डुबकी लगा रहे थे।

टूटे दिल जुड़नेकी कैसी अद्भुत कहानी !

कलियुगमें सतयुगके दर्शन !

शिकायतियोंसे पाला पड़नेपर— : ६ :

मृग-मीन-सज्जनानाम्
तृण-जल-संतोष-वृत्तीनाम्
लुब्धक-धीवर-पिशुना
निष्कारणवैरिणो जगति ।

मृग किसीको सताता नही ।
घास खाकर ही अपना पेट भर लेता है ।
मछली किसीका कुछ नही बिगाडती ।
पानी पीकर ही गुजर कर लेती है ।
और सज्जन तो अजातशत्रु ही ठहरे ।
उनको तो जो मिल जाय, उसीमें सतोष ।
फिर भी—
बहेलिया मृगको मारनेपर ही तुला रहता है ।
मछुआ मछलियोंको फँसानेके ही फेरमें रहता है ।
दुष्ट लोग हाथ धोकर सज्जनोंके पीछे ही पडे रहते हैं ।

*　　　*　　　*

आप लाख अच्छा काम करिये, कुछ-न-कुछ लोग आपके विरोधी बन ही जायेंगे ।

कुछ-न-कुछ लोगोंको आपसे शिकायत रहेगी ही ।
और तभी न, ईसा क्रासपर लटका दिया गया ।
मसूर सूलीपर चढा दिया गया ।
गाधी गोलीसे उडा दिया गया ।
अहिसाके ये पुजारी हिसाके शिकार बने ।

ठीक ही कहा था बर्नर्ड शा ने—

"How Dangerous it is to be *Too* Good!"

('बहुत भला होना भी कितना खतरनाक है!')

*   *   *

बाबा अहिंसाके पुजारी हैं।

उनका मूलमन्त्र है—

"करूँ मैं दुश्मनी किससे
अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बतने नहीं दिलमें,
जगह छोड़ी अदावतकी।"

फिर भी कुछ लोगोंको बाबासे शिकायत है और बड़े जोरोंकी शिकायत है!

जमींदारोंको शिकायत है:

बाबा हमें जमीनसे वंचित कर रहा है।

वकीलोंको शिकायत है:

बाबा हमारी 'प्रैक्टिस' (वकालत) पर पानी फेर रहा है।

साहूकारोंको शिकायत है:

बाबा हमारे मुनाफेपर प्रहार कर रहा है।

व्यापारियोंको शिकायत है:

बाबा हमारा रोज़गार चौपट कर रहा है।

पैसेवालोंको शिकायत है:

बाबा हमारे ऐशोआराममें ख़लल डाल रहा है।

इन सबकी शिकायतें जो हैं, सही हैं, दुरुस्त हैं।

बाबाके भूदान-आन्दोलनसे इनके स्वार्थोपर प्रहार होता है। इनके आराममें बाधा पड़ती है—इसलिए इनका चिचियाना स्वाभाविक है।

*   *   *

ऐसे शिकायती अक्सर बाबाके पास आते हैं और गोल-मटोल शब्दोंमें

अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं। बाबा प्रेमकी जादू-भरी छडी उनपर फेर देते हैं और वे मन्त्रमुग्ध होकर लौट जाते हैं।

* * *

बात यहींतक होती, तो भी गनीमत थी।

शिकायतियोंकी पलटन और भी बडी है।

बाबा किसी पार्टीके मेम्बर नही।

किसी भी दलके वे चौअन्निया सदस्य नही।

बाबा हर पार्टीका सहयोग माँगते हैं।

भूदानके कार्यमें जो भी योग देना चाहे, उसका वे स्वागत करते हैं।

परन्तु दलबन्दीकी राजनीति भला इसे कैसे पसन्द करे।

चुनाव-चक्रमके मतवाले, कुर्सियों और पदोंपर उसी तरह टूटनेवाले—जिस तरह कौए मासपर टूटते हैं और मक्खियाँ गदगीपर, भला बाबाका समन्वय-वाद क्यों पसन्द करें?

वे तो चाहते हैं कि भूदानमें यदि कुछ काम करते हैं तो उसका भी चेक भुना लें।

भूदान आजके युगकी पुकार है, पूँजीवादी अर्थ-तन्त्रसे विशृङ्खल समाज-की एकमात्र दवा है। ग़रीबों और असहायोंका अद्भुत महारा है।

जनता-जनार्दनकी सेवाके नामपर मेवा उडानेवाली पार्टियोंके नुमाइन्दे भूदानसे अलग तो रह कैसे सकते हैं, शर्मायी सौदा ही सही, उन्हें भूदान-का समर्थन करना पडता है, पर उन्हें तो सेवाका पुरस्कार चाहिए।

पुरस्कार-शून्य सेवाका उनके अर्थशास्त्रमें कोई अर्थ नही। इसलिए वे भूदानकी भी हुण्डी भुनानेको उत्सुक हैं।

पिछले आन्दोलनोंमें कुछ अपवादोंको छोडकर, कुछ निःस्पृह देशभक्तों-को छोडकर, जिन वकीलोंने योगदान किया, उनकी वकालत चमक गयी। जिन डॉक्टरोंने जेल काटी, उनकी डॉक्टरी चमक गयी, जिन वक्ताओंने पुलिसके डडे खाये, उन्हें राजगद्दी मिल गयी या कुछ नही तो 'पोलिटिकल सफरर फड' राजनीतिक पीड़ित कोषसे सहायता ही मिल गयी। कोई

एम० एल० ए० बना, कोई एम० पी०, किसीको ऊँची नौकरी मिली, तो किसीको राशनकी दूकान या मोटर ट्रांसपोर्टका लैसंस ! मतलब जिससे जैसे बना, उसने वैसे चाँदी काटी !

आज भूदान-आन्दोलन देशका ही नहीं, सारे विश्वका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। तो क्यों न पदलोलुप लोग उसके प्लेटफार्मसे अपना उल्लू सीधा करना चाहेंगे ?

बाबाके आगे ऐसे लोगोंकी कोई दाल नहीं गलती।

बाबा ठहरे, निष्काम कर्मके भक्त।

बाबा ठहरे, निःस्वार्थ सेवाके पुजारी।

और इसलिए भी बहुत-से लोगोंको बाबासे शिकायत है!

* * *

कांग्रेस भूदानका समर्थन करती है।

अनेक कांग्रेस-कार्यकर्ता भूदानमें जी-जानसे जुटे हैं।

सोशलिस्ट पार्टी भूदानका समर्थन करती है।

अनेक समाजवादी-कार्यकर्ता भूदानमें पूरी ताक़त लगा रहे हैं।

रचनात्मक कार्यकर्ताओंके विधायक कार्यका एक अंग ही है—भूदान।

वे प्राणपणसे भूदानमें जुटे हुए हैं।

कहीं-कहीं हिन्दू सभा, रामराज्य परिषद् जैसी संस्थाओंके लोग भी भूदानमें लगे नज़र आते हैं।

इन सब कार्यकर्ताओंका सहयोग भूदानको मिल रहा है। माना, इसमें कुछ लोग सिर्फ दिखावेके लिए योगदान करते हैं, परन्तु अनेक कार्यकर्ता सच्चे जीसे इस काममें लगे हैं। भूदानकी देशव्यापी प्रगति इसका प्रमाण है।

* * *

पर, कम्युनिस्ट पार्टी शुरूसे भूदानके खिलाफ है।

कम्युनिस्टोंके गढ तेलगानामें भूदानका जन्म हुआ। वहींसे वह पनपा और आज सारे देशमें उसका व्यापक जाल फैल गया है।

कम्युनिस्टोंकी हिंसासे जो काम नही बन सका, बाबाकी अहिंसाने उसे कर दिखाया।

भूदानका विरोध तो वे आज भी करते हैं, पर उनका पहलेका रुख बहुत कुछ बदल गया है।

*   *   *

अडोनी, २३ मार्च '५६।

कम्युनिस्टोंने बाबासे मिलनेके लिए समय माँगा।

वे जब मिलने आये तो हम लोगोंने देखा कि उनमेंसे अधिकाश हमारी मेजबानीका ही बिल्ला लगाये हुए हैं। स्वागत-समितिके ही बहुतेरे सदस्य कम्युनिस्ट थे!

क्या खूब—

"रास्ता रोकके कह लूँगा जो कहना होगा,
क्या मिलोगे न कभी राहमें आते-जाते?"

*   *   *

शिकायती भाई तरह-तरहकी शिकायतें करते हैं। कुछ विनोबाकी, कुछ भूदानकी, कुछ कार्यकर्ताओंकी, कुछ व्यक्तिगत। एकाध मिसाल लीजिये।

शिकायती : 'यहाँका एक भूदान-कार्यकर्ता एक भूमिवान्के पास जाकर बोला कि यह भूदान-आन्दोलन कम्युनिस्टोंको दबानेके लिए है।'

बाबा : 'ऐसा कहना ग़लत है। जिस कार्यकर्ताने ऐसा कहा हो, उसे लाइये तो हम समझा दें।'

शिकायती . 'अच्छी ज़मीन बताकर निकम्मी जमीन लोग भूदानमें मढ देते हैं। ५ करोड एकड निकम्मी जमीन भूदानमें यदि मिल ही गयी, तो उसमे क्या भूमि-समस्या हल हो जायगी?'

बाबा : 'कार्यकर्ता समझायें तो ऐसे सभी सवाल हल हो सकते हैं।

अभीतक देशमें ३॥ लाख एकड जमीन बँटी है। यह कहिये कि यह सबकी सब जमीन खराब है, सो बात नहीं। फिर यह तो समुद्र है। समुद्रमें अच्छा पानी भी आता है, खराब पानी भी। थोड़े पानीसे समुद्र सतुष्ट होनेवाला नहीं। बाबाको तबतक संतोष न होगा, जबतक भूमिहीनोंको पूरी जमीन न मिल जाय। ५ करोड एकड़ जमीनमें सिर्फ १ करोड एकड़ ही अच्छी जमीन मिले और ४ करोड़ एकड़ खराब मिले, तो हम और ४ करोड एकड जमीन मांगेंगे। हम ऐसी जमीन देनेवाले दाताओंसे पूछेंगे कि भाई, तुम जमीन बदलते हो या तुम्हारे दान-पत्रको हम निकम्मा मान लें। आदलाबादमें १००० एकड जमीन मिली थी। ५०० एकड बँट गयी। ५०० एकड जमीन खराब जान पड़ी। बाँटनेवालेने पूछा, अब क्या करें? उससे कहा गया कि दाताने जाकर मिलो और कहो कि आपके पास और जमीन हो, तो उसमेंसे ५०० एकड़ अच्छी जमीन दे दो। वह राजी हो गया। यदि वह राजी न होता, तो बाबा कहता कि उसने बाबाको ठगा है। आखिर अपनी आबरूकी कुछ तो कीमत होती है! एक बार जो नाम कमायेगा, वह बदनाम क्यों होना चाहेगा? 'दाता' कहलाकर कोई 'कजूस' क्यों कहलाना चाहेगा?'

× × ×

और उस दिन शामके झुटपुटेमें महबूबनगरमें, असेम्बलीके विरोधीदलके एक नेता महोदय बाबासे लगे शिकायत करने कि सरकार जबरन भूमिदान ले रही है। उनका कहना था कि सरकारी अफसर जबरदस्ती ही किसानोंसे दान-पत्र भरवाते हैं।

बाबा बोले: 'आप पहले आदमी हैं, जो ऐसी शिकायत ला रहे हैं। ऐसा एकाध भी तो सबूत हमारे सामने पेश कीजिये। बिना सबूतके ऐसी शिकायत करना आपको शोभा नहीं देता। हम तो रोज ही डंकेकी चोट कहते हैं कि भूमिदानमें किसीकी जबरदस्ती नहीं चल सकती। यह तो प्रेमका सौदा है। जिसका जी चाहे, वह दान दे। किसीके असरमें आकर, दबावमें आकर कोई जमीन दे, यह हमें मंजूर नहीं। हमारा विचार समझ-

कर अपने परिवारका सदस्य बनानेके लिए हमें जो जमीन दे, उसीको हम मजूर करते हैं ।'

सोशलिस्ट पार्टीके उक्त नेता महोदय वाबाका जवाव सुनकर लगे बगलें झांकने। व्यक्तिगत शिकायतोंपर जब वे उतरे, तो बाबाने बड़े प्रेम-भरे शब्दोंमें कह दिया: "आपकी शिकायतपर मैं विश्वास कर लूं और दूसरे पक्षकी न सुनूं, तो यह अन्याय होगा। मैं ऐसी शिकायतोंपर कभी विश्वास नही करता। न तो मैं आपकी ही शिकायत सही मान सकता हूं और न उसकी ही शिकायत, यदि वह आपके पीछे आपके खिलाफ़ करे।"

* * *

अनिन्दाकी कैसी बढ़िया मिसाल!

और तभी मेरे स्मृतिपटपर आ वैठे बुल्ले शाह—

"दुई दूर करो, कोई सोर नहीं,
हिन्दू तुरक, कोई होर नहीं।
सब साधु लखो, कोई चोर नहीं,
घट-घटमें आप समाया है।।"

सन् '१६ में : जब बाबा काशीमें थे! : १० :

नक्षत्रोंकी शीतल छाया।

ब्राह्म मुहूर्तकी पावन वेला।

अगले पडावकी ओर हम सब बढ रहे थे कि अचानक मैंने बाबासे पूछ ही तो दिया : "बाबा, पहली बार १९१६ में आप काशीमें कितने दिन ठहरे थे?"

"दो महीनेसे पाँच-सात दिन कम।"

और फिर उसके बाद चल पडी काशीकी चर्चा।

"कहाँ रहते थे", "क्या खाते थे", "कौन-कौन साथमें था", ऐसे कितने ही प्रश्न मैंने कर डाले।

*　　　*　　　*

इण्टरका परीक्षार्थी-दल बम्बई जा रहा था।

विनायक नरहर भावे भी उस छात्र-दलका एक सदस्य था।

सूरत स्टेशनपर गाडी पहुँची कि विनायकने साथियोंसे कहा : "भाई, मैं तो चला। और कोई चलेगा मेरे साथ?"

दो लडके और निकल पडे विनायकके साथ।

"घर छोडे बिना, संकुचित परिधिसे बाहर निकले बिना, बडा परिवार बनाये बिना, सर्वस्व समर्पण किये बिना, देश-सेवा हो नहीं सकती। ब्रह्मको पाना है, तो घर-गृहस्थीका पाश काटना ही होगा।..."

विनायककी ये दलीलें दो सहपाठियोंपर असर कर गयीं।

भाने पढकर परीक्षाएं पास करनेका मोह छोड़ वे भी उनके साथ चल पडे।

*　　　*　　　*

"अब कहाँ चला जाय ?"

"तिलकके पास ?"

"हिम्मत नहीं ।"

"बेसेंटके पास ?"

"इच्छा नहीं ।"

"हिमालयमें ?"

"आकर्षण तो होता है हिमालयका, किन्तु पहले संस्कृतका जमकर अध्ययन कर लिया जाय, तब तपस्याके लिए हिमालय चला जाय ।"

और इस ज्ञानोपासनाके लिए काशीसे बढ़कर क्षेत्र और मिलेगा कहाँ ?

*　　　　*　　　　*

तीनों युवक आ जमे काशीमें ।

दुर्गाकुण्डमें एक छोटी-सी कोठरी ली ।

अन्न-क्षेत्रमें भोजन और ज्ञानकी उपासना ।

बाबाने बताया : "क्षेत्रमें भोजनके समय बड़ा शोरगुल मचता । भोजन परोसनेकी व्यवस्थामें बड़ी देर लगती । मैं तबतक, उस शोरगुलके बीच, गीताका सम्पूर्ण पाठ कर लेता । किसी दिन परोसनेके पहले पाठ पूरा न होता, तो परोस जानेपर कर डालता ।"

"खानेको क्या मिलता था ?"—पूछनेपर उन्होंने बताया कि "रोटी, दाल, भात, कभी गुड़, मीठा आदि भी मिलता, साथमें मिलती दो पैसा दक्षिणा ।"

और उस दक्षिणासे बाबा शामको दही और भुने हुए शकरकन्द लेकर पेट भर लेते । दही कुल्हड़ भरकर मिलता, मीठा, बढ़िया, स्वादिष्ट ।

*　　　　*　　　　*

विनायकका एक साथी था बेडेकर ।

खूब मोटा-तगड़ा, हट्टा-कट्टा, स्वस्थ ।

लेकिन जीभपर उसका क़ाबू न रह पाता। सोचता, ज्यादा खा लूँगा, तो पचा डालूँगा।

और उसीका नतीजा यह हुआ कि उसने इतना खा लिया कि एक दिन 'टें' बोल गया !

उसके प्राण जब निकलनेको हुए तो बोला :

"विनायक, मुझे किसी ऐसे-वैसे ब्राह्मणका स्पर्श न होने देना। न डोमको ही मेरा शरीर छूने देना। तू ही मुझे 'भडाग्नि' दे देना।"

और सचमुच बाबाने उसे 'भडाग्नि' दी।

* * *

विनायक पहलेसे पढक्कू ठहरा।

काशीमें 'म्योर सेंट्रल लाइब्रेरी' की तमाम पुस्तकें चाट डाली उसने।

अध्ययन, मनन, चिन्तन। आसन और प्राणायाम।

केवल इतना ही उन दिनोंका प्रोग्राम था।

* * *

रातको विनायक जा बैठता जाह्नवीके तटपर।

गंगा उसे अपार प्रेरणा देती।

कैसा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है उसने गंगाका—

"और, वह पावन गंगा ! जब मैं काशीमें था, तो गंगाके किनारे जा बैठता। रातमें, एकान्तमें जाता। कितना सुन्दर और प्रसन्न उसका प्रवाह ! उसका वह भव्य गम्भीर प्रवाह और उदरमें नचित आकाशके वे अनन्त तारे ! मैं तो मूक बन जाता। शंकरके जटाजूटसे अर्थात् उस हिमालयसे चलकर आनेवाली वह गंगा, जिसके तटपर राजपाटको तृणवत् फेंककर राजा लोग तप करने जाते थे। उस गंगाका दर्शन करके मुझे असीम शांतिका अनुभव होता। उस शांतिका वर्णन मैं कैसे करूँ ? वाणीकी यहाँ सीमा आ जाती है। यह बात मेरी समझमें आने लगी कि

हिन्दू क्यों यह चाहता है कि मरनेपर अन्तमें मेरी अस्थि तो गगामें पड जाय। आप हँसिये। आपके हँसनेसे कुछ बिगडता नही। परन्तु मुझे ये भावनाएँ परम पवित्र और सग्रहणीय मालूम होती हैं। मरते समय गगाजलकी दो बूँदें मुँहमें डालते हैं। ये दो बूँदें क्या हैं ? मानो, परमेश्वर ही मुँहमें उतर आता है। ऐसी जो गगा है, उसे परमात्मा ही समझो। वह परमेश्वरकी करुणा ही वह रही है। तुम्हारा सारा भीतरी-बाहरी कूडा-कर्कट वह माता धो रही है, वहाकर ले जा रही है। गगा मातामें यदि परमेश्वर प्रकटित न दिखाई दे, तो कहाँ दिखाई देगा ?....."

* * *

काशीमें भागीरथीके पावन तटपर विनायक घण्टों बैठा रहता।

ध्यानमग्न, चुपचाप, शान्त।

* * *

सर्टिफिकेटोंको अग्निमें स्वाहा करके माँको चौंकानेवाला विनायक भावुक भी है। कवि भी है। पर वह आजकलका कवि नही कि एक तुकवन्दी लिखी और दौड पड़े वाजारमें उसे छपानेके लिए। वह तो सर्वांग सुन्दर कविता भी यज्ञ-भावसे अग्निमें स्वाहा कर देता है या गगामें प्रवाह !

वह कहता है :

"वचपनमें मुझे कविता करनेका शौक था। एक एक कवितामें दो-दो, तीन-तीन दिन लगते। कविता गुनगुनाकर देखनेसे मुझे मालूम हो जाता था कि अब यह कविता सर्वांग सुन्दर वन गयी है। मैं ठहरा उस समय वच्चा।

"निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।"

जो भी लिखता, सर्वांग सुन्दर ही जान पडता। जब मुझे पूरा समाधान हो जाता कि कविता सुन्दर वनी है, तब उसे पूरी करता। जाडेके दिनोंमें आगके अलावके सामने बैठकर मुझे कविता लिखनेका स्फुरण होता। जब मुझे इस बातका विश्वास हो जाता कि कविता बहुत

अच्छी बनी है, तब मैं कविता अग्नि-नारायणको समर्पण कर देता। उसी तरह मैंने उस समयकी सब कविताएँ अग्नि-नारायणको समर्पित कर दीं। फिर भी मेरे मित्रोंने दो-चार कविताएँ छीन लीं। वे आज भी बची हुई हैं।

"जब मैं ब्रह्मकी खोजमें घर छोड़कर निकल पड़ा, तो काशी आया। गंगाके निकट कविता लिखनेका मेरा शौक और बढ़ा। उस समय मैं गंगा-तटपर बैठता था। वहाँके शांत वातावरणमें ध्यान, चिन्तन करके कविता लिखता था, और जो अच्छी बन जाती थी, उसे गंगाको अर्पित कर देता था। इस तरह अग्नि-नारायण गये और गंगा आयी !"

*　　　　*　　　　*

विनायककी उस समयकी कविताएँ कैसी भावना-प्रधान होती थीं, एक नमूना लीजिये :

"घेउनि वामनरूप भृंग तो
येतसे लुटाया मजला धावुनी
परि हृदयाचें बलिदान देउनी
जिंकिला कोंडिला केला गुंग तो
मी समर्पणाचें गीत गातसें
गा गा रे सख्या तूहि गा तसें।"

कमल कहता है कविसे—वामनका रूप धारणकर भ्रमर आता है मुझे लूटने, पर हृदयका बलिदान देकर मैं उसे अपनी कोमल पंखुड़ियोंमें जकड़ लेता हूँ और वह भी मस्तीमें जकड़ जाता है। मैं तो समर्पणका गीत गाता हूँ। हे सखे, तू भी गा।

जीतनेकी कैसी बढ़िया तरकीब !

बलिके सिर झुकानेपर वामन भगवान्ने उसे पाताल पहुँचा तो दिया, पर उसीका द्वारपाल बनकर उन्हें रह जाना भी पड़ा।

क्या खूब :

सौदेके लिए बरसरे-बाजार हुए हम,
हाथ उसके बिके, जिसके खरीदार हुए हम !

* * *

समर्पणकी यह उज्ज्वल भावना विनायककी रग-रगमें भिदी पडी है।

उसका सारा जीवन तो समर्पण ही है।

* * *

और इन्ही दिनों एक अद्‌भुत घटना घट गयी।

कर्मवीर गाधी आये भारत।

महामना मालवीयने उन्हें बुला लिया हिन्दू विश्वविद्यालयके दीक्षात-समारोहमें।

चारों ओर वैभवका अतुल प्रदर्शन।

मूक गाधी मुखर हो उठा :

" कल जो महाराजा अध्यक्ष थे, उन्होंने भारतकी गरीबीके बारेमें कहा था। अन्य वक्ताओंने भी इसपर काफी जोर दिया। लेकिन, जिस भव्य मण्डपमें वाइसरायने उद्घाटन किया था, उसमें आपको कौन-सा दृश्य दिखाई दिया ? उसमें कितनी शान थी ! कितनी तडक-भडक थी। पैरिसके किसी जौहरीकी आँखोंको लुभानेवाला यह जड जवाहरातका प्रदर्शन था। कीमती रत्नाभूषणोंसे सजे इन सरदारों और देशके करोडों गरीबोंकी स्थितिकी मैंने तुलना की। मुझे यह अनुभव होने लगा कि इन सरदारोंसे कहना पडेगा कि जबतक आप इन जवाहरातोंको त्यागकर अपनी धन-दौलतको राष्ट्रकी थाती समझकर न रहेंगे, तबतक हिन्दुस्तानको मुक्ति न मिलेगी। हमारे देशमें ७० फीसदी किसान हैं और जैसा कि मिस्टर हिगिनबोथमने कल कहा था कि खेतमें अन्नकी एक बालकी जगह दो बालें पैदा करनेकी शक्ति इन्ही किसानोंकी है। लेकिन उनके श्रमका सारा फल यदि हम उनसे छीन लें या दूसरोंको छीन लेने दें, तो फिर यह नहीं कहा जा सकेगा कि हममें स्वराज्य-भावना जाग्रत है। हमारी

मुक्ति इन किसानोंके द्वारा ही होगी। डॉक्टरों, वकीलों, अमीर, उमरावों द्वारा नही।…"

"हैं हैं, क्या बोलता है यह गांधी ?" राजा-महाराजा बुरी तरह सकपकाने लगे।

पर गाधी तो गाधी। वह भला क्यों रुकने लगा ? वह तो दम्भका पर्दा-फाश करनेपर तुला था। बोलता ही गया वह।

वाइसरायकी रक्षाके लिए जगह-जगह तैनात खुफिया पुलिसकी चर्चा करते हुए उसने कहा : "यह अविश्वास क्यों ? इस तरह जिन्दा मौतके पास रहनेके बजाय लार्ड हार्डिंग यदि मर गये, तो क्या ज्यादा सुखी न रहेंगे ? लेकिन खुफिया पुलिस हमपर लादनेकी जरूरत क्यों पड़ी ? इसके कारण हमें गुस्सा आयेगा, झुँझलाहट होगी, इसके प्रति तिरस्कार भी पैदा होगा। लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिए कि आज हिन्दुस्तान अधीर और आतुर हो गया है। अतः भारतमें अराजकोंकी एक सेना तैयार हो गयी है। मैं भी एक अराजक हूँ। पर, दूसरी तरहका। अगर मैं इन अराजकोंसे मिल सका, तो उनसे जरूर कहूँगा कि तुम्हारे अराजकवादके लिए भारतमें गुंजाइश नही है। हिन्दुस्तानको अगर अपने विजेतापर विजय पानी है, तो उनका तरीका भयका एक चिह्न है। हमारा यदि परमेश्वरपर पूर्ण विश्वास है, तो हम किसीसे नही डरेंगे। राजा-महाराजाओंसे नही, वाइसरायसे नही, खुफिया पुलिससे नही, और स्वयं पचम जार्जसे नही !… "

बीचमें श्रीमती एनी बेसेंटने एक बार अध्यक्षकी कुर्सीपर विराजमान दरभंगाके महाराजाधिराज श्री रामेश्वरसिंहका ध्यान गाधीके भाषणकी 'अप्रासंगिकता' की ओर आकृष्ट किया, पर जनता चिल्ला उठी : "कहे जाइये, कहे जाइये !"

गाधी बोलता रहा, राजा-महाराजा उठ-उठकर चलने लगे।

और इस भगदड़में सभा समाप्त हो गयी !

महामनाको इस तरह "जग्य विवस" होते देख बडा दुःख हुआ। उन्होंने इसके लिए अतिथियोंसे क्षमा मांगी।

*   *   *

गाधीका भाषण क्रान्तिकारी था।

विनायकने भी उसे अखबारोंमें पढा।

पढकर उसे लगा—गाधी तो अद्भुत व्यक्ति जान पडता है। भय तो उसे छू नही गया। सत्य उसके वाक्य-वाक्यमे टपकता है। हिंसामें उसे कतई विश्वास नही। परमेश्वरपर उसकी ऐसी अटल श्रद्धा है।

देश-भक्ति और अध्यात्मका ऐसा सुन्दर समन्वय! ऐसे ही व्यक्तिका सान्निध्य तो मुझे चाहिए।

और उस दिनसे वह गाधीपर लट्टू हुआ सो हुआ।

*   *   *

खतो-किताबत की, तो गाधीने लिखा: "अच्छा हो, १०-१५ दिन तुम साबरमती-आश्रममें आकर रह जाओ।"

विनायक कोचरब-आश्रम पहुँचा। वहांके सीधे-सादे, सरल आश्रम-जीवनपर वह मुग्ध हो उठा।

और फिर तो वह वहां रम ही गया। गाधीने उससे पूछा: "घरका क्या हाल है? तुमने अपना हाल-चाल उन लोगोंको लिखा है?"

विनायकने कहा: "सूरतमे एक पत्र लिखा था कि मैं परीक्षा देने बम्बई न जाकर कहीं और जा रहा हूं। आपको यह तो विश्वास है ही कि मैं चाहे जहां जाऊं, मेरे हाथसे कोई अनैतिक काम न होगा।"

गाधीने कहा: "ऐसा ठीक नहीं। घरवाले चिन्तित होंगे। उन्हें कुशल-पत्र देना पुत्रका धर्म है। उससे उन्हें चिन्ता रखना ठीक नहीं है। लिखो, अभी उन्हें पत्र लिखो।"

विनायकने माता पिताको कवितामें एक भाव-पूर्ण पत्र लिखा।

गाधीने स्वयं भी विनायकके पिताको लिखा:

"तुम्हारा 'विनोबा' मेरे पास है। इस छोटी-सी उम्रमें ही तुम्हारे

पुत्रने जो तेजस्विता और वैराग्य प्राप्त कर लिया है, उसे प्राप्त करनेमें मुझे कितने ही वर्ष लग गये थे।"

और तभीसे विनायकका नाम 'विनोबा' पड़ गया।

* * *

और अभी उस दिन ?

काचीपुरम्-सम्मेलनकी समाप्तिपर, आत्मशुद्धिके उपवासके बाद, बाबाकी यात्राका प्रथम दिन था। जूनकी सात तारीख।

पड़ावपर पहुँचकर बाबाने समय पूछा।

किसीने कहा : "साढे सात !"

बाबाकी आँखें कुछ अंतर्लीन हुईं। मुखसे धीमी आवाजमें शब्द फूट पड़े :

"चालीस वर्ष पहले ठीक इसी समय मैं बापूसे बातें कर रहा था। वह हमारी पहली मुलाकात थी !"

* * *

और बाबाकी तबकी दो वासनाएँ ?

वे लिखते हैं :

"बंगालके प्रति मेरा भारी आकर्षण था। राममोहन और रवीन्द्रनाथ, रामकृष्ण, विवेकानन्द और अरविन्द—ये थे मेरे मंत्र-देवता जैसे। एक बार बगाल जाऊँगा, यह साध मेरे मनमें थी !

"१९१६ में घर छोडकर ब्रह्मकी खोजमें बाहर निकला। काशी गया। वहाँसे हिमालय जाऊँगा, ऐसी मेरी मुख्य आकाक्षा थी। बगाल घूम आनेकी बात भी मनके अन्तस्तलमें पडी थी। परन्तु दैवयोगसे दोनों साधोंमेंसे एक भी नहीं पुरी। चला गया गाधीजीके पास। वहाँ देखी हिमालयकी शांति और बंगदेशसे उत्सारित क्रान्तिका सगम। और मैंने मन ही मनमें कहा कि मेरी दोनों वासनाएं पूर्ण हो गयी। ब्रह्मकी खोज तो आज भी चल रही है !"[1]

१. 'गीता-प्रवचन', बंगला, प्रस्तावना, पृष्ठ १।

विनोदकी घड़ियोंमें— : ११ :

"कबका मर गया होता मैं, अगर मेरे जीवनमें विनोद न होता।"—बापूकी यह उक्ति विनोबापर भी हूबहू लागू होती है।

बाबाका विनोद अक्सर चलता रहता है। सुबह-शाम, दिन-दोपहर।

उनकी मुस्कराहट, उनका अट्टहास देखते ही बनता है।

जब कभी वे विनोद करते हैं, तो उनकी आंखें हास्यसे भर उठती हैं, चेहरा खिल उठता है और जो भी देखता है, प्रसन्न हुए बिना नही रहता।

शुद्ध, प्रसन्न, मस्ती-भरा विनोद।

*   *   *

गांव आ रहा है। स्वागतार्थी आ रहे हैं। उनके आगे-आगे ढोलवाले है, बाजेवाले हैं।

बाबा बाजेवालेके पास पहुँचते हैं और उसका ढोल खींचकर अपने गलेमें डाल लेते हैं। इतना ही नही, वे ढोल पीटने भी लगते हैं।

*   *   *

एक दिन रास्तेमें स्वागतार्थी भीड जुटी थी गोलाकार। बीचमें कीर्तन चल रहा था।

बाबा पहुँचे और छीन ली पासमें खडे एक व्यक्तिसे लाठी और लाठी लेकर आप विनोदमें लाठीवालेको ही धमकाने लगे।

उसके बाद कीर्तनका प्रसग लेकर उन्होंने छेड दिया, भूदानका प्रसग। ग्रामको परिवार बनानेका प्रसग। मिल जुलकर एक साथ रहनेका प्रसग।

*   *   *

कुजेन्द्रीमें एक दिन कुछ साथियोंने शामको प्रार्थना-सभाके बाद बाबासे

फरमाइश की गानेकी। प्रवचन उस दिन पहले ही हो चुका था। बाबाने बड़ी मस्तीसे शुरू कर दिया शंकराचार्यका 'अच्युताष्टक'।

"अच्युतं केशवं राम नारायणं
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्
श्रीधरं माधवं गोपिका-वल्लभं
जानकी-नायकं रामचन्द्रं भजे।
अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं
देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे।..."

मैंने कहा : "बाबा गा रहे हैं।"

सिद्धराज भाई बोले : "गानेकी कौन कहे, मैंने तो बाबाको मस्त हो; नाचते भी देखा है!"

* * *

रास्ता चलते बाबाका विनोद चलता है।

खाते-पीते बाबाका विनोद चलता है।

अन्तेवासियोंसे बात करते बाबाका विनोद चलता है। बाहरसे मिलनेके लिए आनेवालोंके साथ बाबाका विनोद चलता है।

और तो और, प्रार्थना-प्रवचनतकमें कभी-कभी बाबाका विनोद चलता है। विनोदके सहारे वे अपनी बात ऐसी खूबीसे जनताके हृदयमें बैठा देते हैं कि कुछ न पूछिये।

* * *

१४ सितम्बर '५५।

पद्मपुर : कोरापुट : उड़ीसा।

"क्यों भाई, इस गाँवका नाम क्या है?"

"पद्मपुर।"

"तो पद्मपुरमें 'पद्मभिनूपण' कौन बनेगा?"

क्यों आये ? वडा यज्ञ शुरू है। क्यों ? इसीसे कि हिन्दुस्तानके सभी ग़रीब सुखी हों। सब सुखी होंगे, तो गरीब भी सुखी होंगे, धनी भी सुखी होंगे। परमेश्वरने हर घरमें वच्चे दिये हैं। भूमिवानोंको भी वच्चे दिये हैं, भूमिहीनोंको भी। अमीरोंको भी वच्चे हैं, गरीबोंको भी। भगवान् हर वच्चेको नगा पैदा करता है। ग़रीबका वच्चा भी नगा, अमीरका वच्चा भी नगा। श्रीकृष्णको राजाके घरसे किसानके घर ला रखा। कोई पहचान नही। भगवान् सवको एक ही ढगसे यहाँ भेजता है। ले भी जाता है एक ही ढगसे। अमीर अपनी जागीर लेकर वहाँ नही जा सकता। सव छोडकर जाना पडता है। जैसे आये, वैसे जाना पडेगा। ईश्वरकी माया है।"

और तव वावाने यह कहते हुए कि 'ईश्वरने सवको एक-सी नाक दी है'—एक लडकेकी नाक पकड ली।

"ग़रीवको भी एक नाक। अमीरको भी एक नाक। नाक दी, तो हवा भी दी। चाहे जितनी लो।

"हरएकको पानी चाहिए। भगवान्ने सवको पानी दिया।

"हवाका कोई मालिक है ? पानीका कोई मालिक है ? फिर जमीनका ही कोई मालिक क्यों हो ?

"हवा सवकी, पानी सवका, जमीन सवकी।

"जमीन न खरीदकी चीज है, न विक्रीकी। वह तो सवकी माँ है। सवको उसकी सेवाका अधिकार है। सवको जमीनकी सेवाका अधिकार मिलना चाहिए।"

एक लडकेको खडा करके वावाने पूछा : "क्यों, सवको मिलना चाहिए न ?"

लडका बेचारा यह अप्रत्याशित सवाल सुनकर सकपका गया।

वावा बोले : "पिल्ला (वच्चा) घवरा गया। सोचता होगा, घर-पर वाप न कहीं डाँटे।"

* * *

बाबाने भीड़मेंसे एक आदमीका छाता ले लिया। उसे ऊपर उठाकर पूछा : "कहांसे आया यह ?"

फिर एक आदिवासी भाईके सिरपरसे पत्तोंका बना टोप उतारकर अपने सिरपर लगाते हुए बोले : "पहले हम ऐसा छाता लगाते थे। पर अब तो शहरवाले तुम्हें लूटते हैं—ऐसा छाता देकर !"

एक लड़केकी फटी कमीज़ पकड़कर बाबाने कहा : "हम नहीं चाहते कि कोई ऐसा फटा कपड़ा पहने। पवनारमें हमारे आश्रममें चार सालका लड़का अपने कपड़ेके लिए पूरा सूत कात लेता है। कुजेन्द्री (उड़ीसा) में दस सालके एक लड़केको हमने हाथसे करघेपर बुनते देखा है। तब यह बारह सालका लड़का फटा, मिलका कपड़ा क्यों पहने ? क्यों न हाथसे कातकर, बुनकर हम अपना कपड़ा पहनें ? गांवमें बाहरका कपड़ा आने ही न दें। हम निश्चय कर लें—बाहरका कपड़ा हमारे गांवमें नहीं आयेगा, नहीं आयेगा !!"

और यह कहते-कहते बाबाने उस लड़केकी फटी कमीज़ पूरी-की-पूरी फाड़ दी।

* * *

बाबाको क़मीज़ फाड़ते तो सबने देखा, पर यह बहुत कम लोगोंने देख पाया कि प्रार्थना-सभासे लौटते समय बाबा अपने हाथकी कती-बुनी अपनी चादर उस लड़केको ओढा आये।

कृतकृत्य हो उठा वह बालक !

रमा देवी बोली : "बाबा हमें दे देते अपनी चादर ! हमसे कहते तो हम उस लड़केको खादीकी नयी कमीज बनवा देती।"

मालती देवी बोलीं : "मेरी तो साड़ी फटी है बाबा ! अपनी चादर मुझे ही दे देते !"

सबको उस लड़केके सौभाग्यसे ईर्ष्या हो उठी।

* * *

कुर्नूलसे आये हुए पत्रकारोंने प्रश्न किया : "बाबा Third Person (तृतीय पुरुष) में क्यों बात करते हैं ? प्रथम पुरुषमें क्यों नही ?"

बाबाने जवाब दिया : "तुम्हारा सवाल अच्छा है। बाबा निरहंकार है, इसीसे तृतीय पुरुषमें बात करता है। चतुर्थ पुरुष होता, तो बाबा उसीमें बात करता।"

हँसीसे हम सब लोटपोट हो गये।

*　　　*　　　*

माता जानकी देवी विनोदकी साक्षात् मूर्ति हैं।

बाबाको खूब हँसाती हैं, हम सबको भी।

एक दिन शामको टहलने चली, तो खेतमें जहाँ हम सब गोलाकार बैठ गये, वहाँ उन्होंने अपनी परीक्षाकी बात छेड दी।

उन्होंने बताया कि कैसे प्रथमामें फेल होनेपर, उन्होंने मध्यमाका फार्म भरा और उसमें फेल होनेपर उत्तमाका !

बाबा बोले : "विश्वविद्यालय थीसिस (शोध-पूर्ण निबंध) देनेपर डॉक्टरेटकी उपाधि देते हैं। अब तो तुम्हारी पुस्तक छप ही गयी है। उसे भेज दो 'डॉक्टरेट' के लिए।"

माताजीने अपनी जीवन यात्रा छपा डाली हैं। उसीकी चर्चा करते हुए बाबाने ऐसा कहा। यह वही पुस्तक है, जिसे भेंट करनेपर दादा धर्माधिकारीने कहा था : "इसमें तुमने यह लिखना छोड दिया कि जब मेरी अरथी उठेगी, तो बीच रास्तेमें मैं उठकर देखूंगी कि मेरी शव-यात्रामें कौन-कौन शामिल हैं।"

*　　　*　　　*

और उस दिन एक दाढीवालेसे बाबाका पाला पड गया।

उसे भी दाढी, बाबाको भी दाढी।

उसकी दाढी काली, बाबाकी दाढी सफेद।

लम्बाईमें दोनोंकी दाढियाँ बराबर।

यों तो बाबाकी पार्टीमें कई दाढीवाले रहते हैं, सची भाईने तो अपनी

मूर्ख-मडलीकी अनिवार्य शर्त बना रखी थी—'दाढी !' स्वयं बने वे सेक्रेटरी और गोविन्दनको बना रखा था प्रेसीडेण्ट। कुर्नूलमें जब प्रेसीडेण्ट-की हजामत बन गयी, तो नगीन भाईको उन्होंने यह मजेदार पद सौंपा था। पर भद्राचलम्के इन दाढीवाले भाईने सबको मात दे दी !

आप बोले : "मैंने यह दाढी इसलिए रख छोडी है कि अहिंसा-व्रतके पालनके लिए दाढी रखनी ही चाहिए। बाल मुंडवानेसे हिंसा होती है।"

बाबा : "आप इसे कभी नही कटवाते ?"

दाढीवाला : "कभी नही। माँ मरी थी, तो लोगोंने जबरदस्ती मुझे पकडकर दाढी मुंडवा दी थी। दाढीकी वजहसे कुछ लोग मुझे 'पागल' कहते हैं, कुछ लोग 'मूर्ख', पर कोई कुछ कहे—मैं दाढी रखूँगा जरूर। *दाढ़ी बिना मोक्ष नहीं मिल सकता !"*

बाबा : "मैं तो कभी-कभी दाढी घुटवा लेता हूँ, तब तो मुझे मोक्ष नही मिलेगा ?"

दाढीवाला : "तब तो मुश्किल है। बिना दाढीके मोक्ष कैसा ?"

बाबा मेरी ओर देखकर मुस्कराये। बोले : "तुम तो साहित्यिक हो। सुन रहे हो इस भाईकी बातें ?"

"दाढी बिना मोक्ष नही मिलेगा।" हम सब यह सुनकर देरतक हँसते रहे।

पर, अहिंसाके कारण अन्न छोड़कर फलाहार करनेवाले, मालमता लेकर पत्नीके भाग जानेपर भी उससे कुछ न कहनेवाले इस दाढ़ीवाले भाईकी सब बातोंको हम 'मूर्खता' कहें, तो किसीको भी हमारे मूर्ख होनेमें सदेह न रह जायगा !

* * *

अपने जन्म-दिवस पर बाबाने कहा था कि हमें लगता है कि हम सब अभी बचपनमें ही हैं। हमारी बाल-गोपाल-मडली इकट्ठी है और हमारा यह खेल चल रहा है।

बाबा सचमुच बालक हैं ।

वही मस्ती, वही विनोद, वही खिलखिलाहट ।

वैसी ही उछलकूद, वैसी ही शरारत । कभी पानीमें भीगना, कभी पहाड़ोंपर चढना, कभी नदी-नालोंको झूम-झूमकर पार करना, कभी ढोल बजाना, कभी बांसुरी, कभी गाना, कभी नाचना-कूदना !

यह सब बचपन नही तो क्या है ?

भोलापन, सरलता, निष्कपटता, निर्विकारिता—बच्चोंके सभी गुण बाबामें मौजुद ।

* * *

एक हफ्ते बाद रास्तेमें 'बूढे बच्चों' का प्रसग चल रहा था कि मैंने टोक दिया : "बाबा, जवाहरलाल भी तो बच्चे हैं ।"

बाबा बोले : "ऊहुं, वे बच्चा नही हैं । बाबा बच्चा है । व्यास बच्चा है—नेहरू बच्चा नहीं ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि बापूके बाद उनपर बहुत बोझ पडा । सालभर वे बड़े उदास रहे । तबसे वे बच्चे नही रहे, जवान हैं ।"

मैंने मजूर कर लिया—

साठका विनोबा बच्चा : सडसठका जवाहर जवान !

• • •

और जब बाबा रो पड़ते हैं ! : १२ :

"सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता।
परदुख द्रवइ संत सुपुनीता॥"

तुलसीकी ये चौपाइयाँ बडी सारगर्भित हैं।

सन्तोंका हृदय अत्यन्त कोमल होता है।

उसके द्रवित होते देर नही लगती।

* * *

बाबाने ऐसा ही कोमल हृदय पाया है।

दीन दुखियोंकी वेदना उनका हृदय हिला देती है।

भूदानकी पावन गगा इसीलिए तो बह पड़ी है।

पोचमपल्लीके हरिजनोंका दुःख बाबासे न देखा गया। वे रो पडे। उनका हृदय विगलित हो गया।

और कातर हृदयकी, पवित्र हृदयकी, प्रार्थना स्वीकार होते देर कहाँ लगती है ?

फलतः पोचमपल्लीने भूदानकी गगोत्रीका पवित्र स्थान ग्रहण कर लिया।

* * *

यों, मोह बाबाके पास नहीं फटक पाता।

कोई मरता है, किसीकी मृत्युका सवाद आता है, "दुःखेषु अनुद्विग्न-मना" बाबापर उसका कोई असर नही होता। मरना-जीना सृष्टिका क्रम है। उसपर रोने-धोने, खुश होनेकी बात ही क्या ?

आइन्सटीन मरा तो बाबा बोलेः "तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति।

प्रकृति-माताकी गोदमें खेलनेवाला प्राण उसीकी सत्तापर हलचल करता है। प्राणवायुकी हलचल समाप्त होते ही हम वेवकूफ कहने लगते हैं कि "मनुष्य मर गया।" आज ये लोग कह रहे हैं कि आइन्सटीन मर गया। मूर्ख समझने ही नही कि एक यन्त्र वन्द हो गया, वह मरा नहीं। यन्त्र वन्द होते ही इन्द्रियोंकी शक्ति, ज्ञान-शक्ति काम नही कर सकती। किन्तु आत्मा तो सदा ही जीवित रहता है। वह निराकार रूपमें बहुत काम करता है, लेकिन हम उसे देख नही पाते। सारी दुनियाको चलानेवाली ताकत अव्यक्त होती है। कोई चीज हमारी पहचाननेकी शक्तिसे परे होती है कि हम कह उठते हैं कि सब कुछ खतम हो गया। वीज मिट्टीमें गिर गया, तो बच्चा समझता है कि वह मर गया, पर वह वीज जमीनके भीतर काम करता रहता है। जब अंकुर फूटता है, तब हम समझते हैं कि प्रकट हुआ। लेकिन वह तो पहलेसे ही वहाँ था। अन्दर अन्दर वह इतना विकसित हुआ कि अब हमारी आँखें उसे देख सकती हैं। इसलिए समझना चाहिए कि यन्त्र बन्द हुआ, तो भी यन्त्रीका काम चलता रहता है।"[१]

* * *

समुद्रकी लहर समुद्रमें विलीन हो जाती है, उसका वह क्षणिक रूप मिट जाता है, यही तो मृत्यु है। इसमें शोक करने और सिर पीटनेकी बात ही क्या है।

इस तत्त्व-ज्ञानका मैंने बार-बार मनन करनेकी चेष्टा की है, पर जब किसी प्रिय जनके शरीरान्तका मौका आता है, तो मेरा यह तत्त्व-ज्ञान टिक नहीं पाता। आँखें सहज ही गीली हो जाती हैं। पर मैंने देखा है कि बाबापर मृत्युकी ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं होती।

* * *

मेरे प्रवास-कालमें आचार्य नरेन्द्रदेव गये।

दादा मावलंकर गये।

---

१. कुसुम देशपाण्डे : क्रान्तिकी ओर, पृष्ठ १५७।

दोनों दिन मैंने देखा कि बाबापर कोई असर नहीं हुआ ।

*　　　*　　　*

और 'ऐसे' बाबाको भी मैंने रोते देखा है !

कब ?

तीन प्रसंगोंपर बाबाकी आँखें गीली हो उठती हैं :

माँ,

बापू, और

राम ।

*　　　*　　　*

श्रद्धा, भक्ति, वात्सल्य, सेवा और त्यागकी मूर्ति थी—विनोबाकी माँ ।

जब-जब उनका प्रसंग छिड़ता है, बाबा भाव विभोर हो उठते हैं । उनकी चर्चा करते-करते बाबाकी आँखें गीली हो पड़ती हैं ।

मेरे एक प्रश्नका उत्तर देते हुए एक दिन बोले : "पिता जब किसी कामके लिए माँसे कहते, तो वह मुझसे बुलाकर पूछती : "विन्या, यह काम ठीक है क्या ?" मैं जब उसे 'ठीक' कह देता, तभी वे पिताकी बात मानती ।"

माँने विन्यामें यह जो श्रद्धा रखी थी, वही तो आज फलवती हुई है ।

*　　　*　　　*

द्वारपर खड़ा भिखारी हट्टा-कट्टा है । इसे भीख क्यों दी जाय ? इसे भीख देनेसे व्यसन बढ़ेगा, आलस्य बढ़ेगा । "देशे काले च पात्रे च" वाला गीताका श्लोक भी विनोबा माँको सुना देते हैं ।

माँ कहती है : "जो भिखारी आया, वह परमेश्वर ही है । अब कर पात्रापात्रका विचार । भगवान्‌को क्या अपात्र कहेगा ? पात्रापात्रके विचार करनेका तुझे और मुझे अधिकार ही क्या है ? ज्यादा विचार करनेकी मुझे जरूरत ही नहीं मालूम होती । मेरे लिए वह भगवान् ही है !"

विनोबाके बचपनकी यह बात है । माँके इस जवाबका माकूल जवाब विनोबाको अभीतक नहीं सूझा है ।

और यही कारण है कि बाबा सर्वत्र हरि-दर्शन करते हैं। मांका यह संस्कार बाबाकी रग-रगमें भिद गया है।

*　　　*　　　*

विनोबाने ब्रह्मचर्यकी साधना शुरू की।

मां बोली : "ठीक है बेटा। मनुष्य अगर गृहस्थाश्रम सँभाले, तो मां-बापका उद्धार होता है, पर उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करे, तो ७ पीढियां तर जाती हैं।"

और मांके सभी बेटे आजन्म ब्रह्मचारी बन गये!

*　　　*　　　*

संतोंके भक्ति-भावसे भरे गीत मांको कंठस्थ थे।

जब होता, उन्हें गाती रहती।

और उस फेरमें कभी-कभी दालमें नमक ही न डालती। डालती भी तो दो-दो दफा डाल देती।

विनोबा भी विचारोंकी मस्तीमें खा आते। शिवाजी जब खाने लगते, तब कहीं पता चलता कि आज तो दालमें नमक ही नहीं या इतना नमक है कि दाल खाने लायक नहीं रह गयी!

*　　　*　　　*

एक दिन विनोबाने मांसे पूछा : "मां, अन्वे चाचाकी दाह-क्रिया हुई, पर हमने सूतक नहीं मनाया! ऐसा क्यों?"

मां बोली : "विन्या, वे हमारे परिवारके थोड़े ही थे! वे बड़ी मुसीबतमें थे। उनके परिवारमें कोई था नहीं। मैंने कह दिया, आओ मेरे परिवारमें। तबसे वे यहीं रहते थे।"

परायोंको अपना बना लेनेवाली इस मांका बेटा आज यदि सारे गांवका एक परिवार बना रहा है, तो आश्चर्य क्या!

*　　　*　　　*

पास-पड़ोसमें कोई स्त्री बीमार पड़ती, तो मां दौड़ती उसकी सेवाको। जरूरत पड़ती, तो दूसरोंके घरकी रसोई भी बना आती। एक दिन

विनोबाने कहा : "माँ, बडी स्वार्थी है तू। अपने घरकी रसोई पहले बना लेती है, फिर जाती है पडोसमें बनाने।"

माँ बोली : "विन्या, बडा मूरख है तू। उनकी रसोई पहले बनाने जाऊँ, तो बड़े तडके उन्हें भोजन कर लेना पड़ेगा। इसीसे देरमें बनाती हूँ, जिससे उन्हें समयपर गरम-गरम रसोई मिल जाय।"

पर-दु:ख-कातरताकी कैसी अद्भुत मिसाल !

* * *

एक दिन रास्तेमें दहीकी बात चल पडी।

बाबाको माँका स्मरण हो आया। बोले : "माँ रोज रातको दही जमाती, तो परमेश्वरका नाम लेती। एक दिन मैंने पूछा : 'माँ, इसमें परमेश्वरको घसीटनेकी क्या जरूरत ?' वह बोली : 'विन्या, हम अपनी तरफसे भले ही पूरी तैयारी कर लें, पर दही ठीकसे तो तभी जमेगा, जब भगवान्‌की कृपा होगी। इसीसे भगवान्‌का नाम लेती हूँ।' जेलमें मैं पूरा अहतियात करके दही जमाता था, फिर भी वह कभी-कभी खट्टा हो जाता था !"

ऐसी भक्त माँके स्मरणसे किसके आँसू न भर आयेंगे !

विनोबा भी इसका अपवाद नही।

* * *

और बापू ?

माँने विनोबाको जो संस्कार दिये, बापूने उनका अधिकतम विकास किया।

बापूके आध्यात्मिक पुत्र हैं विनोबा।

महादेव भाईने प्रथम सत्याग्रहीके रूपमें उनकी विशेषताओंकी चर्चा करते हुए ठीक ही लिखा था :

"वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, शायद वैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी और भी होंगे। वे प्रखर विद्वान् हैं, वैसे प्रखर विद्वान् और भी हैं। उन्होंने सादगी वरण की है, उनसे भी अधिक सादगीसे रहनेवाले गांधीजीके अनुयायियोंमें कई हैं।

और यही कारण है कि बाबा सर्वत्र हरि-दर्शन करते हैं। माँका यह संस्कार बाबाकी रग-रगमें भिद गया है।

* * *

विनोबाने ब्रह्मचर्यकी साधना शुरू की।

माँ बोली : "ठीक है बेटा। मनुष्य अगर गृहस्थाश्रम सँभाले, तो माँ-बापका उद्धार होता है, पर उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करे, तो ७ पीढ़ियाँ तर जाती हैं।"

और माँके सभी बेटे आजन्म ब्रह्मचारी बन गये!

* * *

संतोंके भक्ति-भावसे भरे गीत माँको कंठस्थ थे।

जब होता, उन्हें गाती रहती।

और उस फेरमें कभी-कभी दालमें नमक ही न डालती। डालती भी तो दो-दो दफा डाल देती।

विनोबा भी विचारोंकी मस्तीमें खा आते। शिवाजी जब खाने लगते, तब कहीं पता चलता कि आज तो दालमें नमक ही नहीं या इतना नमक है कि दाल खाने लायक नहीं रह गयी!

* * *

एक दिन विनोबाने माँसे पूछा : "माँ, अन्वे चाचाकी दाह-क्रिया हुई, पर हमने सूतक नहीं मनाया। ऐसा क्यों?"

माँ बोली : "विन्या, वे हमारे परिवारके थोड़े ही थे! वे बड़ी मुसीबतमें थे। उनके परिवारमें कोई था नहीं। मैंने कह दिया, आओ मेरे परिवारमें। तबसे वे यहीं रहते थे।"

परायोंको अपना बना लेनेवाली इस माँका बेटा आज यदि सारे गाँव-का एक परिवार बना रहा है, तो आश्चर्य क्या!

* * *

पास-पड़ोसमें कोई स्त्री बीमार पड़ती, तो माँ दौड़ती उसकी सेवाको।

जरूरत पड़ती, तो दूसरोंके घरकी रसोई भी बना आती। एक दिन

विनोबाने कहा : "माँ, बडी स्वार्थी है तू। अपने घरकी रसोई पहले बना लेती है, फिर जाती है पडोसमें बनाने।"

माँ बोली : "विन्या, बडा मूरख है तू। उनकी रसोई पहले बनाने जाऊँ, तो बड़े तडके उन्हें भोजन कर लेना पड़ेगा। इसीसे देरमें बनाती हूँ, जिससे उन्हें समयपर गरम-गरम रसोई मिल जाय।"

पर-दुःख-कातरताकी कैसी अद्भुत मिसाल !

* * *

एक दिन रास्तेमें दहीकी बात चल पडी।

बाबाको माँका स्मरण हो आया। बोले : "माँ रोज़ रातको दही जमाती, तो परमेश्वरका नाम लेती। एक दिन मैंने पूछा : 'माँ, इसमें परमेश्वरको घसीटनेकी क्या जरूरत ?' वह बोली : 'विन्या, हम अपनी तरफसे भले ही पूरी तैयारी कर लें, पर दही ठीकसे तो तभी जमेगा, जब भगवान्‌की कृपा होगी। इसीसे भगवान्‌का नाम लेती हूँ।' जेलमें मैं पूरा अहतियात करके दही जमाता था, फिर भी वह कभी-कभी खट्टा हो जाता था !"

ऐसी भक्त माँके स्मरणसे किसके आँसू न भर आयेंगे ?

विनोबा भी इसका अपवाद नही।

* * *

और बापू ?

माँने विनोबाको जो सस्कार दिये, बापूने उनका अधिकतम विकास किया।

बापूके आध्यात्मिक पुत्र हैं विनोबा।

महादेव भाईने प्रथम सत्याग्रहीके रूपमें उनकी विशेषताओंकी चर्चा करते हुए ठीक ही लिखा था :

"वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, शायद वैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी और भी होंगे। वे प्रखर विद्वान् हैं, वैसे प्रखर विद्वान् और भी हैं। उन्होंने सादगी वरण की है, उनसे भी अधिक सादगीसे रहनेवाले गाधीजीके अनुयायियोंमें कई हैं।

वे रचनात्मक कार्यके महान् पुरस्कर्ता और दिन-रात उसीमें लगे रहनेवाले व्यक्ति हैं।

ऐसे भी कुछ गांधीमार्गानुयायी हैं।

उनकी जैसी तेजस्वी बुद्धि-शक्तिवाले भी कई हैं।

परन्तु—

उनमें कुछ और भी चीजें हैं, जो और किसीमें नहीं हैं—

एक निश्चय किया, एक तत्त्व गहण किया, तो उसका उसी क्षणसे अमल करना—उनका प्रथम पंक्तिका गुण है।

उनका दूसरा गुण निरन्तर विकास-शीलताका है। शायद ही हममेंसे ऐसा कोई हो, जो कह सके कि मैं प्रतिक्षण विकास कर रहा हूँ। बापूको छोडकर यदि और किसीमें यह गुण मैंने देखा है, तो विनोबामें।

बापूके कई बडे अनुयायी ऐसे हैं, जिनका जनतापर भारी प्रभाव पडता है, पर बापूके शायद ही किसी अनुयायीने सत्य-अहिंसाके पुजारी और कार्यरत सच्चे सेवक उतने पैदा किये हों, जितने कि विनोबाने पैदा किये हैं।

"*योगः कर्मसु कौशलम्*" के अर्थमें विनोबा सच्चे योगी हैं। उनके विचार, वाणी और आचारमें जैसा एकराग है, वैसा एकराग बहुत कम लोगोंमें होगा। इसलिए उनका जीवन एक मधुर संगीतमय है।"

* * *

और इस मधुर संगीतमय जीवनवाले बाबा जब-जब बापूकी याद करते हैं, रो पडते हैं।

बापू उनके जीवनके आदर्श, उनकी साधनाके लक्ष्य और उनके परम पवित्र मार्गदर्शक थे। इसीसे जब-जब बापूकी जयन्ती आती है, उनका निर्वाण-दिवस आता है, उनका श्राद्ध-दिवस आता है, अथवा यों ही उनका स्मरण हो आता है, उनका यह पुजारी द्रवित हो उठता है। उसका गला भर आता है, आँखें भर आती हैं और वाणी कुण्ठित हो जाती है।

* * *

२४ मार्च १९५६।

भदोनीमें बाबा व्यापारियोंका आवाहन कर रहे थे।

बाबा कहने लगे :

"हे व्यापारियो, आओ। तुममें धर्मनिष्ठा है। शास्त्रकारोंने तुममें विश्वास और निष्ठा रखी है। जो गुण तुम्हें हासिल हैं, उनका उपयोग करके दुनियाको बचाओ। तुम प्रजाके सेवक बनो और सेवकके नाते लोगोंमें जाओ और अपनेको सेवामें खपाओ।"

इतना कहते-कहते बाबाको बापूकी याद आ गयी। वे बोले :

"ऐसा ही एक वैश्य हिन्दुस्तानमें हो गया है। आज करोड़ों लोग उसका नाम लेते हैं। वह शुरूसे आखिरतक यह नहीं भूला था कि वह 'वैश्य' है। कौन नहीं जानता कि महात्मा गांधीने हिन्दुस्तानके लिए करुणाके क्या-क्या कार्य किये। हम कह नहीं सकते कि वे कौन थे? वे ब्राह्मणके समान पवित्र थे, क्षत्रियके समान निर्भय थे, वैश्यके समान करुणामय थे, शूद्रके समान सेवामय थे। मेरे प्यारे भाइयो, इतना सारा होते हुए भी, वे सबसे अधिक कुछ थे, तो 'बनिया' थे। उन्होंने गोरक्षाका काम किया, खादीको प्रतिष्ठा दी, ग्रामोद्योगोंको बढ़ावा दिया, चमड़ेका उद्योग शुरू किया। सारे काम बहुत ही कुशल बुद्धिसे देशवासियोंके लिए किये और कराये। हिन्दुस्तानमें ऐसा कौन है, दुनियामें ऐसा कौन है, जो कहे कि महात्मा गांधीसे बढ़कर शख्स हममें कोई है? उनके भी नामसे हम आवाहन करते हैं कि व्यापारियो, सामने आओ। देश और दुनियाको बचाओ।......"

कहते-कहते बाबाकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपकने लगे। वाणी रुँध गयी। ५ मिनटतक शांत रहनेके बाद आँसू पोंछकर बाबा आगे बढ़े।

* * *

राम !

राम बापूके प्राणाधार थे।

विनोबाके भी वे प्राणाधार हैं।

रामका प्रसंग आया कि बाबाकी आँखें गंगा-जमुना बनीं।

राम-चर्चा बाबाको सबसे प्रिय है। एक दिन तीसरे पहर बालभाईने पत्र-व्यवहारकी फाइल बाबाके सामने ला रखी, तो बाबा बोले :

"पत्रोंका जवाब देना मुझे बडा भार लगता है। रामकी चर्चा, सर्वोदयकी चर्चा ही मुझे प्रिय है। और कुछ नही।"

* * *

फरवरी २२, १९५६।

मैदानमें झोपडियाँ डालकर हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था की गयी थी। एक ओर हटकर ऊँचे चबूतरेपर प्रार्थनाके लिए बाबाके बैठनेका आयोजन था। सामने मैदानमें सभा।

सायकालीन प्रार्थनाके उपरान्त बाबा बोलनेको हुए, तो सामने टँगे कपडेपर उनकी नजर पडी।

मोटे अक्षरोंमें तेलुगुमें लिखा था—

"राम राज्यम् स्थापिन चडि !"

अर्थात्

'राम-राज्यकी स्थापना कीजिये।'

और यह वाक्य ही उस दिनके प्रवचनका सूत्र बन गया।

* * *

बाबा बोले :

"कौन करेगा रामराज्यकी स्थापना ? रामराज्य तो राम ही लायेगा। राम कहाँ रहता है ? एक राजा राम हो गया, जो अयोध्यामें रहता था। पुराने जमानेकी बात है। उस रामने रावणके जुल्मसे प्रजाको मुक्त किया। उस रामायणकी पुरानी कथा सब लोग जानते हैं। लेकिन उस रामका तो प्रयाण हो चुका है। इस समय राम-राज्यकी स्थापना करनेवाला राम कहाँ है ? लोग कहते हैं कि राम कोई बाहरका पुरुष है, जो कभी अवतार लेगा और सबका उद्धार करेगा। यह भावना गलत है। रामचन्द्र हमारे हृदयमें रामके रूपमें मौजूद हैं। वह आत्मशक्ति जबतक नहीं जगेगी, तबतक राम-राज्यकी स्थापना नहीं होगी।

"हमारे हृदयमें अनेक वासनाएँ भरी हैं। काम, क्रोध, मत्सर, लोभ आदि दुर्गुण हमारे हृदयमें हैं। हम एक-दूसरेसे द्वेप करते हैं। हममें अनेक बुरी आदतें हैं। ये सब जबतक हमारे हृदयमें हैं, तबतक राम-राज्यकी स्थापना नही हो सकती। उसके लिए हृदय शुद्ध होना चाहिए। और इसमें कोई शक नही कि जबतक राम-राज्यकी स्थापना नही होगी, तबतक दुनियाके दुख नही मिटेंगे। पहले तो हमारे हर-एकके हृदयमें राम-राज्य स्थापित होना चाहिए। फिर हमारे गांवमें, हमारे देशमें, स्थापित होना चाहिए। और जब सारी दुनियामें रामराज्य स्थापित होगा, तब दुनियामें रामायण प्रकट होगी।"

* * *

रामराज्यमें क्या होगा, इसकी चर्चा करते हुए बाबा बोले :
"*बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।*
कोई किसीका बैर नही करता और कही विषमता नही रहती। कोई ऊँच नही, कोई नीच नही। परस्पर प्रेम और समता, यही रामराज्यका लक्षण है। रामराज्य याने प्रेमराज्य, समताका राज्य। रामराज्य याने साम्यराज्य।"

भूदानकी चर्चा करते हुए बाबा बोले :

"अभी हमने भूदान-यज्ञ का काम चलाया है। पांच सालसे हम पैदल घूम रहे हैं। पांच लाख लोगोंसे चालीस लाख एकड़ जमीन मिल चुकी है। लोग पूछते हैं कि हिन्दुस्तानकी समस्या तो बहुत बडी है और आपका काम बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। आप कोई ऐसी युक्ति खोज निकालिये, ताकि काम जल्दी पूरा हो जाय। जमीन मांगनेकी जगह छीनी जाय और बांटी जाय, तो काम जल्दी पूरा हो जायगा। तो हम समझाते हैं कि जल्दसे जल्द कोई काम करना है, तो उसका अर्थ यह नही है कि प्रेमकी राह छोडकर किया जाय। प्रेमके मार्गसे भी जोरोंसे काम किया जा सकता है। यह तो देशका काम है। सारे देशके

राम-चर्चा बाबाको सबसे प्रिय है। एक दिन तीसरे पहर बालभाईने पत्र-व्यवहारकी फाइल बाबाके सामने ला रखी, तो बाबा बोले :

"पत्रोंका जवाब देना मुझे बड़ा भार लगता है। रामकी चर्चा, सर्वोदयकी चर्चा ही मुझे प्रिय है। और कुछ नहीं।"

* * *

फरवरी २२, १९५६।

मैदानमें झोपड़ियाँ डालकर हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था की गयी थी। एक ओर हटकर ऊँचे चबूतरेपर प्रार्थनाके लिए बाबाके बैठनेका आयोजन था। सामने मैदानमें सभा।

सायंकालीन प्रार्थनाके उपरान्त बाबा बोलनेको हुए, तो सामने टँगे कपड़ेपर उनकी नज़र पड़ी।

मोटे अक्षरोंमें तेलुगुमें लिखा था—

"राम राज्यम् स्थापिन चडि!"

अर्थात्

'राम-राज्यकी स्थापना कीजिये।'

और यह वाक्य ही उस दिनके प्रवचनका सूत्र बन गया।

* * *

बाबा बोले :

"कौन करेगा रामराज्यकी स्थापना? रामराज्य तो राम ही लायेगा। राम कहाँ रहता है? एक राजा राम हो गया, जो अयोध्यामें रहता था। पुराने ज़मानेकी बात है। उस रामने रावणके जुल्मसे प्रजाको मुक्त किया। उस रामायणकी पुरानी कथा सब लोग जानते हैं। लेकिन उस रामका तो प्रयाण हो चुका है। इस समय राम-राज्यकी स्थापना करनेवाला राम कहाँ है? लोग कहते हैं कि राम कोई बाहरका पुरुष है, जो कभी अवतार लेगा और सबका उद्धार करेगा। यह भावना ग़लत है। रामचन्द्र हमारे हृदयमें रामके रूपमें मौजूद हैं। वह आत्मशक्ति जबतक नहीं जगेगी, तबतक राम-राज्यकी स्थापना नहीं होगी।

"हमारे हृदयमें अनेक वासनाएँ भरी हैं। काम, क्रोध, मत्सर, लोभ आदि दुर्गुण हमारे हृदयमें हैं। हम एक-दूसरेसे द्वेष करते हैं। हममें अनेक बुरी आदतें हैं। ये सब जबतक हमारे हृदयमें हैं, तबतक राम-राज्यकी स्थापना नही हो सकती। उसके लिए हृदय शुद्ध होना चाहिए। और इसमें कोई शक नही कि जबतक राम-राज्यकी स्थापना नही होगी, तबतक दुनियाके दु:ख नही मिटेंगे। पहले तो हमारे हर-एकके हृदयमें राम-राज्य स्थापित होना चाहिए। फिर हमारे गाँवमें, हमारे देशमें, स्थापित होना चाहिए। और जब सारी दुनियामें रामराज्य स्थापित होगा, तब दुनियामें रामायण प्रकट होगी।"

*　　　*　　　*

रामराज्यमें क्या होगा, इसकी चर्चा करते हुए बाबा बोले :

"*बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।*

कोई किसीका वैर नही करता और कही विषमता नही रहती। कोई ऊँच नही, कोई नीच नही। परस्पर प्रेम और समता, यही रामराज्यका लक्षण है। रामराज्य याने प्रेमराज्य, समताका राज्य। रामराज्य याने साम्यराज्य।"

भूदानकी चर्चा करते हुए बाबा बोले .

"अभी हमने भूदान-यज्ञ का काम चलाया है। पांच सालसे हम पैदल घूम रहे हैं। पांच लाख लोगोंने चालीस लाख एकड़ ज़मीन मिल चुकी है। लोग पूछते हैं कि हिन्दुस्तानकी समस्या तो बहुत बड़ी है और आपका काम बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। आप कोई ऐसी युक्ति खोज निकालिये, ताकि काम जल्दी पूरा हो जाय। ज़मीन मांगनेकी जगह छीनी जाय और बांटी जाय, तो काम जल्दी पूरा हो जायगा। तो हम समझाते हैं कि जल्दसे जल्द कोई काम करना है, तो उसका अर्थ यह नही है कि प्रेमकी राह छोड़कर किया जाय। प्रेमके मार्गसे भी जोरोंसे काम किया जा सकता है। यह तो देशका काम है। सारे देशके

लोग इस काममें एक धुनसे लग जायें, तो जल्दी काम पूरा हो जायगा ।

"हमें रामराज्य लाना है । रामराज्य उसी रास्तेसे आयेगा, जिस रास्तेसे हम चल रहे हैं। रामराज्यका अर्थ है, गरीबका राज्य, सबका राज्य। सब लोग रामके सेवक हो जायेंगे। मालिक केवल राम रहेगा। आज तो पचासों मालिक बने बैठे हैं। जहा हककी बात हो रही है, वहाँ रामराज्य कैसे आयेगा? राजा राम अपनेको प्रजाका सेवक मानते थे। रामकी सभामें, सुलतानकी सभाकी तरह, बादशाह ऊँचे तख्तपर और प्रजा नीचे सिर झुकाकर सलाम कर रही है, ऐसा नही था। तुलसीदासने कहा है :

"प्रभु तरुतर कपि डारपर ।
ते किये आपु समान ॥"

"राम बैठे है पेटके नीचे और उनके सेवक बन्दर बैठे हैं पेडपर। यह है राम-राज्य । जहां अत्यन्त नम्रता है, जो सबका परम नम्र सेवक है, वहां रामराज्य है। रामचन्द्रने ऐसे मूर्खोको अपनी पदवी दी, जो कि इज्जत करना भी नही जानते थे। जिस राज्यमें बडे लोग अपनेको सेवक और पदधूलि समझते हैं, वह है रामराज्य । ऐसा नम्र हमें बनना है। रामराज्य बनाओ याने नम्र बनो, सेवक बनो, सबको स्वामी समझो। प्रेमसे लोगोंके वास्ते त्याग करना सीखो।"

* * *

और यह सब समझानेके बाद भरे गलेसे बाबाने कहा . "लोग हमसे पूछते हैं बाबा, ५ साल तो घूमे, अब कहांतक घूमते रहोगे? हम पूछते हैं कि हमारे स्वामी राजा राम चौदह-चौदह साल जगलमें घूमे थे, हमारी क्या क़ीमत है?"

इतना कहते-कहते बाबा रो पडे।

पांच मिनट शान्त रहकर बाबाने कहा: "हम आपसे कहना चाहते हैं कि हमें कोई थकान नहीं हुई है। जब लोगोंकी सेवा करनेके लिए भगवान्

रामने इतनी तकलीफ उठायी, तो हमारी क्या बिसात है ? हम तो समझते हैं कि हमने जितना काम किया, उससे बहुत ज्यादा फल भगवान्‌ने हमको दिया है। लोगोंको हम भूदानकी बात समझाते हैं, तो लोग हमारी बात मजूर करते हैं। हमारे पास कोई सत्ता नही है कि लोगोंको हमारी बात समझना लाजिमी हो जाय। हमारे मनमें लेश-मात्र भी सदेह नही है कि राम-राज्य लानेका कोई रास्ता है, तो भूदान ही है। जो व्यक्ति अपनी सेवा इस काममें लगायेगा, उसपर राम प्रभुकी कृपा होगी, इसमें हमें कोई शक नही है।"

* * *

अडोनीकी, एक दिन प्रातः-प्रस्थानसे पूर्वकी, बात है।

५ के पहले ही बाबाके कमरेमें कई भाई आ बैठे थे।

पवनारके भी एक-दो भाई थे।

बाबा उन्हीसे बातें कर रहे थे।

प्रसग छिड गया नेताओंके बेटोंका।

बाबा बोले : "सभी तो आज पैसेकी ओर दौड रहे हैं। डिग्रियोंकी ओर दौड़ रहे हैं। विदेश जा रहे हैं।"

एक नेताके परिवारकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा : "दो-एक व्यक्तियोंको छोडकर उस परिवारके बाकी सभी तो पैसेके पीछे पडे हैं। परन्तु इससे क्या ? न आयें वे इधर, न लगें वे देश-सेवामें; बाहरके तो कितने ही बी० ए०, एम० ए० बडी श्रद्धासे इसे पुण्यकार्य मानकर इधर आ रहे हैं। हमें तो उनके भीतरका ही भाव देखना है।"

और तब वे सुना गये रामकृष्ण परमहंसका एक दृष्टान्त—

एक साधु था।

वह जहाँ धूनी रमा रहा था, ठीक उसीके सामने एक वेश्याका कोठा था।

साधुने एक दिन वेश्याको बुलाकर बड़ी भर्त्सना की उसकी। बेचारी बड़ी दुःखी हुई। पर, पेटकी समस्या थी !

लोग इस काममें एक धुनसे लग जायें, तो जल्दी काम पूरा हो जायगा ।

"हमें रामराज्य लाना है। रामराज्य उसी रास्तेसे आयेगा, जिस रास्तेसे हम चल रहे हैं। रामराज्यका अर्थ है, ग़रीबका राज्य, सबका राज्य। सब लोग रामके सेवक हो जायेंगे। मालिक केवल राम रहेगा। आज तो पचासों मालिक बने बैठे हैं। जहां हककी बात हो रही है, वहां रामराज्य कैसे आयेगा? राजा राम अपनेको प्रजाका सेवक मानते थे। रामकी सभामें, सुलतानकी सभाकी तरह, बादशाह ऊँचे तख्तपर और प्रजा नीचे सिर झुकाकर सलाम कर रही है, ऐसा नहीं था। तुलसीदासने कहा है :

"प्रभु तरुतर कपि डारपर।
ते किये आपु समान ॥"

"राम बैठे हैं पेडके नीचे और उनके सेवक बन्दर बैठे हैं पेडपर। यह है राम-राज्य। जहां अत्यन्त नम्रता है, जो सबका परम नम्र सेवक है, वहां रामराज्य है। रामचन्द्रने ऐसे मूर्खोंको अपनी पदवी दी, जो कि इज्ज़त करना भी नहीं जानते थे। जिस राज्यमें बड़े लोग अपनेको सेवक और पदधूलि समझते हैं, वह है रामराज्य। ऐसा नम्र हमें बनना है। रामराज्य बनाओ याने नम्र बनो, सेवक बनो, सबको स्वामी समझो। प्रेमसे लोगोंके वास्ते त्याग करना सीखो।"

* * *

और यह सब समझानेके बाद भरे गलेसे बाबाने कहा : "लोग हमसे पूछते हैं बाबा, ५ साल तो घूमे, अब कहांतक घूमते रहोगे? हम पूछते हैं कि हमारे स्वामी राजा राम चौदह-चौदह साल जंगलमें घूमे थे, हमारी क्या क़ीमत है?"

इतना कहते-कहते बाबा रो पड़े।

पांच मिनट शान्त रहकर बाबाने कहा : "हम आपसे कहना चाहते हैं कि हमें कोई थकान नहीं हुई है। जब लोगोंकी सेवा करनेके लिए भगवान्

रामने इतनी तकलीफ उठायी, तो हमारी क्या बिसात है ? हम तो समझते हैं कि हमने जितना काम किया, उससे बहुत ज्यादा फल भगवान्‌ने हमको दिया है। लोगोंको हम भूदानकी बात समझाते हैं, तो लोग हमारी बात मजूर करते हैं। हमारे पास कोई सत्ता नही है कि लोगोंको हमारी बात समझना लाजिमी हो जाय। हमारे मनमें लेश-मात्र भी सदेह नही है कि राम-राज्य लानेका कोई रास्ता है, तो भूदान ही है। जो व्यक्ति अपनी सेवा इस काममें लगायेगा, उसपर राम प्रभुकी कृपा होगी, इसमें हमें कोई शक नही है।"

* * *

अडोनीकी, एक दिन प्रातः-प्रस्थानसे पूर्वकी, बात है।

५ के पहले ही बाबाके कमरेमें कई भाई आ बैठे थे।

पवनारके भी एक-दो भाई थे।

बाबा उन्हींसे बातें कर रहे थे।

प्रसग छिड़ गया नेताओंके बेटोंका।

बाबा बोले : "सभी तो आज पैसेकी ओर दौड़ रहे हैं। डिग्रियोंकी ओर दौड रहे हैं। विदेश जा रहे हैं।"

एक नेताके परिवारकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा : "दो-एक व्यक्तियोंको छोड़कर उस परिवारके बाकी सभी तो पैसेके पीछे पडे हैं। परन्तु इससे क्या ? न आयें वे इधर, न लगें वे देश-सेवामें, बाहरके तो कितने ही बी० ए०, एम० ए० बड़ी श्रद्धासे इसे पुण्यकार्य मानकर इधर आ रहे हैं। हमें तो उनके भीतरका ही भाव देखना है।"

और तब वे सुना गये रामकृष्ण परमहंसका एक दृष्टान्त—

एक साधु था।

वह जहां धूनी रमा रहा था, ठीक उसीके सामने एक वेश्याका कोठा था।

साधुने एक दिन वेश्याको बुलाकर बड़ी भर्त्सना की उसकी। बेचारी बड़ी दुःखी हुई। पर, पेटकी समस्या थी !

साधुने देखा कि वह उनकी सुन नही रही है, तो जब कोई आदमी उसके कोठेपर चढता, वे एक ककड उठाकर अलग रख देते।

थोड़े दिनोंमें कंकडोंका एक ऊँचा पहाड लग गया वहाँ।

साधुने वेश्याको बुलाकर कहा : "देखती है यह ककडोंका ढेर। यह तेरे पापोंका ढेर है।"

वेश्या कांप उठी बुरी तरह !

कोठेपर जाकर लगी पश्चात्ताप करने : "हे राम ! क्या गति होगी मेरी !"

और यह सुनाते-सुनाते बाबाकी आँखोंसे टप-टप आंसू गिरने लगे !

कुछ देरमें शात होकर बाबाने कहानी पूरी की—

सयोगसे एक ही दिन वेश्याके प्राण छूटे और साधुके भी।

वेश्याको लेने आये देवदूत !

साधुको लेने आये यमदूत !

साधु चौंके, तो यमदूत बोले : "इसमें चौंकनेकी बात ही क्या है ? तूने शरीरसे पाप नहीं किया, इसलिए नीचे देख। कितने आदरसे लोग तेरे शरीरकी पूजा कर रहे हैं, पर मन तो तेरा पापी था ! तू रात-दिन पाप-चिन्तन करता था। तो चल, अब नरकमें पापोंका मजा चख। और यह वेश्या ! यह बेचारी शरीरसे पाप करनेको विवश थी। वह देख, उसकी देह चील-कौए नोच-नोचकर खा रहे हैं। पर, मनसे वह निष्पाप थी। पश्चात्तापके आँसुओंसे, रामका नाम लेकर, उसने अपने पाप धो डाले थे। इसलिए वह आज स्वर्ग जा रही है !"

सचमुच अतरका यह भाव ही तो सब कुछ है।

तभी तो हम अनरतरसे प्रार्थना करते हैं

"अतर मम विकसित करो
अतरतर हे ! .... "

* * *

और उस दिन ?

मार्च १६५६ की साधु वास्वानीकी 'Mira : East And West' (मीरा : ईस्ट एण्ड वेस्ट) उसी दिनकी डाकसे आयी थी।

शामको सातके लगभग बाबाके निकट बैठा मैं उसीको उलट-पलट रहा था। शाश्वत कथाओंमें 'प्रेमकी विजय' की एक कहानी पढ़ रहा था।

ग्यारह सालके केंटुकीके एक लडकेकी बड़ी मार्मिक कथा थी उसमें।

वह बीमार था। ऐसा बीमार कि डाक्टरोंने जवाब दे दिया।

निराश, हताश, दुःखी बालकने एक सार्वजनिक अपील की "क्या कोई सहानुभूतिकी दो पक्तियाँ मुझे लिख भेजेगा ?" और सारी दुनियाँसे उसे प्रोत्साहन भरे तीन लाख पत्र मिले !

असख्य उपहार भी !

प्रेमके इस जादूने उस मरते हुए बच्चेको बचा लिया।

जी उठा वह बालक ! प्रेमकी अद्भुत शक्तिने उसमें नव-जीवनका सचार कर दिया।

कीमतीसे कीमती दवाएँ जो काम न कर सकी, प्रेम और उत्साह-भरे इन पत्रोंने वही कर दिखाया।

* * *

"कैसी प्रेरक कहानी है यह !"—कहते हुए मैंने मीरा व्यासकी ओर यह कथा बढ़ायी ही थी कि बाबाने तुलसी रामायणकी माँग की। जयदेव भाईने रामायण निकालकर बाबाको दी कि हम सब लोग बाबाके और निकट जा पहुँचे।

उत्तर-काण्ड निकालकर बाबाने शुरू किया :

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुन्दर उपवन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये ॥
जानि समय सनकादिक आये। तेज पुञ्ज गुन सील सुहाये ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन यह तिन्हही। रघुपति चरित होई तहँ सुनहीं ॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनिबर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिबर बहु बरनी। ग्यान जोनि पावक जिमि अरनी ॥

देखि राम मुनि आवत, हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥

कीन्ह दण्डवत तीनिउँ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भये मगन मन सके न रोकी ॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मंदिर भवमोचन ॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं ॥
तिन्हकै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे ॥
आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा ॥
बडे भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा ॥

संत संग अपबर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥

अत्यन्त मीठे स्वरमें गाते हुए इस मधुर और पावन प्रसंगकी अद्भुत व्याख्या की बाबाने।

एक-एक पंक्तिने रस-सागर उमड़ पड़ा।

और जब "तिन्हके दसा देखि रघुवीरा । स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥" पर बाबा पहुँचे तो स्वय उनकी वही दशा हो गयी !

राम-कथाका पारखी तुलसीके रसमें शराबोर हो गया !
वाणी रुँधी है । शरीर पुलकित है । आँखें बह रही हैं !
मन गद्‌गद हैं !

* * *

और मैं देख रहा हूं कि तुलसी बाबा मेरे मानस-पटपर आकर गुनगुना रहे हैं, भक्तके लक्षण—

"मम गुन गावत पुलक सरीरा ।
गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥"

o o o

कार्यकर्ताओंके बीच : १३ :

'क्यों माशी ? यह क्या ? हमारे बच्चे बीमार क्यों हैं ? बशी बीमार है। औरोंका भी गला बैठा है ! ऐसा क्यों ?'—उस दिन शामको मगला माशीसे बाबाने पूछा।

कोरापुटके प्रवास-कालमें मगला माशीको कार्यकर्ताओंकी सुख-सुविधाओंका पूरा ख्याल रहता था, फिर भी पहाड़ी प्रदेश, जगली रास्ता, अ-पौष्टिक भोजन, बरसातके दिन, मलेरियाका प्रकोप—बेचारी माशी भी कहाँ तक रोगसे सबको बचा पाती ?

'क्या करूँ बाबा, इतना ख्याल रखती हूँ, फिर भी कोई-न-कोई बीमार पड ही जाता है !'

बाबा बोले—'सो तो है ही। प्रवासमें दो-चार साल रहनेपर भी यदि कोई बीमार न पड़े तो उसे योगी मानना चाहिए।'

* * *

कोरापुटके ये कार्यकर्ता !

त्याग, सेवा और नम्रताके प्रतीक।

त्याग और सेवाकी इस होडमें 'अप्पामाने' (बहनें) भी भाइयोंसे किसी क़दर पीछे नहीं।

गगन-चुम्बी पर्वत, वन्य-पशुओंसे सकुल वन, वनराजका गम्भीर गर्जन, हहर-हहर करनेवाले प्रपात—पल भरके लिए भी इन बहनोंको भयभीत नहीं करते। वे निर्भयतापूर्वक आदिवासी भाइयोंके बीच सेवाकार्यमें लगी मानों सारे ससारको चुनौती देती हैं कि हमें कोई 'अबला' कह तो जाय !

* * *

बाबा इन कार्यकर्ताओंपर जी-जानसे न्यौछावर रहते हैं।

एक दिन प्रातः-भ्रमणमें सुरेश भाईने एक प्रसिद्ध साहित्यिककी यह उक्ति बाबाको सुनायी—"गांधीके साथ कोई पाच मिनट भी रहे तो वे तुरत उसके खान-पान, निवास, स्वास्थ्य आदिकी पूरी जानकारी लेकर उपयुक्त व्यवस्था कर देते हैं, पर विनोवाके साथ कोई सात दिन-तक बुखारमें पड़ा रहे तो भी उन्हें पता नहीं चलता!"

बाबा हँसकर बोले—'यह तो बड़ा बढ़िया परिचय है। यह जरूर है कि पहले मैं बड़ा प्रखर था, अब कुछ बदला हूँ।'

पर जाननेवाले जानते हैं कि इस बारेमें आज तो बाबा बिलकुल बदल गये हैं।

कोई भी कार्यकर्ता, कोई भी अन्तेवासी अस्वस्थ होजाय तो बाबा उसके लिए अत्यधिक चिन्तित हो उठते हैं और जो भी सम्भव होता है, उपाय करते हैं।

* * *

कार्यकर्ता, भूदानका कार्यकर्ता कैसा हो, उसका जीवन कैसा हो, उससे क्या-क्या अपेक्षाएँ हैं, इसका विवेचन करते हुए एक दिन बाबाने बताया :

आम तौरपर कार्यकर्तासे अपेक्षा है कि बीमारीकी हालतको अपवाद-रूप छोड़कर सालमें ३०० दिन वह कार्यरत रहे। जहांतक हो, उसे सतत घूमते रहना चाहिए और एक दिनमें दो देहात लेने चाहिए। इस तरह एक कार्यकर्ता हर माह ५० गांव बखूबी सम्हाल सकेगा।

उसकी दिनचर्या ऐसी रहे कि कमसे कम आठ घण्टे सार्वजनिक सेवामें बिताये, आठ घण्टेका समय निद्रा तथा आरामका मान ले, दो घण्टे शरीर-श्रम करे और दो घण्टे उसे अध्ययन तथा चिन्तन, मनन, उपासनामें बिताने चाहिए। बचे हुए चार घण्टे अपने निजी या पारिवारिक कामके लिए वह रखे।

हफ्तेका एक दिन और हो सके तो सालमें एक पक्ष, उसे एकान्तमें

रहकर पिछली बातोंका सिंहावलोकन, अपना आत्म-परीक्षण और आगेकी पूर्व-तैयारीके लिए चिन्तनमें बिताना चाहिए।

कार्यकर्ताको अपना कार्य, ध्येय, उसके सिद्धान्त, उसका तन्त्र, नियमावली आदिकी पूरी जानकारी हो। उसकी दृष्टि सही हो। उसमें जनताकी शंकाओंका समाधान करनेकी क्षमता हो। वह नित्य अपनी डायरी लिखे और सप्ताहमें अपने कार्यका संक्षिप्त विवरण तैयार करे।

कार्यकर्ता सोच ले कि वह जनताका सेवक है और उस लिहाजसे उसका जीवन सादगी लिये हुए हो। उसका आहार सात्त्विक और संतुलित हो। स्वास्थ्यके नियम और प्रथमोपचारकी उसे जानकारी हो। आहार ग्रामोद्योगी हो तो अच्छा। साधारणतः दो बार खानेके बीच उदर पर भार न डाला जाय। जरूरत हो तभी बीचमें पेय रूपमें गायका दूध या फल ले सकता है।

कार्यकर्ता सामूहिक प्रार्थना, कताई और सफाईके कार्यक्रम नियमित रूपसे चलाये। हो सके तो शरीर-श्रम भी वह आम जनताके साथ करे।

उसे अध्ययनका अवश्य ख्याल रखना चाहिए। उसके झोलेमें भूदान साहित्यका एक सेट तो होही, उसके अतिरिक्त प्रार्थना पुस्तक, गीता, गीता-प्रवचन, सर्वोदय आदि भी रहे।

सूर्योदयसे पूर्व ब्राह्ममुहूर्तमें ४ से ५ तक उसे उठ जाना चाहिए, जिससे वह चिन्तन, मनन, अध्ययन कर सके। रातको ९,१० पर, ध्रुवका दर्शन लेकर, प्रार्थना कर सोना चाहिए और उठते ही भगवन्नामसे आरम्भ करना चाहिए। सोनेके लिए खुले आकाशके नीचेका स्थान उत्तम, वरना बरामदा और वह भी संभव न हो तो खुला कमरा अच्छा।

* * *

और सबसे अन्तमें सबसे महत्त्वकी बात बतायी बाबाने। वे बोले—"महत्त्वकी बात है हमारी मनोवृत्ति। *हम हमेशा दूसरोंके गुणोंपर ध्यान*

दें और अपनी कमज़ोरी हटानेपर जोर दें। हम सेवक हैं, इसीका सदा ख़्याल रखकर अपनी मर्यादाका हम पालन करें। तभी सफलता की आशा की जा सकेगी।"

ये हैं कार्यकर्ताओंके सम्बन्धमें बाबाकी अपेक्षाएं।

* * *

एक दिन कुजेन्द्रीके कार्यकर्ता-सम्मेलनमें उन्होंने कहा कि चिन्ताका विषय है कि हमारे पास कार्यकर्ता बहुत कम हैं, और जो हैं भी उनमेंसे बहुतोंका स्तर उतना ऊंचा नहीं, जितना होना चाहिए।

सेवकोंकी यह कमी दूर कैसे हो, इसके दो उपाय बताये बाबाने :

(१) जिन परिवारोंमें एकसे ज्यादा आदमी हों, उनमेंसे एक आदमी सार्वजनिक सेवाके लिए बाहर निकल आये और उसका भार उसका परिवारही उठाता रहे।

(२) वाणप्रस्थ आश्रमका पालन हो और ऐसे वाणप्रस्थ सार्वजनिक सेवामें लगें।

आज संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, यह बड़ी चिन्ताका विषय है। बाबाने कहा कि हमारे राजेन्द्र बाबू सयुक्त परिवारकी ही देन हैं। उन्होंने एक बार ऐसी चर्चा चलनेपर यह बात मंजूर की थी कि हमारा परिवार सयुक्त न होता और मेरे भाई मेरी चिन्ता न रखते तो मैं सार्वजनिक सेवाके लिए निकल ही न पाता!

* * *

कार्यकर्ताओंकी कमी पूरी करनेका यह साधन अनूठा है, पर पैसेके पीछे दौड़नेवाले लोगोंको जब यह जंचे तब न!

* * *

और वाणप्रस्थ आश्रम?

उसीकी हमें कौन चिन्ता है?

शादीका सेहरा जिस दिन माथेपर बंधता है; गृहस्थ आश्रममें जिस दिनसे हम प्रवेश करते हैं, उस दिनसे जीवनकी अंतिम घड़ियोंतक मानो हम

गृहस्थ आश्रमका ही पट्टा बांध लेते हैं। कहांका वाणप्रस्थ, कहांका सन्यास !

* * *

और बाबाकी मांग है कि हर घरसे एक सेवक निकले, हर परिवारसे वाणप्रस्थी लोग बाहर आयें।

भगवान बुद्धने स्वास्थ्य और उन्नतिके दो साधन बताये: अखण्ड पदयात्रा करो और तालाब खोदो।

बुद्धकी इस उक्तिको बाबा भी दोहराते हैं। वे कहते हैं कि इससे यह बात स्पष्ट है कि जीवनमें कृषि अनिवार्य है। कृषिके साथ विविध व्यवसाय शोभा देते हैं। इसलिए हरेकके जीवनमें कर्मयोग-कालमें कृषि रहे और उत्तर-कालमें अध्यापन।

* * *

कार्यकर्ताओंकी यह कमी जबतक नहीं मिटती, तबतक देशका उद्धार होनेवाला नहीं। निष्काम सेवकोंके बिना देशकी, समाजकी, राष्ट्रकी उन्नति असम्भव है, सर्वथा असम्भव।

* * *

माना, देशमें ऐसे निःस्वार्थ और निःष्काम सेवकोंकी बड़ी कमी है, फिर भी भूदानका सौभाग्य है कि उसे बहुतसे ऐसे सेवक प्राप्त हैं, जिन्होंने वैभव और विलास, पद और सम्मानको ठोकर मार दी है। प्रलोभन जिन्हें लुब्ध नहीं करते, कष्ट जिन्हें विचलित नहीं करते।

आज देशके कोने-कोनेमें भूदान आन्दोलन जो आशातीत प्रगति कर रहा है, उसके एकमात्र कारण हैं हमारे ये निःस्पृह सेवक।

किसी भी प्रान्तकी गोदी ऐसे सेवकोंसे खाली नहीं !

* * *

और इन सेवकोंके बीच जब बाबा बैठते हैं तो अपना हृदय उंडेल देते हैं।

यह लीजिये, हसनके कार्यकर्ताओंकी सभा।

सत्ताइस सितम्बर, '५५।

कुजेन्द्रीकी आदिवासी-शाला।

मचपर बाबा हैं। आगे-पीछे, अगल-बगल जमीनपर बैठे हैं यहांकी भूमिक्रान्तिके अग्रदूत।

इनमें गोप बाबू भी हैं रमादेवी भी। नव बाबू भी हैं, मालतीदेवी भी। विश्वनाथ पट्टनायक भी हैं, शरत्चन्द्र महाराणा भी। मनमोहन चौधरी भी हैं, राधारत्नदास भी। अलेखपात्र भी हैं, व्रजसुन्दरदास भी। ईश्वरलाल व्यास भी हैं, बाबूलाल मित्तल भी। नन्दकिशोरदास भी हैं, निमाई चरण भी। विलायत हुसेन भी हैं, प्रह्लाद पाणिग्रही भी। इन्द्रमणि जेना भी हैं, मृत्युजय जेना भी। छोटे और बड़े, बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष—सैकड़ों भाई-बहन इस महफिलमें मौजूद हैं।

* * *

एक-एक प्रमुख सेवकका नाम पुकारा जा रहा है। वह आता है, दो चार मिनट भू-क्रान्तिकी अपनी अनुभूतियां सुनाता है और फिर अपने स्थानपर जा बैठता है।

यह लीजिये यह आये राधारत्नदास।

आप कहते हैं—दीवान शत्रुघ्नसिंहके मंगरौठ (उत्तर प्रदेश) के सर्व-प्रथम ग्रामदानसे मुझे बड़ी प्रेरणा मिली। चेष्टा की और रायगढा थानेके गोबरपल्ली ग्रामका समग्रदान प्राप्त किया।

* * *

वैद्यनाथदास—२६ ग्रामोंका समग्रदान मिलनेके उपरान्त मैं कोरापुटमें पहुँचा। यहांकी सीधी-सादी जनताको दानका ज्ञान नहीं है। बाबाकी, मिल बांटकर खानेकी, सीधी-सादी बात उसे बड़ी जल्दी जँचती है। आदिवासी भाई बड़े प्रेमसे बाबाकी बात सुनते हैं। श्रद्धा और धर्मकी बात उन्हें खूब जँचती है। संग्रहकी उनकी वृत्ति नहीं। 'सर्वस्वदान' शब्द उन्हें पसन्द नहीं। वे तो बस यही कहते हैं—हम मिल-बांटकर खायेंगे। बाबाको वे लोग कहते हैं—'दीनप्रभु', 'महाप्रभु'! मुझे आतेही १७ ग्रामोंका समग्रदान मिला।

* * *

मुहम्मद वाजी—पहले हमने कोरापुटके निवासियोंको अपनी जमीनका छठा हिस्सा देनेकी बात समझायी और उसके बाद जो हवा बँधी तो धडाधड ग्रामदान मिलने लगे।

* * *

वशीधर उपाध्याय—पहले मैं कटक जिलेमें गो-सेवाका काम करता था। मार्च '५३ में भूदानका काम शुरू किया। २१ जूनको कोरापुट चला आया। थोड़े-ही दिनोंके भीतर मैंने १६, १७ ग्रामोंका समग्रदान प्राप्त किया। मेरा अनुभव है कि कोई भी कार्यकर्त्ता एक डेढ माह ट्रेनिंग लेकर इस कामको बखूबी कर सकता है।

* * *

रघुनाथ पारीख—कोरापुटमें आनेका आदेश मिलते ही मैं यहाँ आ गया। नौरंगपुरमें काम करने गया। वहाँके निवासियोंको पता ही नही था कि ग्रामदान है क्या बला? आसपासका जगल देखकर डर लगता था। बाघ भी रहते हैं वहां। कांग्रेसवाले कहते थे कि अपने घर लौट जाओ, यहाँ ग्रामदान होनेवाला नही। पर, मैंने हिम्मत नही हारी। प्रयत्नमें लगा रहा और मुझे तीन ग्रामदान मिले। धीरे-धीरे उनकी सख्या बढकर २० हो गयी। मेरेलिए सबसे बडी दिक्कत थी आदिवासियोंकी भाषा।

* * *

नुरायुदास—बालेश्वरमें १२३ ग्रामदान प्राप्त किये। अकेले जलेश्वर थानेमें १०० ग्राम मिले। श्रीरामपुरमें आदिवासी भाई रहते हैं। वे ३मास गांवमें काम करते हैं और ६ मास बाहर खेती या माटीका काम करते हैं। बालेश्वर, मेदिनीपुरमें उन्हें मजदूरी करनी पडती है, जिसमें मुश्किलसे ६ आने, ८ आने मिलते हैं।

* * *

रमाकान्त अधिकारी—मैं किरानी था, '४२ के आन्दोलनमें स्तीफा

देकर इधर देशसेवामें आ लगा, मयूरभंजमें ग्रामसेवा करता रहा हूं। इधर ६ मासमें मुझे ३५ ग्रामदान मिले।

* * *

कई-कई वार पुकारनेपर बहुत झिझकते हुए आये विश्वनाथ पट्टनायक। यों ही वे कम बोलते हैं, लाउड-स्पीकरपर तो मानों उनकी बोलती ही बन्द हो गयी। बड़ी मुश्किलसे इतना कह सके : "मुझे न तो कहना आता है, न आफिस करना। मुझे कुछ नही कहना है। इतने भाइयोंने अपनी अनुभूतियां बता ही दी हैं। जो काम हुआ है, वह इन्ही सबके सहयोगसे हुआ है। मेरा कुछ नही।"

और वे जल्दीसे भागकर जा बैठे साथी कार्यकर्ताओंके बीच।

* * *

विश्वनाथ भाईके बाद रामचन्द्र मिश्र, सत्यशेखर दास, साहूकार जगन्नाथ, अमियक्षत्र पारीख, सावित्री बिस्वास आदि कई भाई-बहनोंने अपनी अनुभूतियां सुनायीं। उसके बाद बाबाका प्रवचन शुरू हुआ।

* * *

बाबा बोले—

यह वक्ताओंकी तो कोई सभा है नहीं, यह तो है काम करनेवाले सेवकोंकी सभा। आपने देखा कि यहां सेवकोंने अपना अनुभव आपके सामने रखा। पांच-सात भाइयोंने व्याख्यान दिया। आपने यह भी देखा कि यहां एक भाई[1] ज्यादा बोल नहीं सके। लोग कहते हैं कि वही भाई हैं, जिन्होंने यहांपर ज्यादा काम किया है। लेकिन उन्हें ऐसा महसूस नही हुआ कि उन्होंने कोई खास काम किया है। उलटा उन्होंने यह कह दिया कि जो काम हुआ, वह अनेक लोगोंके सहयोग से हुआ है; और मैं मानता हूं कि यह बात उन्होंने विनयसे कही है, पर सत्य बात है। हम तर्कसे नही कह सकते हैं कि जो काम ईश्वर कराना चाहता है, वह

१. श्री विश्वनाथ पट्टनायक।

किस तरहसे होता है। कहा जाता है कि वह कुछ खास पुरुषोंके जरिये अपना काम करता है। यह भी कहा जाता है कि जिन लोगोंके जरिये वह काम लेना चाहता है, वे सिद्ध पुरुष होते हैं। कोई-कोई ऐसा कहते हैं तो उसका खंडन करनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि, उससे धर्मशास्त्रकी मर्यादाकी रक्षा होती है। पर वस्तु स्थिति यह है कि चाहे कोई सिद्ध पुरुष हो या असिद्ध पुरुष हो, ईश्वर जिससे काम लेना चाहता है, उसीसे लेता है। ईश्वरकी इच्छासे जड चेतन बनता है, उसकी इच्छासे नीच ऊँच हो जाता है, उसकी इच्छासे पतित पावन बनते हैं। हमने सुना था एक वाक्य—"*मूकं करोति वाचालं*"। उसका अर्थ लोगोंने सुनाया कि ईश्वरकी इच्छासे गूंगे भी वक्ता बन जाते हैं। लेकिन एक भाईने जो संस्कृत ज्यादा नहीं पढे थे, इसका अर्थ यह भी सुनाया कि वाचाल को मूक करता है। एक ही वाक्यसे ये दो अर्थ निकलते हैं कि जो वक्ता होते हैं, वे बोल नहीं सकते, याने बोलनेकी ताकत रखते हैं, वे मूक हो जाते हैं और जो मूक होते हैं, वे खूब बोल लेते हैं, ईश्वरकी इच्छासे।

बहुतसे लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या १९५७ में आपकी कल्पनाके अनुसार क्रांति सम्पन्न होगी? क्या आपको यह जान पडता है कि जिस तरहसे काम चल रहा है, उस तरह यह काम आप पूरा कर सकेंगे? मैंने बहुत दफा यही उत्तर दिया है कि दुनियामें जो कार्यकर्ता काम करते हैं, उनमें और मुझमें बहुत अन्तर है। मैं अपनेमें कोई ऐसी चीज नहीं पाता हूँ जिससे कि कुछ काम होगा। लेकिन ईश्वर जब चाहता है, तब काम होता है, इतना मैं जानता हूँ। और इसीलिए कोरापुटमें जो काम हुआ है, वह केवल उसीकी करुणासे हुआ है, ऐसा मैं समझता हूँ। यहाँपर एक-सवा महीने घूमनेका कार्यक्रम रखा था, लेकिन यहाँकी हालत देखकर हमीने कह दिया कि यहाँका कार्यक्रम बढ़ाइये। इस जिलेमें घूमनेके लिए अच्छा रास्ता नहीं है, बारिश भी काफी है, इसलिए लोग सोचते थे कि सवा महीनेके बाद दूसरे जिलेमें जायेंगे और सीधे रास्तेसे जायेंगे और बारिशसे बचेंगे। लेकिन मैंने यही तय किया कि इस जिलेमें बारिशका मौसम

बितायेंगे। मैं नही कह सकता कि मैं यहाँ क्यों बीमार नही पड़ा। मैं तो इतना ही जानता था कि 'वह' चाहता था, इसलिए यह हुआ। यह ठीक है कि उसने जो बुद्धि दी है, उसका उपयोग करके जो शक्य हुआ, वह किया और काम करनेका प्रयत्न किया गया। आहार आदिका संयम-पालन उसीकी कृपासे हुआ। फिर भी ऐसा सयम-पालन उसके पहले भी हुआ था, होता ही रहा, फिर भी मैं बीमार पड़ा। लेकिन यहा वह बात नही हुई, रोग नही हुआ। इसलिए मैं तो केवल आश्चर्य-चकित हूँ। ईश्वरकी कृपा छोडकर और इसमें कुछ नही है। लेकिन सबसे आश्चर्यकी बात तो यह है कि यहांके कार्यकर्ता अनेक आपत्तियोमें बारिशके बावजूद गांव गांवमें घूमे, और जो जिला बारिश और मलेरियाके लिए मशहूर है, वहाँ भी उत्तम काम हो सकता है, बारिशमें उसका निदर्शन दुनियाको यहांसे मिला। बहुतसे कार्यकर्ता बीमार पडे, परन्तु उससे मुक्त होकर फौरन काममें लगे। हमारे लिए तो सब प्रकारका इतज़ाम हो जाता है, पर इनके लिए खास इतजाम होता होगा, यह हम नही मानते। कार्यकर्ताओंको यह सारी जो प्रेरणा हुई, वह वे कहांसे लाये? इस वास्ते हमारे मनमें कभी सदेह नही उठता है कि यह काम होगा कि नही? और यह काम कैसे होगा, यह हमें मालूम नही है।

तेतुलीसुटी थानामें गांववालोंके साथ कुछ चर्चा हो रही थी कि कार्यकर्ता गांव-गांवमें कैसे जायेंगे, काम कैसे होगा इत्यादि। एक भाईने कहा, यह लोग तो काम जरूर करेंगे लेकिन इन लोगोंको शिविरमें तालीम जरूर देनी होगी। वैसे तालीमका महत्त्व मैं मानता हूँ, पर जिस परिस्थितिमें मैं बोल रहा था, उस परिस्थितिमें तालीमकी बात मुझे बहुत जँचती नही थी। मैंने सहजभावसे कह दिया—लोगोंकी तालीमकी क्या बात करते हो! रामजीका काम तो बदर करते हैं। उन्हें कौन तालीम मिलती है? जो लोग यह सुनते थे, वे बोल उठे—'बाबा जो कहते हैं, वह ठीक है। हम बदर ही हैं और बदरोंका काम हम कर सकेंगे।' फिर उन्होंने एक कहानी सुनायी। उन्होंने कहा कि १९४२ में

हम लोगोंको एक मत्र दिया गया। गाधीजीने कहा, 'यहांकी हुकूमत हमें मान्य नही करनी है', बस, हमने वह सदेशा गांव गांवमें फैला दिया और यहांके लोगोंने यहांकी सल्तनतको खतम करनेका निश्चय किया। परिणाम-स्वरूप हमारे तीस-चालीस लोग मरे। फिर भी हम दबे नही। तब हमें कौन-से शिविरमें तालीम दी गयी थी?' यह बात सुनकर मुझे बहुत हर्ष हुआ।

ग्रामदानके ये जो काम होते है, वे बहुत ज्यादा बुद्धिद्वारा नही होते हैं। बुद्धि तो उनके मूलमें होती है, इसलिए वे काम होते हैं। लेकिन, जो लोग ये काम करते हैं, वे बुद्धिपूर्वक नही करते हैं, हृदयपूर्वक करते हैं। इसलिए हमारा विश्वास है कि हमारे जानेके बाद यहां जोरसे काम चलेगा।

जिस जिलेमें पाँच सौसे अधिक ग्रामदान मिले हैं और बीस हजार दानपत्र मिले हैं, उस जिलेमें सपत्तिदानका काम नही होगा, इतने दानपत्र नही मिलेंगे, ऐसा मानना न केवल नास्तिकता है, बल्कि मूर्खता है, इसमें केवल श्रद्धाका अभाव नही, बल्कि बुद्धिका अभाव है और दोनों अभावोंसे जबर्दस्त अभाव पुरुषार्थका है, जो पुरुषार्थ-हीन लोग होते हैं, वे घरमें बैठकर अनत कल्पना करते हैं, पर जो पुरुषार्थी होते हैं, वे इतनी कल्पना सहज करेंगे कि इतनी हवा जहां फैली है, इतना अच्छा वातावरण जहां है, इतनी पवित्रता जहां है, वहां सपत्तिदानका काम भी सहज होगा। और बाकी काम तो चलेंगे ही।

यह आदोलन तब क्रातिकारी बनेगा, जब सब अपने-अपने स्थानमें आयोजन करेंगे, जब सारी सस्थाएं तोडकर निरपेक्ष व्यक्तियोंके झुड-के-झुड इस काममें लगेंगे। वह अवस्था हम लाना चाहते हैं, जिससे आजका आधार तोडना होगा।[1] सस्थाका, मध्यवर्ती निर्देशका आधार तोडना चाहिए। जब ऐसे सब आधार टूटेंगे तो हमें वह परम आधार मिलेगा। गीतामें भगवानने आश्वासन दिया है कि '*अन्य भक्तका योगक्षेम मैं करता हूं।*' तो शकराचार्यने भाष्यमें पूछा है कि दूसरोंका

---

१. श्रतन. ता० २२-११-५६ को पलनीमें सर्व-सेवा-सघने ये सब आधार तोड़ देनेका क्रान्तिकारी निश्चय कर ही डाला!

योगक्षेम कोई दूसरा करता है क्या ? उसका उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है कि जो लोग ऐसा समझते हैं कि अपना योगक्षेम वे खुद करते हैं, ऐसे लोगोंका योगक्षेम भगवान नही करता है। याने जिन्होंने अपने आधार पकड रखे हैं, उनका आधार वही है। पर वे पहचानते नही हैं, इसलिए उन्हें वह आधार नही मिलता है। मान लीजिये कि घरमें बिजली है, पर किसीको मालूम नही है, इसलिए लालटेन लगाकर वे बैठते हैं। बिजलीका अस्तित्व मालूम नहीं होता है, नही तो जरूरत पडनेपर वह जरूर बटन दबाता। इसलिए जबतक हम अपने आधारका आश्रय नही छोडते हैं, तबतक वह हमें 'परम आधार' नही मिलेगा। इसलिए हमें एक दिन तय करना होगा और दूसरे आधार छोडने होंगे। वह दिन लानेके लिए आवश्यक है कि ग्रामदान और संपत्तिदान हो।

यह ठीक है कि ये सब कार्यकर्ता शिक्षित नही हैं। बोलने-चालनेमें कई गलतियाँ उन्होंने की होंगी, और हम जानते हैं कि कुछ गलतियाँ उन्होंने की हैं। बावजूद इसके, हमारे मनमें उनके लिए जो प्रेम है, वह हम ही जानते हैं और उन सबके लिए हमारे मनमें अभिमान भी है। इसलिए हम आपको धन्यवाद देते हैं और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि जो निष्ठा आपको उसने दी है, उस निष्ठाका दान वह सतत जारी रखें।

* *

दो दिन बाद कोरापुटके कार्यकर्ताओंके बीच बाबाने कहा :

भूदान, ग्रामदान और भू-वितरण आदिका जो काम शुरू हुआ है, वह तबतक जारी रहना चाहिए, जबतक वह सौ-फीसदी पूरा नहीं होता। और उसके साथ-साथ निर्माण कार्य भी चलेगा, जिसकी ओर दुनियाका ध्यान रहेगा। यहाँपर जो निर्माण कार्य शुरू हो रहा है, उसके लिए सब लोगोंके सब ओरसे आशीर्वाद प्राप्त हुए हैं। हर कोई इसमें सहायता करनेके लिए तैयार है। यह एक अद्भुत ही अनुभव है कि किसी काममें

सब लोगोंकी सहानुभूति मिले। ऐसा काम तो आठ आने सफल हो ही चुका, ऐसा समझना चाहिए।

भूदानके कामका इतिहास जब लिखा जायगा, तब लिखा जायगा कि इस आन्दोलनमें हरेककी सहानुभूति हासिल करनेकी कोशिश की गयी है। इसके जरिये हम जिस मसलेका हल चाहते हैं, वह मसला बहुत व्यापक और पेचीदा है। इसका एक आर्थिक पहलू है, एक सामाजिक पहलू है और एक राजनीतिक पहलू है। तीनोंमें मतभेदकी गुंजाइश है। लेकिन इसका एक आध्यात्मिक और नैतिक पहलू है, जिसके बारेमें मैंने कमसे कम मतभेद देखा है।

और जिनका इस आंदोलनके विषयमें आर्थिक दृष्टिसे कुछ विरोध-सा रहा है, उनकी भी आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यके लिए सहानुभूति रही है। लेकिन इसपर जिन-जिनके जब कभी आक्षेप प्रकट हुए हैं, तब मुझे अत्यन्त हर्ष ही हुआ है और हरेक आक्षेपका जो समीचीन उत्तर हो सकता था, वह देनेकी कोशिश की है। इसलिए वैसे जटिल और पेचीदे मसलोंपर भी बावजूद इसके कि इसमें मतभेदोंकी गुंजाइश थी, किसी प्रकारकी कटुता पैदा नहीं हुई। और अधिकसे अधिक सहानुभूति इसे मिलती गयी, जिससे हृदय-परिवर्तनकी प्रक्रिया सतत होती रही है।

आज अपने देशमें भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्ष हैं और बहुतसे लोग किसी न-किसी पक्षके सदस्य होंगे ही। बहुत थोडे लोग ऐसे होंगे जो पक्षीय विचारसे अलग रह सके हैं। लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता इन सब राजनीतिक पक्षोंकी सहानुभूति, कमसे कम अविरोध इस कामके लिए प्राप्त हुआ। उसका भी यह कारण था कि इस आंदोलनको चलानेका जो तरीका था, उसमें मनुष्यको मनुष्यके नाते ही पहचान हुई है।

यह आन्दोलन सब पक्षोंसे अस्पृष्ट रहा है। यह अहिंसाकी खूबी थी कि प्रतिपक्षियोंको शांतिपूर्वक अपनेमें समा लेना और भिन्न-भिन्न पक्षोंसे बिलकुल ही अस्पृष्ट रहना। हमने यह दावा किया था कि किसी भी पक्षका, या दलका या मजहबका मनुष्य हमारा कार्यकर्ता हो सकता है।

और, वह हमारा मनुष्य है। इसके कारण कभी-कभी थोड़ी देरके लिए गलतफहमी भी हुई है।

हमने हरेकसे कहा कि अरे भाई, हम तो सबके साथ मिले हुए हैं। इसीका नाम है 'सर्वोदय'। यह तो पूर्ण है। समुद्रमें यह भी नदी आयेगी, वह भी नदी आयेगी और नाले भी आयेंगे। वह सबको प्रवेश ही देगा, लेकिन सबको अपना रूप देगा। जो भी नदी या नाला समुद्रमें जायगा, वहाँ उसे खारा बने बगैर चारा नही। इसलिए इसमें जो भी दाखिल होता है, उसे 'सर्वोदय' का रग चढता है।

यह सब ध्यानमें रखकर आपलोग इस जिलेमें काम करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं। इस तरह काम जारी रखेंगे तो सब प्रकारके भेद और विरोध मिट जायेंगे, रफू हो जायेंगे। निर्माण-कार्यके लिए इतनी आस्था, आशा और सहानुभूति सबकी तरफसे हमें हासिल हुई है; इसलिए यहाँ पर जो निर्माण-कार्य चलेगा, वह बहुत शातिसे, कुशलतासे और आहिस्ता-आहिस्ता चलना चाहिए। सबकी आशा इस प्रयोगकी तरफ है। सावधानी-पूर्वक पूरे विचारसे, सबके साथ सलाह-मशविरा करके, एक-एक कदम उठाना चाहिए। आप सब लोग इस तरहसे अपनी-अपनी ताकतके अनुसार, आपके सिरपर जो हिस्सा आयेगा, उतना उठा लेंगे।

और एक बात।

अपरिग्रहमें कोई शक्ति है, यह हम लोगोंने अबतक महसूस नही किया। हमने अपरिग्रहसे, चिन्ता-मुक्तिसे ज्यादा अपेक्षा नहीं की, लेकिन हम सम्पत्तिदानके जरिये अपरिग्रहकी शक्ति दिखाना चाहते हैं। यह सारा परिग्रह घर-घरमें बाँटा जायगा; इसलिए उसमें साम्यावस्था, प्रेमभाव, निर्वैरता और अद्वेष पैदा होगा।

हम कोरापुटमें ज्यादा ताक़त इसलिए लगा रहे हैं कि कोरापुट एक परिग्रही जिला बन जाय। एक जगह थोड़ा अधिक जोर लगाकर एक दर्शन हो जाता है तो सर्वत्र फैलानेमें मदद होती है।"

* * *

छोडिये उडीसा, आइये हैदराबादमें।

यह महबूबनगर है।

इस जिलेके कार्यकर्ताओंने सकल्प किया है कि यहा वे २ लाख एकड—छठा हिस्सा जमीन—हासिल करेंगे।

यह सकल्प, मामूली सकल्प नही।

तभी तो बाबा चाहते हैं कि यह हैदराबादका कोरापुट बने और तेलगानामें, जहाँ भूदान-चक्र शुरू हुआ, वही, उसकी पूर्ति भी हो!

* * *

सात मार्च, १९५६।

श्रीरगपुरम् पडावपर महबूबनगरके कार्यकर्ता एकत्र हैं। चर्चा चली। केशवरावने स्थितिका विवेचन करनेके उपरान्त बाबाका मार्ग-दर्शन मागा।

बाबा बोलने लगे तो भूदान आन्दोलनका इतिहास ही बता डाला उन्होंने।

बोले

"यहाँ तेलगानामें जब भूदान-यज्ञका आरभ हुआ, तब किसीको यह ख्याल भी नही था कि यह हिन्दुस्तानमें फैल सकेगा। अगर उसके पीछे ईश्वरकी प्रेरणा नही होती तो शायद वह वही खतम हो जाता। परतु एक प्रेरणा थी, जिसने हमारे पाँवमें बल दिया और हृदयमें ताकत दी। दिल्लीके रास्तेपर हम चल पडे। रास्तेमें सागर (मध्यप्रदेश) पहुँचे। उस दिन गाधी-जयतीका दिन था। तबतक हमारे हाथमें २० हजार एकड जमीन थी। १२ हजार एकड तेलगानामें मिली थी और ८ हजार एकड और जगहोंपर मिली थी। उस दिन हमने कहा था कि 'हिन्दुस्तानकी भूमिका मसला शान्तिसे हल करना है तो पाँच करोड एकड भूमि चाहिए और जबतक इतनी जमीन हासिल नही करूँगा, तबतक चैन नही लूँगा।' अब कहाँ २० हजार एकड और कहाँ ५ करोड एकड! लेकिन ईश्वर-पर और भारतकी जनतापर विश्वास था। इसलिए कह दिया। पूरे एक सालकी यात्राके बाद हजारोंके लाख होनेमें कोई दो हजार एकड जमीन

कम हो रही थी, वह भी अन्तिम दिन मिल गयी और उस सालका संकल्प पूरा हो गया। सौमेंसे हजार बने, हजारमेंसे दस हजार और दस हजारमेंसे लाख बने! शका करनेवालोंने शका उठायी कि एक लाख एकड़के लिए एक साल लगा तो ५ करोड एकड़के लिए ५०० साल लगेंगे। हमने कहा कि पहले दिन हमें १०० एकड जमीन मिली और एक सालमें एक लाख मिली, इसलिए यह गणितका विषय नही है। सबलोग काममें लग जाँय तो काम बढ सकता है।"

* * *

बिहारकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा : बिहारमें हमने बडे आँकड़ेका संकल्प किया। हमने कहा कि यहाँ ४० लाख एकड जमीन हासिल होनी चाहिए। इतनी जमीन पूरी करनेके लिए पूरी कोशिश करेंगे और जबतक नही मिलेगी, तबतक बिहार नहीं छोडेंगे। लोगोंने खूब चर्चा की कि बिहारमें ४०लाख एकड होना असम्भव-सा है। फिर लोग सेवापुरी सम्मेलनके लिए मुझे बुलाने आये। उन्होंने कहा कि ढाई लाखसे ज्यादा 'कोटा' करनेकी हमारी हिम्मत नही है। हमने कह दिया कि चार लाखसे कममें आनेको हम राजी नही हैं। बादमें उन्होंने आपसमें सलाह-मशविरा करके, बाबाको ले जाना ही है, इसलिए, कबूल कर लिया। बिहारमें पांव रखते ही ४० लाखकी बात की। अतमें छ महीनेके बाद ३२ लाखका कोटा कबूल किया। हमने उसे मान्य किया और कहा कि आप भी काममें लगें और हम भी काममें लगें। कांग्रेसके सामने बात रखी गयी और आनदकी बात है कि हिन्दुस्तानमें किसी कांग्रेसने जो हिम्मत नही की थी, वह बिहार कांग्रेसने की। उसने कहा कि बाबाका प्रस्ताव मजूर है, हम सब अपनी-अपनी कोशिश करेंगे और पूरी ताकत इसमें लगायेंगे। बिहार प्रान्तमें हम खूब घूमे। होते-होते २२ लाख एकड जमीन मिल गयी। दो-तीन लाख और हो जाते तो करोड़की भाषा शुरू हो जाती। २५ लाख एकड याने पाव करोड़। लाखसे करोड तक पहुँच गये। लोगोंमें बहुत उत्साह पैदा हुआ और आनद फैला। हमने जाहिर किया कि बत्तीस लाखका

संकल्प पूरा होने तक हमारे रुकनेकी कोई जरूरत नहीं है और उसमें प्रतिज्ञा-भंग नहीं है, क्योंकि यहाँ ३२ लाख एकड़ जमीन इकट्ठी हो, तबतक बाबा रुके रहें तो सारे देशका काम नहीं होगा। एक सालमें २२ लाख हो गया, अब बँटवारा शुरू होना चाहिए। लोगोंने क़बूल किया और हमने बिहार छोड़ा। हमको कभी नहीं लगा कि हमने प्रतिज्ञा-भंग की है। उसके बाद वहाँ बँटवारा शुरू हो गया। बिहारमें हमने समय दिया, तबसे सबमें बड़े-बड़े आँकड़े बोलनेकी हिम्मत आ गयी।

* * *

उडीसाकी भूमिक्रान्तिकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा : "फिर हमारा प्रवेश उडीसामें हुआ। प्रवेश करनेसे पहले ही हमने जाहिर किया कि हमें यहाँ भूमिप्राप्ति नहीं करनी है, 'भूमिक्रान्ति' करनी है। गाँवके-गाँव मिलने चाहिए। उसके पहले कुछ पूरे गाँव मिल चुके थे। हमने ग्रामदान पर जोर लगाया और वहाँ ६५० गाँव पूरेके-पूरे मिल गये। एक गाँवमें एक मालिकने जमीन दी सो नहीं, गाँवके २०-२५ मालिकोंने अपनी पूरी जमीन दे दी। खुशीकी बात तो यह है कि हमारे उडीसा छोडनेके बाद भी और सैकड़ों गाँव मिले हैं। काम रुका नहीं।"

तेलंगानाकी बात कहते हुए बाबा बोले : "फिर बीचमें कंजूस आंध्र आ गया। अब तो वह 'विशालांध्र' बनना चाहता है। पर कंजूस रह करके विशाल कैसे बनेंगे? अब आप लोगों (तेलंगनाकी जनता) की लगनसे कंजूसपन मिट जायगा, ऐसी उम्मीद करते हैं। वहाँ खास कुछ काम नहीं हुआ, फिर भी बीस हजार एकड़ जमीन मिली और वातावरण तैयार हुआ। गुंटूर, कृष्णा जिलेमें अच्छे व्याख्यान दिये, कम्यूनिस्टोंके साथ दिलचस्प चर्चा हुई। कम्यूनिस्ट लोग समझ गये और इस आन्दोलनमें वे दिलचस्पी रखें न रखें, काम करें न करें, लेकिन इस आन्दोलनके खिलाफ बोलनेकी अब कोई चीज नहीं रही। यह आन्दोलन भला है और यह क्रान्तिका आन्दोलन है, यह विचार उन्हें जँच गया और उन्होंने इसे मंजूर भी किया।

अब यहाँ तेलगानामें पौने पाँच सालके बाद फिर हमारा प्रवेश हुआ। हैदराबादमें जो दो सभाएँ हुईं, उनसे हमें विश्वास हो गया कि तेलगानाकी जनता क्रान्तिके लिए तैयार है। सैकडों लोग शान्तिसे बैठे रहे और सुनते रहे। नागरिकोंका प्रेम दीख पडा और हमें निश्चय हो गया कि यहाँ आन्दोलनकी जडें काफी गहरी जा चुकी हैं। तेलगानामें उसका चक्र शुरू हो गया है, तो उसकी पूर्ति भी यहाँ ही होनी चाहिए। हमने उसकी सूरत महबूबनगर जिलेमें देखी। हमने कहा कि कुल हिन्दुस्तानसे पाँच करोड एकडकी माँग है; उस हिसाबसे अगर इस जिलेवाले अपना २ लाख एकडका हिस्सा (छठा हिस्सा) पूरा कर लेते हैं तो क्रान्तिका आरभ हो सकता है। श्री हनुमतरावने भी कहा कि यह अशक्य वस्तु नही है। अब अकेला हनुमतराव नही, सबको मिलकर कहना चाहिए। लेकिन एक मनुष्यने अनुभवपूर्वक विश्वास प्रकट किया तो सबको हिम्मत आनी चाहिए। पहले 'ऐसा सभव है'—यह कहनेकी कल्पना भी कौन कर सकता था? पहले कुल प्रान्तके लिए २ लाख एकड की बात चली है। सबमें अब हिम्मत आयी है तो हनुमतरावका पूरा सहयोग लेकर अपनी पूरी ताकत इसमें लगा दें।

दूसरी बात यह है कि यहाँ जो जमीन मिली है, वह जमीन बारिशके पहले बँट जानी चाहिए। कुछ रह जाय तो हर्ज नहीं, लेकिन वह भी जल्दसे-जल्द बँट जानेकी कोशिश होनी चाहिए, तो लोगोंको विश्वास हो जायगा। साथ-साथ भूमि-प्राप्तिका भी काम होना चाहिए। जितनी जमीन बँटे, उतनी जमीन मिलनी चाहिए। जल्दी बँटवारा हो; उसके लिए हम एक सुझाव पेश करते हैं। एक जिलेमें एक ही दिन प्राप्त-भूमिका बँटवारा होना चाहिए। पहले छोटे पैमानेपर एक तहसीलमें ऐसा करना चाहिए। गाँवके लोगोंमें से कुछ लोगोंको बुलाकर और दाताओंको लेकर एक शिविर करना चाहिए। शिविरमें भूदान-विचार और वितरणके नियमका पूरा ज्ञान देना चाहिए। फिर सबकी अनुमतिसे एक दिन जाहिर कर दिया जाय और हर गाँवके लोग अपने गाँवकी जमीनका बँटवारा एक ही दिन

करें। गांवके सहयोगसे जमीन बांटी जाय। कांग्रेसजन, प्रजासमाजवादी, रचनात्मक कार्यकर्ता, अधिकारी, शिक्षक या कालेजका लडका, चाहे कोई भी बँटवारा करे, लेकिन मुख्य राय तो भूमिहीनोंकी रहनी चाहिए। एक राय न हो तो चिट्ठी डालनी चाहिए, परन्तु निष्पक्ष और एकमतिसे बँटवारा होना चाहिए। अगर एक दिनमें बँटवारा नही करेंगे तो ५ करोड एकड जमीन बांटनेमें सौ साल लग जायेंगे। तो, यह तो नाटक है। जैसे एक दिनमें गांव-गांवमें होली और दिवाली होती है, वैसेही भूमिका बँटवारा एक दिनमें गांव-गांवमें होगा। जितनी जमीन बांटी जाय, उतनी मिलनी चाहिए और फिर दो लाखका कोटा पूरा करनेमें सब लग जांय। ऐसा मिलमिला बनाकर काम करोगे तो काम और आगे बढेगा और तेलगाना क्रान्तिका स्थान बनेगा।"

शिक्षणकी नयी दिशा : १४ :

"कालेजसे सदा आ रही है,
'पास', 'पास' की।
ओहदोंसे सदा आ रही है,
दूर, दूर की॥"

हमारे देशमें मुश्किलसे १२ प्रतिशत लोग साक्षर हैं।

शेष लोगोंके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' है।

फिर भी, इतनी थोडी शिक्षा होते हुए भी, जिधर देखिये, बेकारीका बोलबाला है।

पढे-लिखे बाबू लोग, बी० ए०, एम० ए० पास लोग, जगह-जगह चप्पलें चटखाते घूमते हैं! जिस दफ्तरमें जाते हैं नौकरीके लिए, वहीं उन्हें "No Vacancy" (स्थान नहीं है) का साइनबोर्ड लटका मिलता है।

कालेजकी डिग्रियाँ पाकर भी, ओहदोंकी तो बात ही क्या, चपरासीकी नौकरीके भी लाले रहते हैं!

* * *

आखिर ऐसा क्यों ?

उसका सीधा-सादा जवाब है—हमारे विदेशी शासकोंकी घातक नीति।

भारतमें जिस समय विदेशी साम्राज्य अपने हाथ-पैर फैला रहा था, तभी हमारे भाग्य-विधाताओंको जरूरत पड़ी ऐसे दुभाषियोंकी—जो रंग-रूप, शक्ल-सूरतमें तो 'काले' हों, पर रहन-सहन, चाल-ढाल, वेश-भूषामें 'गोरे' हों!

ऐसे 'काले साहबों' को ढालनेकी फैक्टरियाँ बनीं पाठशालाएं—स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय!

ये 'काले साहब' बिना जरूरत सूट पहनने लगे, कालर-टाई बाँधने लगे, टोप लगाने लगे और अग्रेजोंकी नकल करनेमें स्वय उन्हें मात करने लगे! दफ्तरमें ये लोग किरानी बाबू बने, साहबके सामने कुर्सी-पर बैठनेका विशिष्ट अधिकार इन्हें मिला। गोरा साहब टूटी फूटी हिंदी बोलता है तो हमारा 'काला साहब' उससे पीछे क्यों रहे?

और जब यह हाल है, तब 'काला साहब' ऐसा कोई काम कर कैसे सकता है, जिससे उसकी शान धूलमें मिलनेका खतरा है?

*   *   *

इस अग्रेजी शिक्षा-पद्धतिने भारतमें फैशन, विलासिता और परावलम्बनकी वृत्ति इतनी अधिक बढा दी कि कालेजोंसे 'पास' होकर, डिग्री लेकर निकलनेवाले नौजवान कौडी कामके न रह गये!

स्वास्थ्य उनका चौपट! आँखें उनकी गढेमें धसी! आचार-विचारसे उन्हें कोई वास्ता नही! मेहनत-मजदूरी वे कर नही सकते। हाथका कोई काम करनेमें उन्हें शर्म आती है।

वे सिर्फ एक काम कर सकते हैं और वह है दफ्तरमें नौकरी,—बाबूगीरी!

*   *   *

इस विकृत शिक्षा-पद्धतिने हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति के मूलपर कुठाराघात किया। हमारी सभ्यता और संस्कृति चौपट हो गयी। गुरुकुलों और विद्यापीठोंका हमारा पुरातन आदर्श धूलमें मिल गया। चरित्र-निर्माण और आत्म-विकास जिस शिक्षा-पद्धतिका मूल आधार था, वह सर्वथा जाता रहा! रुपया पैसा, भोगविलास और नौकरी ही एकमात्र हमारा लक्ष्य बन गयी।

*   *   *

'विद्या ददाति विनयम्'—विद्यासे आती है विनय, विद्या से आती है नम्रता, विद्यासे आती है सेवा और त्यागकी वृत्ति। विद्यासे होता है—सद्गुणोंका विकास।

हमारा यह पवित्र आदर्श लार्ड मेकालेकी शिक्षा-पद्धतिने मिट्टीमें मिला दिया। तभी तो 'अकबर' इलाहाबादीने कहा था :

हम ऐसी कुल किताबें,
काबिले जप्ती समझते हैं।
कि जिनको पढके लड़के,
बापको खब्ती समझते हैं॥

* * *

बापू यह हालत देखकर बुरी तरह व्यथित हो पडे। बोले :

"मेरा यह दृढ मत है कि अंग्रेजी शिक्षा जिस ढंगसे दी गयी है, उसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयोंको सत्वहीन बना दिया है, भारतीय विद्यार्थियोंके दिमागपर बहुत जोर डाला है और हमें नक़लची बना दिया है।"[1]

"आधुनिक शिक्षाका झुकाव हमारी दृष्टिको आत्माके विमुख बनानेकी ओर है। इसलिए आत्मबल या रूहानी ताकतकी संभावनाएं हमें अपील नहीं करतीं और परिणाम-स्वरूप हमारी आँखें नाशवान और क्षणभंगुर भौतिक शक्तिपर जम जाती हैं। अवश्य ही यह जड कल्पना-हीनताकी पराकाष्ठा है।"[2]

"वर्तमान शिक्षा-प्रणालीकी सबसे बड़ी प्रत्यक्ष बुराई, जो स्वयं अधिक गहरे दोषोंका प्रमाण है, यह है कि उसने हमारे जीवनकी अविच्छिन्नताको भंग कर दिया है....आधुनिक, विदेशी, अराष्ट्रीय शिक्षा नौजवानोंको जीवनमें किसी-भी उपयोगी कामके लिए अयोग्य बना देती है। जो लोग अपने बच्चोंको अंग्रेजी पाठशालाओंमें भेजते हैं, उनमेंसे अधिकांश किसान हैं, जो ईश्वरमें गहरी और चिरस्थायी श्रद्धा रखते हैं।

---

१ गांधी : नयी तालीमकी ओर, पृष्ठ १०.

२ गांधी : विद्यार्थियोंसे, पृष्ठ ११.

इसमें शक नही कि ये लडके जब लौटकर आते हैं तो इन्हें खेतीका कुछ भी ज्ञान नही होता, इन्हें अपने पैतृक धधेके प्रति सचमुच गहरा तिरस्कार होता है और ईश्वर तथा उसकी दयामें इनका कोई विश्वास नही रह जाता।...शिक्षाप्रणालीमें सुधारोंके बाद सुधार हुए हैं, परन्तु इस सचाईको कही भी समझनेकी कोशिश नही हुई है कि सारी वस्तु ही बुरी है, क्योंकि यह सारे राष्ट्रीय जीवन और विकासकी जडोंको ही नष्ट कर रही है। यह प्रणाली उठा ही दी जानी चाहिए।"[1]

बापू ठहरे भारतकी राजनीतिके कर्णधार! उन्हें अवकाश कहाँ? फिर भी देशको उन्होंने एक नयी तालीम दी—बुनियादी तालीम और विनोबाने उस तालीमकी उपासनामें अपना सारा जीवन ही लगा रखा है।

* * *

लोग हैरान हैं कि कैसी है यह नयी तालीम!

न उसका कोई ढाँचा, न उसकी कोई पाठ्यपुस्तक।

यह तालीम है जीवनके लिए और दी भी जाती है—प्रत्यक्ष जीवनके द्वारा।

आजका समाज शारीरिक श्रमकी कीमत कम आँकता है, मानसिक श्रमकी ज्यादा।

नयी तालीमको यह भेद मजूर ही नही।

आजके समाजमें तरह-तरहके भेद हैं। सामाजिक भेद, वर्गभेद आदि आदि।

नयी तालीम इन भेदोंको मानती ही नही। कहती है कि ये सब भेद मिथ्या हैं। मनुष्यमात्र समान हैं।

नयी तालीमका आध्यात्मिक पहलू है—ज्ञान और कर्म दो चीजें नहीं, बल्कि एक ही है। ज्ञानसे कर्म श्रेष्ठ है, या कर्मसे ज्ञान श्रेष्ठ है, यह कहना गलत है।

---

1 गांधी : नयी तालीमकी ओर, पृष्ठ ३४-३६

नयी तालीम कहती है कि आनन्दसे कामको अलग ही नहीं किया जा सकता। दोनोंको अलग करनेका मतलब है—आनन्दमें दोष आयेगा और काम रूखा-सूखा बनेगा।

जहाँ यह अनुभव आये कि कर्म, ज्ञान और आनन्द, याने सत्, चित्, आनन्द—तीनों मिलकर एकही वस्तु हैं, वह है—नयी तालीम।

* * *

नयी तालीमपर राज्यका, सरकारका कोई अंकुश न रहेगा।

समाजका कर्तव्य होगा कि वह बुनियादी तालीमके आगे जो पढना चाहे, उनकी उच्च शिक्षाका, औद्योगिक शिक्षाका प्रबन्ध करे। शासन और समाज उसके लिए पैसेका तो प्रबन्ध करेंगे, पर हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे।

* * *

नयी तालीममें उद्योगके जरिये ही ज्ञानका विकास किया जायगा और ज्ञानके जरिये ही उद्योगका। नयी तालीमकी पद्धति यही है। इसमें ज्ञान और कर्म एक-दूसरेमें ओत-प्रोत रहेंगे।

विनोबा कहते हैं : "नयी तालीम आजकी समाज-रचना कायम रखकर नहीं दी जा सकती। नयी तालीम तो नये समाजका ही निर्माण करेगी। नयी तालीममें शरीरश्रम और मानसिक श्रमकी नैतिक और आर्थिक योग्यता समान मानी जायगी। इसका मतलब है कि आजकी कुल आर्थिक रचना ही हमें बदलनी है और उसे बदलनेके वास्ते ही नयी तालीम है।"[१]

* * *

नयी तालीमकी क्रान्तिकारी दृष्टिका विवेचन करते हुए विनोबा कहते हैं :

"हम तो व्यक्तिका पूर्ण विकास चाहते हैं। विद्यार्थी केवल ज्ञान या केवल कर्म-कुशलता या दोनों हासिल करते हैं तो वह भी एकांगिता है। कर्म शक्ति और ज्ञान शक्ति दोनों आ जानी चाहिए। लेकिन वे तो अनेक

---

१. विनोबा : शिक्षण विचार, १९५६, पृष्ठ २५२-२५२.

गुणोंमें से दो गुण हुए। उतनेसे पूर्ण विकास नही होगा। शिक्षासे सब गुणोंका विकास होना चाहिए।

हमें तो लडकोंका आतरिक विकास हुआ या नही, यह देखना है। क्या उनकी आलस्यवृत्ति गयी है? क्या उनमें उद्योगशीलता आयी है? क्या वे सब प्रकारसे निर्भय बने हैं? क्या वे सत्यवादी, सयमी, सेवाभावी बने हैं?—यह हमें देखना है।

सस्कृतमें शिक्षणको 'विनय' कहते हैं, क्योंकि विनय सब गुणोंका प्रवेश-द्वार है। उसीके द्वारा गुणोंका विकास होता है। जो नम्र है, वह जहाँ जो भी गुण पायगा, ज्ञान पायगा, अच्छी बात देखेगा, फौरन ले लेगा। यह गुण-गाहकता—'विनय', याने नम्रताका मुख्य लक्षण है। इसीलिए हमारे पूर्वजोंने विनयपर हमारा ध्यान केन्द्रित किया था। विनयके द्वारा सब गुणोंका विकास होनेपर व्यक्ति परिपूर्ण बन सकता है।

शिक्षक किसी कृतिको केवल बाह्य दृष्टिसे नही देखेगा। हरएक कृतिको अन्तर्दृष्टिसे देखेगा। एक लडकेने चोरी करके फल खाया। मैंने उससे कहा, "तुझे फल खानेका तो हक था, लेकिन कहकर खा सकता था, या खानेके बाद कह सकता था, नही तो व्यवस्थामें दोष आता है। चोरी करके खानेमें कोई स्वाद भी नही और उससे तो हम निडरताको खो बैठते हैं। घरमें चोरी कैसी? और अगर हम समझें तो दुनिया हमारा घर ही है। अगर चोरी करनी थी तो हमारा दिल चुराना था। भगवान् कृष्णको भी चोर कहा जाता है, वे तो चित्त-चोर थे।" वह समझ गया कि यहाँ चोरी करना बेकार है। अगर यह प्रयोग करना हो तो और कहीं करना चाहिए।

कार्य तो एक आईना है। उसमें हम अपने गुण-दोष देख सकते हैं। यही उसका मुख्य उपकार है। लाभ और हानि गिननेकी वृत्ति हरएकमें होती है। कोई धनमें लाभ-हानि गिनता है, कोई विद्यामें। हमें गुण-विकास और दोष-विनाशकी दृष्टिसे लाभ-हानि गिननेका अभ्यास करना चाहिए।

हमारा शरीर अस्वस्थ होता है, अस्वच्छ होता है, हम नहीं। देहसे भिन्न आत्माका भान ही शिक्षण है। जहाँ देहसे भिन्न अपने स्वरूपका भान नहीं है, वह न शिक्षण-व्यवस्था है, न शिक्षण-संस्था। यदि कोई लडका अस्वच्छ है तो मैं उससे यह नहीं कहूँगा कि तू अस्वच्छ है। मैं कहूँगा कि—'तू तो स्वच्छ ही है, लेकिन तेरी देहपर अस्वच्छता आ गयी है, तू सँभल।'

एक लडकेने सोते-सोते बिस्तरेपर पेशाब कर दी। उसकी शिकायत की गयी। वह लज्जित हुआ, और लज्जाके मारे क़बूल ही नहीं करता था। मैंने उससे कहा, "इनसे तेरा सबंध नहीं है। यह तो देहसे हुआ है। बीमार आदि अनजानमें बिस्तरेपर पेशाब कर देते हैं, कभी-कभी सोतेमें भी ऐसा हो जाता है। उस समय उनका भान नहीं रहता।" फिर उस (लडके) ने निःसंकोच उस दोषको कबूल कर लिया।

हमें अपने मनको घडीके समान हाथमें रखकर देखते रहना चाहिए और ग़लती हो तो उसे दुरुस्त करना चाहिए। हमें यह जानना चाहिए कि हम तो वह हैं जो कभी नादुरुस्त नहीं होते, अस्वच्छ नहीं होते। शरीर नादुरुस्त होता है, अस्वच्छ होता है। उसको हम दुरुस्त करनेवाले हैं। यह विचार जब हममें स्थिर होगा, तभी शिक्षण-दृष्टि आयेगी।"[1]

* * *

और इस नयी तालीमके प्रश्नको लेकर जब देखो तब बडे-बडे शिक्षाविद्, बडे-बडे शिक्षाशास्त्री बाबासे चर्चा करते रहते हैं।

मार्च '५६ का पहला सप्ताह।

उन दिन आ गये श्रीमालीजी।

कालूलालजी श्रीमाली, भारत सरकारके शिक्षा-उप-मंत्री।

दो एक दिन रहे वे हम लोगोंके साथ।

बाबाने प्रातः-भ्रमणमें उन्हें समय दिया और पड़ावपर पहुँचनेपर भी।

1. 'बिहार शिक्षक', जनवरी—मार्च १९५३.

रास्तेमें चलते तो कही पाजामा कांटोंमें उलझता, कही पैर पानी और कीचडमें फँसते। फिर भी वे बाबाका साथ न छोड़ते।

खूब जमकर उनकी बातें हुई बाबासे।

भाई श्रीमन्जी भी थे साथमें।

* * *

राष्ट्रभाषा हिन्दी आदिकी चर्चा चली तो बाबा बोले—"आज आपका कारोबार अंग्रेजीमें चलता है तो आपके देशका किसान उसे समझ नही सकता। सिर्फ इंग्लैण्ड, अमेरिकाके लोग उसे समझ सकते हैं। इसमें कितना भारी खतरा है, इसका भान आपको तब होगा, जब कोई महायुद्ध छिड़ेगा। चीन जापानवालोंके कारोबारके बारेमें आप कुछ नही जानते। अभी चाऊ ऐन लाई आये थे। वे चीनी भाषामें बोले। तब हम भी कुछ कुछ हिन्दी बोलने लगे। इस तरह जो अक्ल महात्मा गांधी नही सिखा सके, वह अक्ल विदेशी लोग हमें सिखा रहे हैं।"

* * *

शिक्षाका माध्यम क्या हो, इसपर बोलते हुए बाबाने कहा : "हमारी स्पष्ट धारणा है कि आदिसे अन्ततक, शुरूसे आखिरतककी तालीम मातृभाषामें होनी चाहिए और प्राथमिक शिक्षाके बाद (या कुछ साल बाद) 'हिन्दी' आवश्यक विषय बना दिया जाय, जो अन्ततक बना रहे।"

इससे क्या लाभ होगा, यह बताते हुए बाबा बोले : "इससे ज्ञानका विकास होगा। किसी विद्यापीठका प्रोफेसर किसी दूसरे विद्यापीठमें जायगा और वहांकी भाषामें न बोल सकेगा तो हिन्दी में व्याख्यान देगा। वहांके सब लड़के हिन्दी अच्छी तरह समझनेवाले होंगे। एकताके लिए हिन्दी सबके लिए अनिवार्य विषय हो, इतना काफी है।"

* * *

Free and Compulsory Education (मुफ्त और अनिवार्य

शिक्षण) की बात आजकल बहुत सुनाई पड़ती है। राज्योंमें भी इसकी चर्चा चलती है, केन्द्रमें भी।

शिक्षा विभागके मंत्रीसे इसपर चर्चा न होती, यह सम्भव ही कैसे था ?

बाबा बोले : हमें तो इस शब्दका प्रयोग ही अच्छा नहीं लगता। भला बताइये तो कि जब समाजमें ग़रीब-अमीरके दर्जे बने हुए हैं, तब अमीरोंके बच्चोंको मुफ्त शिक्षा देनेकी ज़िम्मेदारी सरकारपर क्यों रहे ?

रही बात Compulsory (अनिवार्य) शिक्षणकी। इसके हम दो भाग मानते हैं :

(१) Compulsory (अनिवार्य)
(२) Voluntary (ऐच्छिक)

इस अनिवार्य शिक्षणकी व्यवस्था सरकार क्या करेगी, वह तो परमेश्वरने ही कर रखी है। उसने हरएकको भूख दी है, प्यास दी है, इसलिए मनुष्य कुदाली लेकर खोदने जाता है, खेतमें काम करने जाता है। तो इस तरह उसे तालीम मिल ही जाती है।

और लीजिये।

बच्चा कोई भाषा नहीं जानता। उसकी माँ उसे भाषा सिखाती है। वह शून्यमेंसे एक पैदा करती है। फिर यह आपकी मर्जी, चाहे एकका दस बनाओ, चाहे सौ। लेकिन शून्यमेंसे एक बनानेका अर्थ है—अनन्त गुना।

परमेश्वरकी इस योजनामें हर माता दो-ढाई साल तक एकाग्र होकर एक-एक बच्चेको तालीम देती है। यानी एक शिष्यके लिए एक गुरु। ज़रा सोचिये तो कि आपपर माताके समान हर बच्चेको भाषा सिखानेकी ज़िम्मेदारी डाली जाय तो क्या हालत होगी ? आप ऐसी कोई योजना बनायेंगे तो उसपर कितना खर्च बैठेगा ?

* * *

और माके शिक्षणका प्रभाव ?

बाबा गद्गद् हो उठे इसका वर्णन करते-करते :

हमारा अनुभव है कि हमारी माताने हमें जो सिखाया, वह बहुत बडी चीज है। उससे ज्यादा और किसीने नही सिखाया। यद्यपि हमने बादमें कुछ कम ज्ञान हासिल नही किया, फिर-भी हम कह सकते हैं कि हमें तालीम तो हमारी माताने ही दी है। हम तीन भाई हैं और तीनोंको वैराग्यकी ही प्रेरणा है। यह सब माताकी ही सिखावनका परिणाम है।

मुझे बचपनकी एक बात याद है। हमारी माँ रसोई बनाकर सबको खिलाती थी। बारह-साढे बारह बज जाते थे, तबतक उसके पेटमें कुछ नही जाता था। हम सबको खिलाकर वह भगवान्की मूर्तिके पास जाकर हाथ जोडकर कहती

"अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक,
माझ्या अपराधाना क्षमा कर।"[1]

उस समय उसकी आँखोंमें आँसू भर आते थे। उसके बाद, भगवानकी पूजा करके वह भोजन करती थी। उसके इस नियमका मेरे चित्तपर बहुत गहरा असर हुआ है।

* * *

"तो, इस तरह", बाबा बोले—"९० फीसदी शिक्षण यों ही मिल रहा है। यह Compulsory (अनिवार्य) शिक्षण है। रहा Voluntary (ऐच्छिक) शिक्षण। वह सिर्फ १० फीसदी है। यह शिक्षण देनेकी बात है। यह तालीम हमें देनी है और उन लोगोंको देनी है जो इसकी माग करते हैं। यह तालीम हमें किसीपर लादनी नही है।"

* * *

---

1. अखण्ड ब्रह्माण्डके नायक, मेरे अपराधोंको क्षमा कर!

और एक बात तो बाबाने चौंकानेवाली ही कह डाली :

"क्या आप समझते हैं कि गाँव-गाँवके लोग अशिक्षित हैं ? ऐसी बात नही। हमारे सामने जब गाँवका मनुष्य आता है, तो हम समझते हैं कि एक शिक्षित, संस्कारवान् मनुष्य आ रहा है !"

*   *   *

कौन कहेगा कि सोचनेका यह ढंग क्रान्तिकारी नही है ?

*   *   *

और यही मुझे याद पडता है एक दूसरा विद्रोही।

बर्नर्डशा : विश्वका प्रख्यात लेखक, विचारक और आलोचक।

स्कूलसे भागकर, अनुभवोंके विश्वविद्यालयमें पढकर, वह भी ऐसे ही क्रान्तिकारी निष्कर्षोंपर पहुँचा था। कहता है :

"मैं स्कूलमें कुछ नही सीख सका—यह अच्छा ही हुआ; क्योंकि मैं मानता हूँ कि दिमागपर कोई अप्राकृतिक प्रक्रिया उतनी ही बुरी है, जितनी देहपर। जिस विषयके सीखनेकी प्रवृत्ति नही हो, उसे सिखाना उतना ही बुरा है जितना आदमीको भूसा खिलाना !

"स्कूलको मैं जेल कहता हूँ—वह जेलसे भी बुरा है। जेलमें सिर्फ देहपर अत्याचार किया जाता है, दिमागपर नहीं; साथ ही बदमाश कैदियोंसे रक्षा भी की जाती है। स्कूलमें ऐसी कोई सुविधा नही !

"हरिनोंको पालनेके लिए तो जगल रखाये जाते हैं, किन्तु बच्चोंके लिए बगीचे भी नहीं ! शायद इसीलिए कि हरिनोंका शिकार किया जाता है। लेकिन कौन कहता है कि आप बच्चोंका शिकार नहीं करते—हाँ, उन्हें गोलीसे नही मारते और न उनपर शिकारी कुत्ते छोडते हैं ! यही आपकी मेहरबानी है !"

*   *   *

विक्टोरियन युगकी शिक्षा-प्रणाली शाकी दृष्टिमें है—"आधुनिक सभ्यताकी यत्रणाओंके लिए तैयारी।" कहता है कि "जो कोई किसी बालकके अज्ञात व्यक्तित्वको 'चरित्र-निर्माण' के नामपर जबरदस्ती एक साँचेमें ढालनेकी चेष्टा करता है, वह आत्महत्याका अपराधी है।" १

१ बर्नर्डशा : मैक्सिम्स फॉर रेवोल्यूशनिस्ट.

बापूकी तरह, विनोबाकी तरह, शाका भी स्पष्ट मत है कि "बच्चेकी शिक्षाका लक्ष्य होना चाहिए—उसे एक भरेपुरे जीवनके लिए तैयार करना, न कि आजीवन कारावासके लिए।"

* * *

और शा भी इस बातका जबरदस्त हामी है कि बच्चे काम करते-करते सीखें। कला-कौशलके साथ-साथ वे शिक्षा भी प्राप्त करें :

"मैं नही समझता कि इसमें क्या आपत्ति हो सकती है कि बच्चा स्वय अपने लिए और समाजके लिए थोडा बहुत काम करे, खास तौरसे जब कि ऐसे कामसे बच्चा और समाज दोनों ही उन्नतिशील होते हैं। उत्पादक कार्योंमें, कमाईवाले कला-कौशलमें अपना एक अनुशासन होता है, ऐसा अनुशासन, जो ऊपरसे किसी व्यक्ति द्वारा नही लादा जाता, बल्कि काममें ही निहित है। ऐसा अनुशासन बालकोंके लिए बडा उपयोगी है।" [१]

उच्च शिक्षाके बारेमें शाका कहना है : "जब बच्चा अपना सामाजिक ज्ञान प्राप्त कर ले, जब वह पढना-लिखना, हिसाब किताब करना और हाथोंसे कोई दस्तकारी करना सीख ले, अर्थात् वह इस योग्य हो जाय कि आधुनिक नगरोंमें बिना मददके रास्ता खोज सके और साधारणत: उपयोगी काम अपने हाथोंसे कर सके, तब किस दिशामें वह उच्च शिक्षा प्राप्त करे—यह तय करनेकी जिम्मेदारी उसीके ऊपर छोड देनी चाहिए।"

* * *

आज हमारे स्कूल-कालेजोंमें जो शिक्षा दी जाती है, वह कितनी निकम्मी है, यह बतानेकी जरूरत नही। '*हाथ कंगनको आरसी क्या !*'

जिधर दृष्टि डालिये, आपको बहुतसे नमूने मिल जायेंगे।

* * *

ऐसी शिक्षा हमारे कौडी कामकी नहीं। तभी तो बाबा इसका ढांचा ही बदल डालनेके लिए आतुर हैं।

१ बर्नर्ड शा : मिसएलिएन्स, भूमिका.

गाँव-गाँवमें घूमते-घूमते आज तो उनका एक मुख्य सूत्र बन गया है—

"एक घण्टेकी पाठशाला"

और

"गाँव-गाँवमें विश्वविद्यालय" ।

शिक्षण-विचारके ये दो सिरे हैं, जिन्हें जोडकर समग्र शिक्षणकी रूपरेखा तैयार हो जाती है ।

* * *

सितम्बर '५५ के अन्तिम सप्ताहमें कुजेन्द्रीमें एक दिन दोपहरके समय सिद्धराज भाईने छेड़ही तो दिया यह प्रसग ! पूछा : "बाबा, आप कहते हैं कि गाँवमें रोज चलनेवाली एक घण्टेकी पाठशाला पर्याप्त है । क्या इतनेही समयमें बच्चोंको पूरा ज्ञान दिया जा सकता है ? गाँवके निवासी शारीरिक दृष्टिसे जिस तरह अधभूखे (under-fed) हैं, क्या उसी तरह सिर्फ एक घण्टेकी पढ़ाईसे वे मानसिक दृष्टिसे भी अधभूखे नही रह जायेंगे ?"

बाबा बोले : बच्चोंके शिक्षणके लिए रोज एक घण्टेका बौद्धिक वर्ग पर्याप्त है । यों तो शिक्षक भी गाँवके अन्य लोगोंकी भाँति अपने उद्योगसे अपना भरण-पोषण करनेवाला होगा, इसलिए बाकीके समयमें भी उसका और गाँववालोंका जीवित सम्पर्क रहेगा और बच्चे उससे कुछ-न-कुछ सीखते ही रहेंगे, पर इस बातको छोड़ भी दें तो भी बच्चोंके लिए एक घण्टेका नियमित पाठ काफी है । मैंने तो एक सिद्धान्त ही बनाया है कि शरीरको भोजन पहुँचानेमें, खानेमें जितना समय लगता है, बुद्धि और मनको खुराक पहुँचानेके लिए भी, शिक्षाके लिए भी, उतना ही समय काफी है । बाकी समय तो खाये हुए भोजनको पचानेमें लगता है । दिनमें हम तीन बार खायें तो भी भोजन करनेमें कुल डेढ़ घण्टेसे ज्यादा नहीं लगेगा । तो बुद्धिको भोजन देनेमें भी उससे ज्यादा वक्त नहीं लगना चाहिए । अच्छी तरह पढाया जाय तो घण्टे भरमें बच्चोंको इतना ज्ञान दिया जा सकता है कि जिसे पचानेके लिए, जिसका मनन और अभ्यास करनेके लिए उन्हें काफी समय चाहिए ।

इसके साथ-साथ हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि शिक्षाका अर्थ जानकारी देना नही है, जैसा कि आजकल माना जाता है। शिक्षाका अर्थ है, बच्चेमें ज्ञान प्राप्त करनेकी शक्ति पैदा करना।

फिर हमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि आजकल जो स्कूल पांच घण्टे चलते हैं, उनमें सालमें पांच महीने तो छुट्टी ही रहती है। इसलिए उनमें पढाईके घण्टे पांचके बजाय ढाई ही मानने चाहिए। बीच-बीचमें छुट्टी होते रहनेसे बच्चेको ग्रहण करनेमें भी ज्यादा समय लगता है। हमारी पाठशाला तो रोज् एक घण्टे चलेगी और आजकलकी प्रायमरी पाठशालाओंकी अपेक्षा उसके शिक्षक भी अधिक योग्यतावाले होंगे। इसलिए कुल मिलाकर एक घण्टेका शिक्षण कम नही रहेगा।

*　　　*　　　*

“पर यह एक घण्टेका शिक्षण ‘उच्च शिक्षा’ की तैयारीके लिए भी काफ़ी होगा क्या ?”

बाबा मैंने तो बच्चोंको सीधे-सीधे उपनिषद्की शिक्षा दी है। इस तरह नित्य एक घण्टेके पाठसे ऊंचेसे-ऊंचा ज्ञान दिया जा सकता है। पर ‘एक घण्टेकी पाठशाला’ की मेरी कल्पना तो बुनियादी या प्राथमिक शिक्षणके लिए है। हमें देखना यह है कि जितनी तैयारी आजके स्कूलोंमें ५ घण्टेकी पढाई द्वारा होती है, उतनी तैयारी हमारी एक घण्टेकी पाठशालासे होती है या नही।

इसके अलावा मैं यह मांग तो करता ही हूं कि “गांव-गांवमें विश्वविद्यालय” होना चाहिए। एक घण्टेकी पाठशाला तो सामान्य व्यापक शिक्षणके लिए है। पर गांवोंमें सिर्फ इतनेसे हमारा काम नही चलेगा। जन्मसे लेकर मृत्युतक जब लोग हर गांवमें रहते हैं और सारे काम होते हैं, तो हर गांवमें पूरे शिक्षणकी व्यवस्था भी होनी चाहिए। यह क्या कि साधारण शिक्षा गांवमें मिले, उससे ऊंची जिलेमें और उससे ऊंची बड़े शहरमें और सबसे ऊंची और कहीं ! उस तरहकी योजना ही ग़लत है। जब जन्मसे लेकर मृत्युतक सारे काम गांवमें चलते हैं तो सब प्रकारके

शिक्षणके साधन भी वहाँ मौजूद ही हैं। मेरी मान्यता है कि गाँव-गाँवमें विश्वविद्यालय जैसी उच्च शिक्षाका प्रबन्ध हो सकता है और होना चाहिए।

* * *

"आपके कथनानुसार ऊँचेसे-ऊँचे तत्वज्ञान या समाज-शास्त्रके ज्ञानके लिए तो हर गाँवमें व्यवस्था हो सकेगी, पर जिसे हम विज्ञान कहते हैं उसका, उच्च 'टेकनिकल' शिक्षणका और Research (अनुसधान, शोध) का प्रबन्ध गाँव-गाँवमें कैसे सम्भव है? हर गाँवमें उसके लिए साधन कहाँसे आयेंगे?"

बाबा : गाँव-गाँवमें विश्वविद्यालयसे मेरा आशय यह नहीं है कि हर गाँवमें हर चीज़का पूरा ज्ञान प्राप्त करनेकी व्यवस्था होगी। आजके विश्वविद्यालयोंमें भी ऐसा कहाँ सम्भव है? हर विश्वविद्यालयमें हर Faculty, हर विषयके उच्च शिक्षण और Research (शोध) की व्यवस्था नहीं रहती। दो विश्वविद्यालयोंमें अन्य व्यवस्था समान रहनेपर भी विद्यार्थी वहीं जाते हैं, जहाँ अपेक्षित विषयका गुरु अधिक योग्य होता है। इसी तरह गाँवोंके विश्वविद्यालयोंमें होगा।

सामान्यतः उच्चतम शिक्षणकी व्यवस्था हर जगह रहेगी, पर जहाँ जंगल अधिक हैं, वहीं 'जंगल शास्त्र' या 'लकडी शास्त्र' या 'औषधि-विज्ञान' की Faculty रहेगी। वहीं उस विषयके विशेष अध्ययनका प्रबन्ध रहेगा। ऐसी व्यवस्था सब जगह नहीं हो सकेगी।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि बहुतसा उच्च ज्ञान भी सबका सब भौतिक साधनोंपर अवलम्बित नहीं रहता। जैसे, ज्योतिष शास्त्र है। उसके लिए रोज़ दूरबीनसे देखनेकी ज़रूरत नहीं। ज्योतिषका अध्ययन हर गाँवमें हो सकता है। दूरबीन किसी केन्द्रीय स्थानपर रखी जा सकती है और ज़रूरत पड़नेपर वहाँ जाकर उसका उपयोग किया जा सकता है।

रही बात Research (शोध) की। उसके लिए तीन बातें ज़रूरी हैं :

(१) दार्शनिक वृत्ति,

(२) हाथोंसे काम करनेका अभ्यास और कुशलता,

(३) भौतिक साधन।

गांवोंमें दार्शनिक वृत्तिके निर्माणमें कोई रुकावट नहीं है।

काम करनेकी कुशलताके लिए वहां पर्याप्त अवकाश है ही। कारण, वहां हर काम लोग अपने ही हाथसे करते हैं।

अधिकाश भौतिक साधन भी वहां उपलब्ध हैं, क्योंकि हमारी सृष्टि वहां खुली पडी है। जो साधन सब जगह उपलब्ध नही हो सकते, उनकी चर्चा हम करही चुके हैं।

इस तरह गांव गांवमें सम्पूर्ण, यानी ऊँचीसे-ऊँची शिक्षा और Research (शोध) का अवकाश है और हर गांवमें उसका प्रबन्ध होना चाहिए। इसका श्रीगणेश गांव-गांवमें एक घण्टेकी पाठशालासे होना चाहिए।

* * *

ऐसी है बाबाकी एक घण्टेकी पाठशालाकी और गांव-गांवमें विश्व-विद्यालयकी योजना।

स्पष्ट है कि देशके कोने-कोनेमें बिना किसी विशेष खर्चके यह योजना चालू हो सकती है और सारा देश चन्द दिनोंमें ही शिक्षित हो सकता है।

* * *

२९ सितम्बर, '५५।

कुजेन्द्रीके आदिवासी विद्यालयमें हमारा निवास था।

उस दिन शिक्षकोंने बाबासे पूछ दिया कि विद्यालयका कार्यक्रम कैसा हो? शामका उनका प्रार्थना-प्रवचन इसी विषयको लेकर हुआ।

बाबा आनन्दकी भावनामें विभोर होकर बोले :

"विद्यालयमें परमेश्वरका आनन्द-स्वरूप प्रकट होना चाहिए। ईश्वरके रूप तो अनत हैं, पर उसके तीन रूप बडे प्रसिद्ध हैं—एक है सत्य, दूसरा है चित् याने ज्ञान और तीसरा है आनंद। कर्मयोगमें और समाजमें, जीवनमें, सत्य प्रधान होता है। ज्ञानियोंकी गुहामें और विद्वानोंके पुस्तकालयमें ज्ञान प्रधान होता है और भक्ति मार्गमें आनद प्रधान होता है।

विद्यालयका अर्थ है भक्ति मार्ग। याने, यहां जो चीज़ की जायगी, वह आनदके लिए ही की जायगी। खानेमें तो जो भक्ति मार्ग से बाहर हैं, वे भी आनद महसूस करते हैं, परन्तु रसोईमें वे आनन्द नही महसूस करते। लेकिन शालामें तो बच्चे आनंदके लिए रसोई बनायेंगे। उसमें उन्हें खूब आनन्द आयेगा। रोटी कैसी फूलती है, यह देखकर उन्हें बहुत आनन्द आयेगा। लकडी जल रही है और दूध उफन रहा है, यह देखनेमें उन्हें बडा मज़ा आयेगा। यों गोल-गोल घुमाते हैं तो रोटी कैसे गोल बनती है, चावल पकते हैं तो पतीलीमें कैसे नाचते-कूदते हैं, यह सब देखनेमें बच्चोंको बहुत मजा आयेगा। यह सारा आनन्द उपभोग करनेके लिए लोग रसोई करेंगे और खायेंगे भी आनन्दके लिए। आनंदके लिए नाप-तौलकर खायेंगे। नाप-तौलके अगर तरकारीमें नमक नहीं डाला, बहुत नमक डाल दिया तो आनन्द कैसे मिलेगा? तरकारी तो तब अच्छी लगती है, जब नाप-तौलकर उसमें नमक डालते हैं। भोजनको पेटमें जैसे-तैसे ठूंस दोगे तो फिर आनद नही होगा। पेट दुखेगा, फिर रोना पड़ेगा। फिर डाक्टरको बुलाना होगा। यह सब तकलीफ हम भोगना नही चाहते। हमारा भोजन आनन्दके लिए होगा। दूसरे लोग खाते हैं, तो उन्हें बहुत तकलीफ होती है, वैसा हम नही करेंगे। भोजनके बाद हम बड़े मजेमें बर्तन मांजेंगे।

ये आलसी लोग रातको दस-दस, ग्यारह-ग्यारह बजे तक जागते हैं। सिनेमा देखते हैं और कष्ट सहन करते हैं। वैसा कष्ट हम नही सहन करेंगे। हम ठीक आठ बजे प्रकृतिकी गोदमें आनंदके लिए सो जायेंगे। और ये अभागे लोग रातको देरी से सोयेंगे, फिर सपने देखेंगे, मानो राक्षस उनकी छातीपर बैठा हो। हम तो ऐसी सुदर निद्रा लेंगे कि सपना ही नही देखेंगे, बड़ा आनन्द आयेगा। हमारा कार्यक्रम बड़े आनदका होगा। साढ़े आठ बजे घंटी बजी कि हम फौरन सोयेंगे।

चार बजे सुबह उठनेका कार्यक्रम भी कितने आनदका है! ठंडमें उठेंगे तो दौड़ेंगे। ठंड भी दौड़ेगी। सुबह उठनेमें और दौड़नेमें उत्साह

आता है। इसलिए सुबह उठनेका आनद और फिर दौडनेका आनद हम नही छोडेंगे। सूर्योदयके बाद शरीर स्वच्छ करेंगे। आंख, कान, नाक धोयेंगे। शरीरको स्वच्छ निर्मल किये बिना खायेंगे नही। स्वच्छ होकर थोडा जलपान करेंगे। उसके बाद कुदाल लेकर मजेमें खेतमें जायेंगे, खूब खेती करेंगे। बोना है, पौधेमें पानी देना है, कही काटना है, कही इधरकी मिट्टी उठाकर उधर डालनी है। टीला तोडकर सब समान बनाना होगा। बचपनमें ही यह काश्त करनेका आनद सीखोगे तो बडे होकर यह दूसरा आनद भी मिलेगा। फिर थोडा पढनेका आनद होगा, लिखनेका आनन्द होगा, कुछ थोडा याद रखनेका आनद होगा, संगीत पढनेका आनन्द होगा, चित्रकलाका आनन्द होगा। इस तरह कुल मिलाकर चौबीस घटे आनदका कार्यक्रम होगा। इसे कहते हैं—भक्तिमार्ग, और यही विद्यालयका कार्यक्रम होगा।

अभीतक तो ऐसा चलता है कि बच्चोंको आठ घण्टे मिलमें ठूंसकर, खानोंमें डालकर, उनसे काम लेते हैं। याने सुबह आठ बजेसे शामके चार बजेतक दुःखका कार्यक्रम। और उसके बाद कहते हैं, एक घटा आनद करो और खेलो। ये लोग छः दिन बच्चोंसे भी काम लेते हैं। स्कूलमें न हाथको काम है, न पांवको। सिर्फ बैठे रहते हैं। स्कूलमें पांच-पांच घटे बैठनेसे बेचारे बच्चे तग आ जाते हैं। छः दिनका स्कूल होता है, तो फिर ये लोग समझते हैं कि दे दो इन्हें एक दिनकी छुट्टी। याने छः दिन खुट्टी और एक दिन छुट्टी। हम कहते हैं—यह हमारा स्कूल नहीं है। हमारे यहां छुट्टी नही रहेगी, क्योंकि हमारे यहां खुट्टी नहीं रहेगी। इस तरहसे हमारा जीवनका आनन्दमय कार्यक्रम रहेगा।"

* * *

कौन न लेना चाहेगा शिक्षाका ऐसा आनन्द?

बड़ोंका जमघट होनेपर— : १५ :

विनोबा भूमिहीनोंका मसीहा है।

विनोबा ग़रीबोंका हमदर्द है।

विनोबा पीड़ितोंका प्रतिनिधि है।

इसलिए यह स्वाभाविक है कि दीन और दुःखी, शोषित और उत्पीडित, गरीब और भूमिहीन उसके आसपास आ जुटें।

ये लोग तो बाबाको घेरे ही रहते हैं।

पर, इनके अलावा और भी बहुतसे लोग बाबाके पास जब देखिये मँडराते रहते हैं।

और इन लोगोंमें वे सब होते हैं, जिन्हें आज समाज 'बड़ा' मानता है।

अर्थात् ?

बड़े-बड़े राजपुरुष, बड़े-बड़े अधिकारी, बड़े-बड़े नेता।

राजा और रईस, सेठ और साहूकार, जमींदार और तालुकेदार आदि आदि।

* * *

आज राष्ट्रपति बाबासे मिलने आ रहे हैं।

आज भारतके प्रधानमंत्री बाबासे मिलने आ रहे हैं।

आज कांग्रेसके अध्यक्ष बाबासे मिलने आ रहे हैं।

आज केन्द्रीय सरकारके अमुक मंत्री आ रहे हैं, तो कल किसी प्रांतीय सरकारके मुख्य मंत्री या अर्थमंत्री।

कभी राजेन्द्रबाबू आ जाते हैं, तो कभी ढेबरभाई।

कभी जवाहरलाल आ जाते हैं, तो कभी जयप्रकाश नारायण।

कभी कोई, तो कभी कोई।

कभी सर्व-सेवा-सघके नेता आजाते हैं, तो कभी हरिजन-सेवक-सघके। कभी खादी-बोर्डके तो कभी और किसीके।

कभी गाधी-स्मारक-निधिके अधिकारी आ जाते हैं, तो कभी कस्तूरबा-स्मारक-निधिके।

जब देखिये, बाबाके पास ऐसे बडे लोगोंका जमघट लगा ही रहता है।

सभी ऐसा महसूस करते हैं कि विनोबासे बिना मिले, विनोबासे बिना बात किये देश और समाजकी विषम समस्याएँ हल हो नही सकतीं।

बापूके बाद आज विनोबाको छोडकर देशका तटस्थ मार्गदर्शक और है कौन ?

* * *

६ मार्च, १९५६।

माधवराव पल्ली : महबूबनगर : हैदराबाद।

आज जवाहरलाल आनेवाले हैं।

भारतकी जनताके लिए 'जवाहर' शब्दमें जादूका असर है।

'मोतीकी आँखोंका तारा जवाहर' जनताकी आँखोंका भी तारा है!

'जवाहर' के लिए मैंने देखा है कि मूसलधार वर्षामें लोग घण्टों भीगते खडे रहते हैं।

चिलचिलाती धूपमें, तपती चट्टानोंपर अडिग बने डटे रहते हैं।

पुलिसके डण्डे बरसते हैं, 'बैटन' चलते हैं, अन्धाधुन्ध चलते हैं, पर मजाल क्या कि जनता टससे मस हो जाय। यह बात दूसरी है कि वह इधर-उधर दो-चार क़दम हट-बढ भले ही जाय, पर 'जवाहर' को देखे बिना, 'जवाहर' को सुने बिना, वह घर लौट नहीं सकती।

माधवराव पल्लीमें भी उस दिन यही हुआ।

पुलिस हैरान।

रक्षाके जिम्मेदार अधिकारी हैरान।

'बैटन' की मार बेकार।

दो-दो दफा बाबाका भाषण सुनकर भी जनता तृप्त नहीं हुई। वह घरकी ओर नहीं मुड़ी, नहीं मुड़ी।

और जैसे ही 'जवाहर' आया, जनता दौड़ ही तो छूटी उसके आसपास!

'जवाहर' ने सबसे पहले उसीका अभिवादन किया और तब वह गया बाबाके पास।

*　　*　　*

बाबासे देरतक उसकी बातें हुईं—एकान्तमें।

पर, जनता आसपास डटी थी।

और किसीकी बात सुननेके लिए वह तैयार ही नहीं थी।

जवाहरने बाहर निकलकर देखी यह स्थिति और बोला: 'चलो, मैं जनतासे बोलूंगा दो चार मिनट।'

बाबाके साथ वह दौड पड़ा सभास्थलकी ओर। ऊँची-ऊँची चट्टानें, बड़े-बड़े पत्थर पड़े थे मार्गमें और जवाहर उछलता-कूदता चल रहा था मस्तीसे। हम सब पीछे दौड़ रहे थे कि सुनें, जवाहर जनतासे कहता क्या है!

*　　*　　*

जवाहर जा खडा हुआ स्टेजपर।

"जवाहरलालकी जय", "नेहरूकी जय" के गगनभेदी नारोंसे सारा वातावरण गूंज उठा।

और उसने एक 'माइक' अपने हाथमें ले लिया।

दूसरा बढा दिया—वी० रामकृष्ण रावकी ओर।

जवाहरने शुरू किया बोलना। वी० रामकृष्ण राव करने लगे उसका अनुवाद तेलुगुमें:

"आज मैं यहांपर आचार्य विनोबाजीसे मिलने आया हूं। खुशी हो रही है कि मुझे उनसे बात करनेका मौक़ा मिला। आप सब प्रेमसे यहाँ आये हैं, इसलिए मेरी इच्छा हुई कि आपसे भी कुछ बातें कर लूं। मैंने

सुना कि आज सुबह विनोबाजीने दो बार आपसे कुछ कहा और अपना संदेशा सुनाया। आप सब बातें उनसे सुन चुके हैं, तो मैं और क्या कहूं? सिवा इसके कि, मुझे बहुत खुशी हो रही है कि यहांकी जनताको उनका संदेशा सुननेको मिल रहा है। **विनोबाजीका संदेशा देशभरके लिए है। उसे सुनकर देश उसपर चले तो देशका कल्याण होगा।**

लोग जानते हैं कि हमारा देश बहुत बडा है। ऊपर हिमालय पहाडसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारीतक अनेक भाषाएं हैं। परंतु हम सब एकही परिवारके हैं। चाहे हम उत्तरमें रहें या दक्षिणमें, पर हम एक हैं। हम सबको मिलकर शान्तिसे काम करना है। इस तरह कि, जनताकी उन्नति हो और देश आगे बढे। हमारे देशमें ३६ करोड लोग हैं, उन सबकी उन्नति हो। हमारे सामने बहुत बडे-बडे मसले हैं, लेकिन सबसे बडा मसला जमीनका है। अगर वह मसला ठीक तौरसे हल नहीं होता है तो और भी मसले गडबडा जाते हैं। इसलिए हमें पहले उस मसलेको हल करना है और लोगोंको ज्यादासे-ज्यादा जमीन देनी है। वैसे हमारे देशमें इतनी जमीन है ही नहीं कि सबको मिल सके, फिर भी ज्यादासे-ज्यादा जमीन देनी है। और बहुत सारे काम करने हैं। उद्योग करने हैं, नया धान और सामान पैदा करना है, जिससे कि देशका कल्याण हो।

अब मुझे बहुत दूर जाना है, इसलिए आपसे आज्ञा लूंगा। सिर्फ एकही बात कहूंगा कि हमारे देशमें हम एकही तरहसे आगे बढ सकते हैं, हम मिलकर काम करें। यहां आन्ध्र और तेलगाना पास-पास हैं। अब तो वे दोनों मिल जायेंगे। परंतु अलग-अलग प्रदेश होनेपर भी हम अलग-अलग नहीं हैं। अलग प्रदेश तो शासनके लिए बनाये गये हैं। असलमें हम सब भारतमें रहते हैं, इसलिए प्रेम और सहयोगसे रहें। विनोबाजी यहां हैं। मैं आशा करता हूं कि आप उन्हें उनके भूदानके कार्यमें और दूसरे भी कामोंमें पूरी मदद देंगे। जयहिन्द।"

* * *

फरवरी '५६ के आरम्भमें कन्याकुमारीमें अखिल भारत भूदान पदयात्राका उद्घाटन करके राष्ट्रपति जब लौटने लगे, तो उन्होंने सोचा कि हैदराबादमें बाबासे क्यों न मिलते चलें।

और वे आ गये हम लोगोंके बीच।

सायंकालीन प्रार्थनाका समय था। जनताको दुहरी खुशी हुई, जब उसने बाबाके बाद राजेन्द्रबाबूके मुखसे भी भूदानका संदेश सुना।

*   *   *

कुजेन्द्रीमें जब कोरापुटके नवनिर्माणका प्रसंग छिडा, तो बडोंका खूब ही जमघट रहा।

एक हफ्ते खूब हलचल रही।

प्रातः-भ्रमणसे लेकर रातके सोनेतक लगातार चर्चाएँ चलती, विचार-विनिमय चलता, भाषण और व्याख्यान चलते।

*   *   *

और अडोनीमें!

मार्च '५६ का अन्तिम सप्ताह।

यहाँकी रौनकका तो कहना ही क्या!

दो मुख्य प्रश्न थे सामने : अम्बर चरखा और पंचवर्षीय योजनापर सर्वोदयकी दृष्टिसे विचार।

सर्वोदयी विचारक तो इस सत्संगमें थे ही; सर्वोदयसे दिलचस्पी रखनेवाले भी कितने ही भाई बुला लिये गये थे।

इनमें धीरेन भाई भी थे, शंकरराव देव भी; अण्णासाहब सहस्रबुद्धे भी थे, जयप्रकाश नारायण भी, ढेबर भाई भी थे, कुमारप्पा भी; वैकुण्ठलाल मेहता भी थे, रावसाहब पटवर्द्धन भी; दादा धर्माधिकारी भी थे, आशा देवी आर्यनायकम् भी; एन० एम० जोशी भी थे, स्वामी रामानन्द तीर्थ भी; सिद्धराज ढड्ढा भी थे, करण भाई भी।

और यह तो है ही कि "वादे वादे जायते तत्त्वबोधः।"

२४ मार्च '५६ को खूब जमकर चर्चाएँ चलीं। दिनमें दो बार—सुबह और तीसरे पहर।

इन चर्चाओंमें कुछ वक्ता सौम्य थे, कुछ उग्र। कोई मीठी चुटकी लेते थे, कोई 'खरी बात' सुनाते थे। वातावरण कभी गम्भीर हो उठता, कभी विनोद-पूर्ण, कभी शान्त, कभी तरल।

* * *

धीरेन भाईने इस बैठकका उद्देश्य बताते हुए अण्णासाहबसे कहा कि वे अम्बर चरखेके सम्बन्धमें कुछ कहें।

अण्णासाहबने बताया कि पुरी सम्मेलनमें बनी अम्बर समितिने अबतक क्या किया और अम्बर चरखेके निर्माण, विकास और प्रयोगमें कैसी प्रगति हुई है। अन्तमें आपने कहा कि देशके विभिन्न भागोंमें अब तक अम्बर चरखेके जो प्रयोग और परीक्षण हुए हैं, उनका परिणाम अत्यन्त आशाजनक है। परिश्रमालय बुनकरोंके मुहल्लोंमें भी खोले गये हैं, पुराने खादीकेन्द्रोंमें भी और २०, २५ केन्द्र ऐसे स्थानोंपर भी हैं, जहाँ पहलेसे ऐसा कोई वायुमण्डल नहीं रहा है, यहाँ तक कि जहाँ पहले कोई कातना भी न जानता था। प्रसन्नताकी बात है कि सभी क्षेत्रोंका निष्कर्ष आशावर्द्धक है। अब अम्बर समितिका मानस ऐसा है कि लिखित रिपोर्ट अभी भले ही नहीं मिली, पर हमारा प्रयोग तो सफल हो चुका। अब हमें इसे समाप्त करना चाहिए और खादी बोर्ड, अथवा अन्य संस्थाओंको इसे अपना लेना चाहिए।

* * *

बैकुण्ठ भाईने अम्बर चरखेके परीक्षण, कर्वे कमेटी और सरकारी रुख आदिकी विस्तारसे चर्चा करते हुए कहा कि ५ सालके बाद कपड़ेकी सारी आवश्यकता अम्बर चरखेके सूत और हाथ करघेसे बने कपड़ेसे पूरी करनेके लिए २५ लाख अम्बर चरखे चाहिए। इसके उत्पादनमें बहुत बड़ी रकम लगेगी। यह बहुत बड़ा काम है। सर्व-सेवा-संघ और चरखा संघवालोंके सहयोगके बिना यह काम सफल नहीं हो सकता। अम्बर चरखेको सफल बनाना निष्ठावानोंका काम है।

* * *

ढेवर भाईने कहा कि हमें यह मानकर चलना चाहिए कि सरकारी कमेटीकी रिपोर्ट अनुकूल ही होगी। यदि वह अनुकूल न हो, तो भी हमें चाहिए कि हम इसे उपयोगी मानकर आगे बढायें। खादी-बोर्डकी बेकारी-निवारणकी योजना तो है ही; पर विकेन्द्रीकरणकी दृष्टिसे क्या करना चाहिए, यह बात भी ध्यानमें रखनी है। अम्बर चरखेके लिए पर्याप्त मिस्त्री और परिश्रमालयोंके लिए योग्य मैनेजर तो चाहिए ही, यह भी आवश्यक है कि इन सबकी दृष्टि विकेन्द्रित उद्योग-व्यवस्थाकी ओर हो। खादीके कामके पीछे जो एक सिद्धान्तहै, वह हमें नही भुलाना है। अम्बर चरखेका सूत मँहगा भी पड़े, फिर भी लेना है,—इस दृष्टिको अपनाये विना अम्बर चरखा सफल नही हो सकता।

ढेवर भाईने यह भी कहा कि अम्बर चरखेको राजनीतिक दलोंका सहयोग तो चाहिए, परन्तु यह काम उनके मार्फत होना ठीक नही लगता। यों, कांग्रेसकी ओरसे मैं इसके लिए तैयार हूं। पर, अच्छा हो यदि सबका मिला-जुला संयुक्त प्रयत्न रहे, जिसमें किसीको कोई शिकायत न रहे।

* * *

अम्बर चरखेके बारेमें उस समयतक सरकारी दृष्टिकोण कुछ साफ नही हुआ था। [अब तो (सरकारी) अम्बर चरखा जांच (खेरा) समितिकी रिपोर्ट सामने आ चुकी है। उसने निर्णय किया है कि "हमारी अर्थ-व्यवस्थामें अम्बर चरखेका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और उसपर आधृत कार्यक्रमको पूरा समर्थन दिया जाना चाहिए।" सरकारने इस कमेटीके सुझावोंको मंजूर कर लिया है और उसके अनुसार इस वर्षके अन्ततक ७५ हजार अम्बर चरखे चालू हो जायंगे। समितिका मत है कि १९५७-५८ के लिए नये अम्बर चरखोंकी संख्या दो लाख तक हो सकती है।]

* * *

बाबा बोले : "परीक्षा और सद्भावनाके बावजूद विचारोंकी सफाई नही दिखाई पडती। विकेन्द्रित और स्वावलम्बी ग्राम-समूहका निर्माण किये बिना अहिंसक समाज बनना असम्भव है। स्वराज्यके समय खादीका प्रश्न निकला। उस समय अम्बर था नही। बापू चाहते थे कि उपलब्ध साधनों-से ही जनताको स्वावलम्बी बनाया जाय। देहातोंके बारेमें यह नीति स्पष्ट थी कि वे अन्नके बारेमें ही नही, वस्त्रके बारेमें भी स्वावलम्बी बनें। पुराने चरखेसे ही जब हम वस्त्र-स्वावलम्बनकी बात सोचते थे तो अम्बरसे अब क्यों न ऐसा सोचें, जिसमें पुराने चरखेसे चौगुना सूत निकलता है ?

कोई उत्तम साधन निकले तो बाबा चरखेका अभिमान छोडनेको भी तैयार है। आप जबतक चाहें तबतक बेचारा चरखा आपको कपडा देगा, जब आप चाहें उससे चाय तैयार कर सकते हैं ! पर, विकेन्द्रीकरणका आग्रह बाबा छोडनेको तैयार नही।

अम्बर चरखेके बारेमें यह दावा किया जा सकता है कि इससे वस्त्र-स्वावलम्बन हो सकता है। सरकार इसे बढाना चाहे तो बढाये। सरकार इसे आगे न बढाये तो भी हमें कोई उज्र नही। हम समग्र-दानी गावोंमें इसका प्रयोग करेंगे। हम इसे *"राष्ट्रीय प्रोग्राम"* बनाना चाहते हैं। इसके प्रचारको हम पूरा जोर देना चाहते हैं। सरकार जैसा चाहे अपना निश्चय करे, पर हम यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानके लिए अम्बर चरखा जरूरी है।"

*　　　　*　　　　*

और बाबाने तो अम्बर चरखेको *'अम्बरावतार'* का नाम ही दे रखा है। अजितप्रसाद जैनसे कुर्नूलमें बात करते हुए उन्होंने कहा था : *"द्रौपदीकी लज्जा-रक्षणके लिए भगवान्‌ने यह ग्यारहवां अम्बरावतार ही धारण किया है।"*

और वह ऐसा है भी।

राजस्थानकी रिपोर्ट लीजिये :

एक भोली-भाली ग्रामीण महिलाको जब एक महीनेकी कताईके २५) मिले तो उसे विश्वास ही न हो सका कि यह उसकी कमाई है। उसकी आँखें इतने रुपये देखकर चकाचौंध हो गयी। शायद इतने इकट्ठे रुपये उसने जिन्दगीभरमें कभी न देखे थे। 'उसकी आँखोंसे आँसू बह चले और उसे चेतनता प्राप्त करने और यह महसूस करनेमें कुछ देर लगी कि उसके हाथमें जो रुपये हैं, वे उसीके हैं और वह अम्बर चरखेका तोहफा और उसकी ईमानदारीके परिश्रमका फल है।'[1]

एक अन्य प्रान्तकी एक बहन कहती है :

"हम ग़रीब हैं। हमारे घरमें बच्चे हैं। मेरे पति जितना कमाते हैं, उससे हमारी मोटी जरूरतें मुश्किलसे पूरी होती हैं। मैं अपने बच्चोंको अच्छी तरह कपड़े नहीं पहना पाती और न पाठशाला भेज सकती हूँ। मैंने अम्बर चरखेका प्रशिक्षण प्राप्त किया। अब मैं उसपर रोज काम करती हूँ और रुपये-बारह आने कमा लेती हूँ। अब अपने बच्चोंको पाठशाला भेज सकती हूँ और अम्बर चरखेकी कताईसे मिली मज़दूरीसे उनके लिए किताबें खरीद सकती हूँ। मैं बहुत खुश हूँ।"[2]

सरकारकी द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकी तो खूब ही छीछालेदर हुई उस दिन। सभीका मत था कि इससे सत्ता और धनका केन्द्रीकरण होगा और देहातकी ग़रीब जनताको इससे कोई लाभ मिलनेवाला नहीं।

अण्णा साहब बोले : इसमें मुश्किलसे एक करोड़ लोगोंको पूरा काम मिलेगा। इससे विषमता भी बढ़ेगी, केन्द्रीकरण भी। औद्योगीकरणका मोहजाल है, द्वितीय पंचवर्षीय योजना।

* * *

---

१. 'खादी-ग्रामोद्योग' अक्टूबर १९५६, पृष्ठ ६।

२. वही।

रवीन्द्रने कहा ' सरकारी योजना है तो पूर्णतः निरर्थक, पर शब्द-जाल इसका बडा मोहक है।

*　　　*　　　*

जयप्रकाश बोले : रवीन्द्रने सरकारी योजनामें सर्वोदय ढूँढना चाहा है, पर भारत सरकारने तो कभी यह नही कहा कि सर्वोदय उसका लक्ष्य है। जवाहरलालने कहा है कि सर्वोदय वहुत ऊँची चीज है। हम वहाँतक नही पहुँच सकते। फिर भी वे उस दिशामें बढनेकी कोशिश कर रहे हैं। शासकोंमें सर्वोदयके प्रति श्रद्धा है, यह अच्छी वात है।

अहिंसक समाजका निर्माण कानूनसे नही हो सकता। काम करते हों शक्तिभर, लेते हों आवश्यकताभर—ऐसा है कहाँ ? नारा तो लगाते हैं *'इन्कलाब जिन्दावाद'* का, चाहते हैं I. A. S. (भारतीय एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस)। मिल-वांट करके ही हमें जीना चाहिए—ऐसा आदर्श लोगोंको जँचता ही नही।

केन्द्रित उद्योग—लोहा आदिका दायरा कमसे कम होना चाहिए। पचवर्षीय योजनामें उसका वडा स्थान है। आधा खर्च उसीपर है। इस वारेमें कांग्रेसको सोचना चाहिए। सरकार द्वारा नियन्त्रित उद्योग—Public Sector में कारखाने नौकरशाहीके जरिये चलाये जा रहे हैं। यह न तो राष्ट्रीयकरण है, न समाजवाद। जनतन्त्रके लिए यह वडा भारी खतरा है। इससे तो नादिरशाही ही फैलेगी। पूँजीवाद इससे क्या बुरा ? आज भी नौकरशाहीके हाथमें वहुत वडी ताकत है। रोटी देना भी उसके हाथमें हो, तव तो वहुत बुरा है। पब्लिक सेक्टर हो जानेसे ही शोषणका अन्त हो जायगा, ऐसा सोचना गलत है। रूस और सभी कम्यूनिस्ट देश इसके उदाहरण हैं।

*　　　*　　　*

जयप्रकाशने यह भी कहा कि योजनामें ५ सालमें २५% आयवृद्धि होनेकी वात कही गयी है। पर आय वढनेके साथ-साथ स्तर भी इतना

ही ऊँचा उठ जायगा, ऐसा जरूरी नहीं। स्तर तो तभी ऊँचा उठेगा, जब वितरण ठीकसे होगा। देहातवालोंका स्तर ऊपर उठानेका एक साधन है—कृषि-सुधार और ग्रामोद्योगोंका विस्तार। योजनामें इसके लिए बहुत कम गुंजाइश है। देशकी ८० फीसदी जनता देहातोंमें रहती है। उसकी दृष्टिसे योजनामें बहुत कम सोचा गया है।

*　*　*

ढेबरभाईने कहा : देशका आर्थिक संघटन हो रहा है। उसका समाजपर असर होता है। सरकारी पंचवर्षीय योजना चलानेकी नैतिक जिम्मेदारी कांग्रेसपर है। आवडीमें "समाजवादी पद्धति" पर "सर्वोदय पद्धति" का संशोधन आया था। पण्डितजीने और मैंने सफाई दी कि हम उस लक्ष्यतक नहीं पहुँच पाते।

योजनापर हमें सर्वोदयी दृष्टिसे सोचना चाहिए। प्रतिद्वंद्विता न हो, इस्पात आदिका जो उत्पादन हो, उसे कैसे काममें लायें आदि।

योजनामें १ करोड़ लोगोंको पूरा काम देनेकी बात है, पर इसका मतलब यह नहीं कि और सब लोग सर्वांशमें बेकार रहेंगे।

विनोबाका दृष्टिकोण हम अपने सामने लक्ष्यके रूपमें रखें और वहाँतक पहुँचनेकी चेष्टा करें। अपनी बातें सहानुभूतिपूर्वक सरकारको समझानेकी कोशिश करें।

*　*　*

कुमारप्पा साहब गरजे : "योजनाके निर्माता सत्ताका केन्द्रीकरण चाहते हैं। वे समझते ही नहीं कि हमारी समस्याएँ क्या हैं! योजनामें असंगतियाँ ही असंगतियाँ भरी पड़ी हैं। आजके जैसा औद्योगीकरण देशको बर्बाद कर डालेगा। हमें उसमें कोई मदद न देनी चाहिए। आज तो टी० टी० की तूती बोलती है। जिस दिन वे स्तीफा दे देंगे, मैं सैकड़ों बधाइयाँ भेजूँगा!"

*　*　*

सबसे अन्तमें बाबा बोले पंचवर्षीय योजनापर।

उसी योजनापर, जिसका प्रारूप भेट करते ही सर्वोदयके हामी, अन्त्योदयके हामी बाबाने श्रीमन्‌जीसे पूछा था :

"क्यों, अडतालीस अरब रुपयेमेंसे कितनी रकम दो हजारसे कम आबादीवाले गाँवोंपर खर्च होगी? और मेहतर जैसे पिछड़े वर्गोंकी हालत सुधारनेके लिए इसमेंसे कितना खर्च होगा?"

* * *

हाँ, तो बाबाने कहा :

"सरकारने सर्वोदय स्वीकार नही किया है। जरूरी है कि सबसे पहले उन लोगोंको सीधी मदद मिलनी चाहिए, जिनका स्तर सबसे नीचा है। ग़रीबोंके लिए, दरिद्रतम लोगोंके लिए, सबसे नीचे स्तरवालोंके लिए योजनामें कितना रुपया रखा गया है? सीधी-सी बात है कि आज करुणाका राज्य नही है। करुणामें आत्मरक्षाका विश्वास नही है। पर, हममें ऐसी श्रद्धा होनी चाहिए कि करुणासे हम शेरको भी दयालु बना सकते हैं। भगवान्‌की इच्छा है कि अहिंसाकी शक्ति बढे। ईश्वर प्रलय नही चाहता। अत. लोग हिंसासे अहिंसाकी' ओर आयेंगे। परिस्थिति हमारे साथ है। सरकार अम्बरको कुछ-न-कुछ प्रोत्साहन दे रही है। कृष्णमाचारी धीरे-धीरे इधर आ रहे हैं, खुशीकी बात है कि हम उधर नहीं जा रहे हैं।"

* * *

इस तरह बड़ोंका जमघट अक्सर ही लगा रहता है।

विनोबा जहाँ-जहाँ पहुँचते हैं, बड़े लोग ढूँढ ढूँढकर उनके पास पहुँचते हैं।

जो लोग कभी पैदल नहीं चलते, कार और हवाई जहाजसे, ताप-नियन्त्रित डिब्बे और फर्स्ट क्लासमे नीचे नहीं चलते, वे कंकड़ों और काँटोंमें विनोबाके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। जो फल और मेवा, मक्खन और घी, हलवा और मोहनभोग, रसगुल्ला और चमचम, दूध और मलाई छोड

दूसरी चीज़ें छूते नहीं, वे बाबाके साथ रूखी-सूखी महुएकी रोटी, साग और सत्तू खाते हैं और प्रेमसे खाते हैं।

क्यों?

इसीलिए कि, सब जानते हैं :

शाहोंको रोब और
हसीनोंको हुस्नोनाज,
देता हूँ जब कि देखूँ
नज़रको उठाके मैं!

○ ○ ○

योजन और नियोजन : १६ :

बहुत शोर सुनते थे
पहलूमें दिलका,
जो चीरा तो इक
कतरए खून निकला !!

भारी-भरकम मोटी रिपोर्टें।

बड़े बड़े आंकड़े।

बढ़िया मसविदे।

आकर्षक तस्वीरें।

मनोहर कल्पनाएं।

यह है हमारी सरकारी योजना।

*　　　　*　　　　*

प्रथम पचवर्षीय योजनामें १८ फीसदी,

द्वितीय पचवर्षीय योजनामें २५ फीसदी,

अगली चार योजनाओंमें १०० फीसदी,—यह क्रम है हमारी राष्ट्रीय आय बढ़नेका।

अर्थात्

सबकी आयमें इतनी वृद्धि होगी।

इसका सीधा-सादा अर्थ हुआ कि अगले ५ साल बाद आजके लखपतीके पास सवा लाख हो जायगा।

इसी अनुपातमें ग़रीबकी भी आय बढ़ेगी, ऐसा कहा जाता है।

पर, सोचनेकी बात है कि लखपती तो तभी मोटा होगा, जब ग़रीब और दुबले होंगे।

देशकी समृद्धि तो तभी हो सकती है, जब ग़रीबी बिल्कुल मिट जाय और सम्पत्तिके सम-वितरण बिना वह सम्भव ही कैसे है ?

पर हमारे राष्ट्रीय संयोजनमें, जहाँ केन्द्रीकरणपर ही सारा ज़ोर है—ऐसी सम्भावना कम है या यों कहिये बिल्कुल ही नहीं है।

*　　　　*　　　　*

एम्मीगनूर : कर्नूल : आन्ध्र।

१६ मार्च, १९५६।

बुनकरोंकी एक बड़ी बस्तीमें हमारा डेरा था।

बुनाईके बहुत अच्छे-अच्छे नमूने देखे हमने यहाँ।

मोटेसे लेकर बारीकतक, सभी किस्मके।

यहाँ बुनकरोंका सत्र भी है। बुनकर भाइयोंमें कुछ जाग्रति भी है।

उनके लिए क्वार्टर भी बने हैं, साफ-सुथरे, अच्छे, हवादार।

*　　　　*　　　　*

अम्बर चरखेका भी प्रशिक्षण यहाँ होता है।

तीसरे पहर बाबाके साथ-साथ हम लोग उसे भी देख आये।

और उसके बाद प्रार्थना-सभा।

सूती वस्त्र-उद्योग : ग्रामोद्योग : बुनाई : चरखा : करघा : बुनकर : सहकारी योजना : सवेरेसे ये ही विषय बाबाके मस्तिष्कसे टकराते रहे। फलतः आजका प्रार्थना-प्रवचन इन्हीं सब विषयोंको लेकर हुआ।

उसका मूल था : सरकारी संयोजन ; प्लानिंग।

*　　　　*　　　　*

बाबाने बताया कि हर देशका अपना अर्थशास्त्र होता है, पर यहाँका तो हाल ही दूसरा है। पश्चिमसे बना-बनाया अर्थशास्त्र हिन्दुस्तानमें Import (आयात) हुआ और उसी अर्थशास्त्रकी तालीम हमें दी जाती है। परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तानका राज चलानेवालोंका दिमाग़ आज स्पष्ट नहीं है।

वावाने कहा कि दुनियाभरके लोग जिस चीजको नही सोच सकते, वह चीज हिन्दुस्तानमें वनती है। पहली पचवर्षीय योजना यहाँ चलायी गयी, फिर भी वेकारी वनी रही। अब इसका कारण वे वताते हैं कि जनसख्या वढ रही है। तो मैं पूछता हूँ कि आप लोगोंने जब पहली योजना वनायी, तव क्या आपको इस वढती हुई जनसख्याका भान नही था ? या आपका ऐसा कुछ ख्याल था कि कोई आकस्मिक घटना घटेगी और जन-सख्या घट जायगी ? जनताकी तरफसे जिन लोगोंको योजना वनानेकी जिम्मेवारी सौंपी गयी, वे ही आज कहते हैं कि जनसख्या वढ रही है ! जहाँ Planning (सयोजन) होता है, वहाँ मान ही लेना चाहिए कि कितनी जनसख्या होगी। आज भी द्वितीय पचवर्षीय योजनामें ये लोग हिसाव करके वताते हैं कि ५ सालमें और कई काम वढ जायँगे। इसका मतलव है कि ये लोग Planning (सयोजन) करना नही जानते, गणित या हिसाव करना नही जानते। जितनी तादादमें जनसख्या वढेगी, अगर सिर्फ उतनी ही तादादमें काम वढेगा, तो हम जहाँके तहाँ ही वने रहेंगे।

योजना कैसी हो, इसकी चर्चा करते हुए वावाने कहा कि होना तो यह चाहिए कि हिन्दुस्तानके लोगोंको पेटभर खाना किस तरह हासिल हो, इसकी योजना की जाय। हमको तो आश्चर्य लगता है कि लोग दिल्लीमें वैठकर योजना वनाते हैं और देहातोंको कभी देखने भी नही आते। अग्रेजी भाषामें लिखे हुए इग्लैण्ड और अमेरिकाके वडे-वडे ग्रन्थ वे पढते हैं और उन ग्रन्थोंपर सारा दारोमदार रखते हैं।

'हम देशका जीवन-स्तर ऊपर उठाना चाहते हैं', योजना वनानेवालोंके इस दावेका पर्दाफ़ाश करते हुए वावाने कहा कि ये लोग कहते हैं कि हम हिन्दुस्तानके जीवनका स्तर ऊँचा उठाना चाहते हैं। ठीक है, पर जीवनका स्तर ऊँचा उठानेके लिए इस शरीरमें जीवन भी रहने दोगे या नही ? इस शरीरको जिन्दा रहने दोगे या नही ? या जीवनको शरीरसे भी ऊँचा उठा दोगे ? पहले हिन्दुस्तानके शरीरको टिकानेकी वात भी तो सोचो ! फिर यह सोचना कि क्या ज्यादा खाना है, क्या ज्यादा पीना है, क्या ज्यादा पहनना है ! हर देशको सोचना चाहिए कि उसकी असली हालत क्या है। पहली

आवश्यकता तो यह होनी चाहिए कि हर घरमें पूरा खाना हो। लेकिन यहां तो हमारे घरमें पूरा खाना ही नही है और कहते हैं कि तेरे घरमें Culture (संस्कृति) नही है! तेरे घरमें पियानो कहाँ है! सवाल है कि मैं पहले पानी पीऊँ कि पियानो बजाऊँ? चाहिए तो यह कि पहले पानीका इतजाम हो, फिर केलेका और तब पियानोका।

*   *   *

आज 'परस्परावलम्बन' की जो बात कही जाती है, उसकी विवेचना करते हुए बाबा बोले : हिन्दुस्तानमें ४० साल तक स्वदेशी आन्दोलन चला। महात्मा गांधीने उसपर ज्यादासे ज्यादा जोर दिया और जाहिर किया कि अपने देहातोंमें पैदा की हुई चीज़ सौ-फीसदी स्वदेशी है। लेकिन स्वराज्य-प्राप्तिके बाद स्वदेशी-परदेशीका विचार ही खत्म हो गया और आज जब हम स्वदेशीकी बात करते हैं तो कहते हैं कि ऐसी सकुचित भावना क्यों रखते हो, हमको विश्वात्मा, उदारात्मा बनना चाहिए! हमें आश्चर्य लगता है कि ये लोग हमें वेदान्त सिखाने जा रहे हैं! हम स्वदेशी धर्मका पालन करते हैं, तो उसमें परदेशका नुकसान क्या है? हर गांवके लोगोंको पूरा खाना मिले, अपना-अपना कपड़ा वे तैयार कर लें, अलग-अलग तालीम मिले, इस तरहकी योजना गांवमें हो, तो इसमें दूसरे देशके हितके साथ विरोध कहाँ होता है?

*   *   *

हमारी अक्लपर कैसा पर्दा पड़ गया है, यह समझाते हुए बाबाने कहा कि यह सही है कि हम गांवकी स्वयपूर्णताकी बात करते हैं, लेकिन हम यह तो नही कहते कि बाहरकी कोई चीज़ गांवमें आवे ही नही। लेकिन शहरवालोंकी अक्ल तो देखो कि उन्होंने गांवोंके धन्धे तोड़नेका ही धन्धा उठा लिया है। गांवमें गेहूँ, चावल, तेल, कपास पैदा होती है, तो इन लोगोंने आटेकी, चावलकी, तेलकी, कपड़ेकी मिलें शुरू कर दीं! याने गांवके धन्धोंको इधर लूटेंगे और उधर बाहरका माल आता ही रहेगा, तो उसे भी नही रोकेंगे! इससे शहरोंपर बाहरके देशोंके मालका

हमला जारी रहेगा और देहातोंका माल भी शहरोंमें जायगा। इस तरह वे दोनों तरफसे पीसे जायँगे। होना तो यह चाहिए कि गाँवके कच्चे मालका पक्का माल गाँवमें ही बने और शहरवाले ऐसे उद्योग करें कि जिनसे परदेशसे आनेवाले मालका आना रुके। शहरवाले घड़ी, चश्मा, थर्मामीटर, फाउण्टेनपेन, लाउडस्पीकर आदि बनानेमें क्यों न अपना पुरुषार्थ दिखायें? दालका कारखाना खोलनेमें कौनसी अक्ल लगानी पड़ती है? देहातके लोगोंके धंधे मारना और फिर परस्परावलम्बनकी बात करना, इसमें कौनसी अक्ल है?

*   *   *

बुनकरोंकी समस्यापर बोलते हुए बाबाने कहा : प्राचीन कालसे बुननेकी कला हिन्दुस्तानमें विकसित होती चली आयी है और हिन्दुस्तानका इतिहास इस बातका साक्षी है कि यहाँके बुनकर किस तरह उत्तम कारीगरी करते थे। परन्तु जबसे मिलें आयीं, तबसे इस धंधेको ठेस लगी। स्वराज्य आनेके बाद भी मजदूरों और बुनकरोंकी बड़ी उपेक्षा रही। अंग्रेजी अर्थशास्त्र पढ़कर हमारे राज चलानेवाले अगर कर पाते तो यहाँ तक करते कि मिलोंको ही बढ़ावा देते जाते और बुनकरोंको कोई दूसरा काम दे देते! लेकिन परिस्थितिके कारण वे बेचारे बिलकुल लाचार हैं। ग्रामोद्योगोंकी शरणमें उन्हें आना ही पड़ता है। फिर भी उनके दिमागमें पूरी सफाई नहीं आयी है। लेकिन यदि हम गाँवके उद्योग हजम न कर सकें, जो कि कारीगरोंको हस्तगत हैं, तो हम इसे अक्षम्य अपराध गिनेंगे। एक बड़े जिम्मेदार महामन्त्रीने यहाँ तक घोषणा की थी कि "पुराने धंधे नहीं टिकेंगे, तो उन्हें टिकानेकी कोशिश भी हम क्यों करें? हम नये धंधे ही ढूँढ लेंगे।" अब जो धंधा कुशलतापूर्वक यहाँ चल रहा है, जिससे करोड़ों आदमियोंका पोषण हो रहा है, जिसके पीछे हजारों वर्षोंकी परम्परा है और जिसके लिए सरकारको एक कौड़ीका भी खर्च नहीं लगता है, उस धंधेकी पर्वाह न करते हुए लोगोंको दूसरा धन्धा देनेकी बात ये करते हैं!

*   *   *

यंत्रोंका विरोध करते हुए बाबाने कहा कि जहाँ जनशक्ति अधिक है, वहाँ उसे बेकार बनाकर यन्त्रोंसे काम लिया जाता है और लोगोंको रोजीसे वंचित किया जाता है तो बाबा उसे 'अधर्म' समझता है। अमेरिका जैसे देशमें जहाँ हरएक मनुष्यके पीछे १२ एकड जमीन आती है, वहाँ बड़े-बड़े यन्त्रोंका उपयोग किया जाय, तो उससे बाबाका कोई विरोध नहीं है; परन्तु जिस देशमें मुश्किलसे हरएकके पीछे पौन एकड़ जमीन आती है, जहाँ सब लोगोंको काम कैसे दें, यही सवाल रहता है, वहाँ लोगोंको बेकार बनानेवाले बड़े-बड़े यन्त्रोंका उपयोग किया जाय, तो हम इसे अत्यन्त अन्याय समझते हैं। हम इसे मानवता-विरोधी कार्य मानते हैं। इसलिए सरकार अगर निर्णय करे कि देशकी बेकारी घटानेके लिए बड़े-बड़े यन्त्र लाये जायें, तो हम Challenge करते (चुनौती देते) हैं कि इससे बेकारी नहीं मिट सकेगी, बल्कि सरकार खुद मिट जायगी !

* * *

अम्बर चरखेकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा कि तीस सालके प्रयत्नके बाद यह अम्बर चरखा ईजाद हुआ है। अब तो अम्बर चरखा घर-घरमें और गांव गांवमें चलना चाहिए और उसके सूतके आधारपर बुनकरोंको आगे बढना चाहिए। बुनकरोंको अम्बर चरखेवालोंके साथ एकरूप होना चाहिए और सामुदायिक विकास-योजनावाले हर गांवमें पूर्ण वस्त्र-स्वावलम्बनकी योजना होनी चाहिए। बुनकरों और अम्बर चरखे-वालोंको मिलकर पूरे गांवके लिए कपडा तैयार करना चाहिए। जरूरत-से ज्यादा सूत या कपडा हो, तो सरकार उसे खरीदे और शहरमें बेचे।

बाबाने बुनकरोंसे अपील की कि वे हाथका ही बुना कपडा स्वयं भी पहनें। वे बोले : "बुनकर भाइयो ! यह नहीं हो सकेगा कि तुम लोग मिलोंका कपड़ा पहना करो और मिलोंके सामने टिकनेकी आशा भी रखो। मैंने बुनकरोंको देखा है कि वे अपना खुदका बुना हुआ कपड़ातक खुद नहीं पहनते हैं। अपना बुना हुआ कपड़ा बेचते हैं और मिलका सस्ता कपड़ा खरीदते हैं। जिस धंधेसे पेट भरता है, उसका आधार

कायम नही रखते हैं, इसका क्या मतलब है ? याने पेडकी जिस टहनीपर हम बैठे हैं, उसी टहनीको हम काटते हैं ! तो कैसे काम चलेगा ? इसलिए हरएक वुनकरको खद्दरका वस्त्र ही पहनना चाहिए और हाथसे कते हुए, वुने हुए कपडेका व्रत लेना चाहिए ।”

* * *

पत्रकारोंके एक प्रश्नका उत्तर देते हुए वावाने कहा कि “योजनामें यह वात साफ जाहिर होनी चाहिए कि योजनाका यह हिस्सा सीधे निचले स्तरके लिए है, यह मध्यमवर्गके लिए है और यह शहरवालोंके लिए है । जैसे सडक । सडक गरीव-अमीर, दोनोंके लिए है । वह दोनोंके काम आती है । लेकिन आजकी हालतमें वह गरीवोंको मदद पहुँचानेकी योजना नही हो सकती । इसका मतलव यह नही कि सडक न वने । वह वने जरूर, पर मैं यह नही मान सकता कि उसपर होनेवाला खर्च गरीवोंके लिए है । ऐसी कई वातें हो सकती हैं, जिनमें सवकी भलाई है । उन्हें अलग रखना चाहिए ।

“योजनामें यह वात स्पष्ट होनी चाहिए कि खास गरीवके लिए क्या योजना है । हमें मालूम होना चाहिए कि करोडों रुपयोंमेंसे गांवोंके लिए, नीचेके स्तरवालोंके लिए कितना खर्च होनेवाला है । मिसालके तौरपर क्या Planning में, सरकारी योजनामें मेहतरोंकी मुक्तिकी योजना की गयी है ? अगर ऐसा नही है तो योजना इस दृष्टिसे निकम्मी है । वास्तवमें मेहतरका धन्धा ही गलत है । होना तो यह चाहिए कि म्युनिसिपलिटीकी एक गाडी ऐसी हो, जिसमें हर घरके लोग अपने-अपने घरका मैला उठाकर डालें । यह सारी योजना इतनी सुन्दर वन सकती है कि उसमें किसीको किसी प्रकारकी तकलीफ न होगी । हमारे घरका मैला दूसरे लोग क्यों उठायें ? और वह भी जवर्दस्तीसे ! ऐसी दु:खद चीजोंके निवारणकी क्या योजना है ? इस तरहसे सोच-समझ करके योजना वनायी जाय, तो आजका ढांचा पूराका पूरा वदल जायगा ।”

* * *

यह तो हुई योजना, सयोजनकी दृष्टि ।

भारत जैसे गरीव, भारत जैसे ग्राम-प्रधान, भारत जैसे पुरातन संस्कृतिवाले देशके लिए ऐसा ही सयोजन हितकर हो सकता है, दूसरा नही ।

सत्ता और अर्थके केन्द्रीकरणकी योजना, यन्त्रोंके वाहुल्यकी योजना हमारे लिए लाभदायक नही हो सकती, नही हो सकती ।

हमारे देशमें तो विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था और विकेन्द्रित सत्तासे ही सुख, शाति और आनन्दकी त्रिवेणी वह मकती है, दूसरा उसका कोई उपाय ही नही ।

पर, जिनके हाथमें हमारे लिए योजना वनानेकी, Planning करनेकी जिम्मेदारी है, वे दूसरी ही दिशामें सोचते हैं।

काश ! वे इन वातोंपर भी कुछ घ्यान देते !

* * *

यहाँ हम नियोजनकी भी, परिवार-नियोजनकी भी वात कर लें ।

देशकी वढती हुई मर्दुमशुमारी सरकारके लिए भारी सरदर्द है ।

पचवर्षीय योजनामें उसके लिए एक दवा है—वनावटी तरीकोंसे संतति-नियमन ।

इस वार अगली पंचवर्षीय योजनामें संतति-निरोधके कृत्रिम उपायोंको और अधिक लोकप्रिय वनाया जायगा ! पहलेसे कही ज्यादा !

* * *

कर्नूल छोडकर हम लोग निकले, तो वहांके पत्रकार हमारे पीछे लग गये । अगले पड़ाव पेदपाडपर उन्होंने वावाको घेरा कि कुछ प्रश्न करेंगे ।

वावाने दोपहरका समय दिया ।

उन्होंने भूदान. दान, समर्पण, मालकियत, राजनीतिक पीड़ित, टैक्स, भूमि-सुधार, भाषा आदिके सम्बन्धमें कई प्रश्न किये, पर उनका एक मुख्य प्रश्न था—परिवार-नियोजनके वारेमें ।

पूछा उन्होंने : Family Planning (परिवार-नियोजन) की योजनापर, जिसके वारेमें सरकार इतना आग्रह कर रही है, आपकी क्या राय है ?

कृत्रिम उपायोंसे संतति-नियमनकी बात बाबाको बिलकुल नापसन्द है। अपने विचारोंको व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा :

"मुझे कबूल करना चाहिए कि मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह सब क्या चल रहा है? हिन्दुस्तानमें हर वर्ग-मीलमें करीब ३०० की आबादी है, जापानमें हर वर्ग-मील में ६०० की। तो हिन्दुस्तानमें ज्यादा आबादी है, ऐसा क्यों मानना चाहिए? यह पुरुषार्थका विषय है। आज हिन्दुस्तानमें बहुत ज्यादा लोग हो गये हैं, उनके पोषणका कोई इंतजाम नहीं हो रहा है, यह सवाल है। आखिर यह तो एक सामाजिक और आध्यात्मिक विषय है। इसमें कई प्रकारके मानवीय मूल्य आये हैं। अगर यह माना जाय कि कृत्रिम रीतिसे कुटुंब नियोजन किया जाय और विषय-वासना बढायी जाय, उसमें कोई पाबंदियाँ न रखी जायें तो unnatural practices (अस्वाभाविक प्रयोगों) और उसमें क्या फर्क रहा?

"भूत-दयाके नामपर यह काम चल रहा है। बडे-बडे परोपकारी लोग इसके लिए अनुकूल हैं। वे सोचते हैं कि जबतक ऐसी कोई युक्ति नहीं की जायगी, तबतक बहनोंको भाइयोंके हाथसे मुक्ति नहीं मिलेगी। परंतु इसमें हम हार खाते हैं। हम मानते हैं कि बहनोंकी ही इतनी योग्यता क्यों न हो कि वे नाहक आक्रमण न होने दें। यह जो ख्याल रूढ हो गया कि पत्नीको हमेशा पतिके वश रहना चाहिए, गलत है। बहनोंको अच्छी तालीम होनी चाहिए और उनकी नीतिमत्ता बढनी चाहिए। यह जो विषय है, उसका अच्छा ज्ञान लोगोंको होना चाहिए।

"खेतमें एक सामान्य बीज बोया जाता है तो लोग उसकी कितनी चिंता करते हैं! मान लीजिये कि कोई किसान मृगनक्षत्रमें बीज बोनेके बदलेमें ऐसे महीनेमें बीज बोता है जब कि जमीन जल रही है, तो उसको क्या कहा जायेगा? अगर वह कहेगा कि यह मेरा Planning (नियोजन) चल रहा है और मैं चाहता हूँ कि बीज न उगे, तब तो आप उसको National wastage (राष्ट्रीय क्षति) ही न समझेंगे? इस तरह अगर मनुष्यके बीजका भी इस्तेमाल हो और उससे कोई फल

न निकले तो उसका कोई मानी ही नही है। याने कोई भी Scientist (वैज्ञानिक) कहेगा कि निष्फल क्रिया नही होनी चाहिए। लेकिन आजके वैज्ञानिक ही इतने दीन हैं कि वे सोचते नही हैं। जब मनुष्यके जीवनमें scientific outlook (वैज्ञानिक दृष्टिकोण) आयेगा तो वह कहेगा कि कोई भी क्रिया निष्फल नही होनी चाहिए और जिस क्रियामें पौरुषका संबंध आता है वह तो बिलकुल निष्फल होने ही नही देगा। इसलिए सारा विषय ही हमारी समझके बाहर चला जाता है। खुशीकी बात है कि हिन्दुस्तानकी जनतामें यह विचार फैलनेवाला नही है और जिस तरहसे वे विचार करते हैं, उस तरहसे उनको बचानेके लिए और बातें करनी होंगी।

"दुनियाका यह अनुभव है कि जब जीवनमें पुरुषार्थ बढ़ता है, तब विषय-वासना कम होती है। सबको अच्छी तरहसे पुरुषार्थ करनेका मौका मिलेगा तो स्वाभाविक ही विषय-वासनापर पाबन्दियाँ आ जायेंगी। और हिन्दुस्तानका पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना Nutrition (पोषण) भी बढ़ेगा, जो आजकी हालतके लिए अच्छा ही है। यह बड़ी ही विलक्षण बात है कि जहाँ पोषण भी अच्छा नही मिलता है, वहाँ भोग-वासना और विषय वासना बहुत बढ़ती है। जानवरोंमें भी यही देखा गया है। मजबूत जानवरोंमें विषय-वासना कम होती है और कमजोर जानवरोंमें विषय-वासना ज्यादा होती है। फिर जो संतान पैदा होती है, वह निकम्मी और निर्वीर्य होती है। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक है। इस दृष्टिसे सोच करके ऐसा वातावरण निर्माण करना चाहिए, जो कि संयमके अनुकूल हो। समाजमें पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिए, साहित्य सुधारना चाहिए। आज तो गन्दा साहित्य और गंदे सिनेमा चलते हैं। दिल्लीकी बहनोंने सभामें प्रस्ताव करके मांग की कि आजकी फिल्मों-से हमारे बच्चे कुमार्गपर चले जाते हैं। कितने शर्मकी बात है कि दिल्ली जैसी राजधानीमें माताओंको प्रस्ताव पास करना पड़ता है कि हमारे

१. गीता माताके बहाने—
२ अभिवादनशीलस्य ।
३. धर्मस्य तत्त्वम् ।
४ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ?
५. पण्डिता: समदर्शिन:
६ अशाश्वत सगह कौण करी ?
७. चाह गयी : चिन्ता गयी ।
८. मिटा दे अपनी हस्तीको ।
९. जहाँ समन्वयकी ज्योति जलती है ।
१०. ध्यान . एकाग्रता : समाधि

०

गीता माताके बहाने—

: १ :

उकम्बा : कोरापुट : उड़ीसा।

मंगलवार, १३, सितम्बर '५५।

सांध्य-भ्रमणकी पावन वेला।

सुरेश रामभाईने मेरा परिचय कराते हुए कहा : "बाबा, गीताके सम्बन्धमें इनकी कुछ शंकाएँ हैं।"

"कहो !"

और, मैं सुना गया अपनी कुछ शंकाएँ।

गोंडल, काठियावाडके राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्रीने गीतापर एक टीका की है सं० १९९३ में। टीकाका नाम है 'सिद्धिदात्री'। उसमें और बहुत-सी बातोंके साथ कहा गया है :

(१) मूल गीतामें ७४५ श्लोक थे।

(२) शास्त्रीजीको गीताकी एक ऐसी प्राचीन पाण्डुलिपि मिली है, जिसमें प्रचलित ७०० श्लोकोंके स्थानपर ७०७ या ७०७½ श्लोक हैं। उन्हीं श्लोकोंकी यह टीका है। शेष ३८ श्लोक उन्हें भी अभीतक नहीं मिल सके।

(३) पाठभेद कई हैं।

इस 'सिद्धिदात्री' टीकामें आये हुए दो पाठभेद मेरी शंकाके मुख्य विषय थे—

(१) गीताके दूसरे अध्यायमें *'स्थित-प्रज्ञ'* और *'स्थित-धी'* के स्थानपर *'स्थिर-प्रज्ञ'* और *'स्थिर-धी'* है। श्लोक ५५ से ७२ तक इनमें 'स्थित' के स्थानपर *'स्थिर'* ही देखनेको मिलता है।

(२) गीताके बारहवें अध्यायके १६वें श्लोकमें भक्तके लक्षणोंमें "*सर्वारम्भ-परित्यागी*" के स्थानपर है—"*सर्वारम्भ-फलत्यागी।*"

मैंने कहा कि '*स्थित-प्रज्ञ*' के स्थानपर '*स्थिर-प्रज्ञ*' और '*सर्वारम्भ-परित्यागी*' के स्थानपर '*सर्वारम्भ-फलत्यागी*' शब्द देखनेमें तो अच्छा जँचता है। शास्त्रीजीने अपनी टीकामें उनका जोरदार समर्थन भी किया है। इन दोनों पाठभेदोंको स्वीकार करनेमें क्या हानि है?

* * *

बाबा बोले : "जहाँतक पाठभेदोंका सवाल है, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूटने गीताके ऐसे अनेक पाठभेदोंकी एक पुस्तक ही छाप डाली है। पर इन पाठभेदोंको प्रामाणिक नही माना जा सकता। प्रामाणिकता तो केवल शकराचार्यकी मानी जाती है।

"श्लोकोंकी सख्याके बारेमें भी वही बात है। रही बात अच्छे श्लोकोंकी, सो तो आज भी कितने ही अच्छे श्लोक लिखे जा सकते हैं। मैं ही चाहूँ तो कितने ही अच्छे श्लोक लिख सकता हूँ। परन्तु इसका कोई अर्थ नही। सारी बात है प्रामाणिकताकी। सो अभीतक शकराचार्यवाली प्रतिकी ही प्रामाणिकता मान्य है। और किसीकी नही।"

* * *

गीता माताके दूधपर पलनेवाले, 'गीताई' के प्रणेता—विनोबासे यह मेरी पहली वार्ता थी गीता माताके बहाने।

* * *

Man proposes God disposes!

आजसे दस साल पहले एक बार सोचा कि कुछ दिन बापूके चरणोंमें बैठकर जीवन कृतार्थ करूँ। भाई श्रीमन्जीको लिखा कि आप भी तो हमारे इटावा जिलेके हैं, कुछ छोटी-मोटी व्यवस्था ऐसी कर दीजिये कि कुछ दिन बापूका सान्निध्य प्राप्त कर सकूँ।

उन्होंने इसके लिए कुछ चेष्टा की भी, पर '*तेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और!*'

अत. बात "*मनकी मन ही माँहि रही!*"

बापू चले भी गये। मैं उनके चरणोंका सान्निध्य न पा सका, न पा सका !

* * *

पर, श्रद्धाकी लता तो फूलती-फलती ही है।

बापू न सही, बाबा।

गाधी न सही, विनोबा।

* * *

परसाल भाईजी राधाकृष्ण बजाजने कहा : कुछ दिन बाबाके साथ रह आओ तो अच्छा।

मुझे भला क्या इनकार हो सकता था !

जाना तो चाहता था ८ अगस्त '५५ को ही, पर 'गृहकारज नाना जंजाला', निकल पाया ८ सितम्बर '५५ को।

शरत् बाबूने धमकाया तो बहुत ! लिखा : "अब बाबा जहाँ घूम रहे हैं, वहाँ बहुत घन जंगली इलाका और शेर, हाथी आदि जंगली जनवरसे भरपूर हैं। वहाँ न बस जाती या आदमी जानेके लिए अच्छा रास्ता है। रास्ता बिलकुल खराब है। इस हालतमें आप उनके पड़ावपर आनेमें बहुत मुश्किल होगा"—

पर मैं नहीं माना।

बात ही माननेकी कहाँ थी ?

* * *

८ सितम्बरको काशीसे निकला।

दूसरे दिन कलकत्ता और तीसरे दिन कोरापुट।

कलकत्तासे मद्रास मेल पकड़कर दूसरे दिन सवेरे उतरा नौपाड़ा जंक्शनपर।

छोटे स्टेशनोंसे भी छोटा यह जंक्शन देखने लायक है। गुणपुरके लिए ट्रेन तैयार थी। छोटे-छोटे डिब्बे, छोटा-सा इंजिन और चाल भी छोटे भैयेका !

चूँ चरर-मरर !

चूँ चरर-मरर !!" की याद दिलानेवाली यह "भैंसागाडी" अपनी धीमी रफ्तारसे आगे बढी तो पार्लाकिमेडी स्टेशनपर वहाँके हाई-स्कूलके हेडमास्टर भी अपनी दो छोटी बच्चियोंके साथ आ बैठे मेरे डिब्बेमें।

परिचय कुछ आगे बढा, तो बोले : 'जयप्रकाशजी भी तो इसी ट्रेनसे चल रहे हैं !'

'मुझे तो पता नही। नौपाडामें तो मुझे दिखे नही। तब उस ट्रेनमें कैसे आ गये ?'—मैंने कुछ चकित होकर पूछा।

बोले : 'वे अभी इसी स्टेशनपर सवार हुए हैं। श्रीमती मालती देवीके आदेशसे एक सज्जनने पलासामें ही उन्हें ट्रेनमें उतार लिया था और यही लाकर ट्रेनमें चढाया है। शायद उनकी पत्नी भी हैं उनके साथ।'

* * *

गुणपुर—कोरापुटके लिए अन्तिम स्टेशनपर हम लोग उतरे तो जे० पी० के दर्शन हुए। बाजे-गाजेसे उनका स्वागत हुआ।

बैलगाडीमें बैठकर ऊबड-खाबड, ऊँचे-नीचे रास्तेसे हम लोग आगे बढे। माता मालती देवी भी तबतक खेतोंमें कूदती-फाँदती, दौडती-धूपती आ मिली।

वृक्षके तनेको काटकर पोली बनायी हुई नावोंमें सवार होकर हमने वंशधारा पार की और गुणपुरके डाकबंगलेमें पहुँचकर डेरा जमाया।

पडावपर पहुँचते ही जे० पी० ने सबसे पहले गोपबाबूसे मेरा परिचय कराया।

सेवाकी इस साकार प्रतिमाको प्रणामकर मैंने अपनेको धन्य माना। भूरी दाढीमें छिपी उनकी मुसकराहट किसे आकृष्ट नही करती ?

* * *

और एक दिन कुजेन्द्रीमें अपराह्नमें टहलते हुए बाबाने मुझे बुलाकर कहा "राधाकृष्ण अभी कह रहा था कि 'भट्टजी सकोची हैं। उनसे

परिचय कर लो।' मैंने कहा : 'जब साथमें हैं ही, तो परिचय हो ही जायगा।"

यों मुझे बाबाका सान्निध्य प्राप्त हुआ।

*　　*　　*

कोरापुट जिलेमें मैं ३ सप्ताह बाबाके चरणोंमें रहा। बाबाकी जयन्तीसे बापूकी जयन्तीतक।

उस बीच बापूका प्यारा उडीसा देखा, खूब देखा। उसकी प्राकृतिक छटा तो देखी ही, उसकी आंतरिक छटा भी खूब देखी। जंगलों और पहाडोंमें रहनेवाले आदिवासी भाइयोंको ऊपर और भीतरसे भलीभाँति देखा। उनकी सरलतापर, उनकी सादगीपर, उनकी उदारतापर मैं लट्टू हो गया! ग्रामदानकी उन्होंने जो मदाकिनी बहायी, उसमें निमज्जन-कर मैं कृतकृत्य हो उठा।

*　　*　　*

और उडीसाकी भूमि-क्रांतिके अग्रदूत?

सविनय-अवज्ञा और सत्याग्रह-आंदोलनोंमें सेवा करनेका सौभाग्य मुझे मिला है। बाहर भी, जेलोंके भीतर भी। इस कारण अनेक कार्यकर्ताओंके साथ रहनेका सुअवसर भी मुझे मिला है, खूब मिला है।

पर, उडीसा और कोरापुटके कार्यकर्ताओंमें तो कुछ और ही बात है। वे तो बिल्कुल ही निराले हैं।

उनकी सादगी, उनकी उदारता, उनका त्याग, उनकी निष्काम-सेवा देखकर तो मैं दंग रह गया!

और सच कहूँ : मुझे ईर्ष्या होने लगी उनसे।

*　　*　　*

अपना सर्वस्व होमकर, देह गेह सब सन तृन तोरे! लक्ष्मणकी भाँति शून्य होकर वे भूदान-यज्ञमें जुटे पड़े हैं। उन्हें न चाहिए पैसा, न चाहिए धन, न चाहिए मान, न चाहिए सम्मान, न चाहिए पद, न चाहिए प्रतिष्ठा। दिन और रात, सुबह और शाम—जाड़ा हो, गर्मी हो, बरसात हो—वे सेवामें संलग्न हैं, सदा, सतत, अनवरत।

इस सेनाकी जमातमें भाई ही नहीं, अप्पामाने (बहनें) भी हैं—एक-दो नहीं, पचासों !

कृतकृत्य हो उठा मैं इन सबके दर्शन पाकर।

* * *

और गत फरवरी-मार्च '५६ में तो गीतामाताके बहाने मुझे बाबाके चरणोंका सान्निध्य खूब ही मिला।

हिन्दी 'गीता-प्रवचन' का दसवाँ संस्करण छपनेकी बात थी।

दा साहब (हरिभाऊजी उपाध्याय) को फुर्सत न थी कि मूल मराठीसे मिलाकर उसे दुबारा देख जायँ, तब भाईजी (राधाकृष्ण बजाज) ने यह भार मेरे मत्ये मढा और २७ जनवरी '५६ को उन्हें लिख दिया :

"गीता-प्रवचन' की हिन्दी फिरसे देखी जानेकी कोई व्यवस्था अभीतक नहीं बैठा सका। काफी विचार-विनिमयके बाद तय किया है कि श्रीकृष्ण-दत्त भट्ट इसे देख जायँ। उनकी सहायतामें श्री वैजापुरकर शास्त्री रहेंगे। पहले एक-दो अध्याय तैयार करके श्री भट्टजी स्वय पूज्य विनोबाजीको ले जाकर दिखा देंगे। पूज्य विनोबाजीको पसद आये तो आगे काम बढाया जायगा। सारे अध्याय तैयार होनेपर फिर दुबारा जाकर उन्हें दिखा दिये जायँगे, ताकि एक शब्दका भी हेरफेर उनकी अनुमति बिना न हो, ऐसा विचार किया है।"

* * *

६ फरवरीको मैं काशीसे निकल पडा।

२० मार्चतक मैं बाबाके साथ रहा।

शामको ४ बजे मेरा काम पूरा हुआ और मैंने चरण छूकर प्रस्थानकी अनुमति मांगी।

बाबाने सिर हिला दिया और मैं जीपसे चल पडा गुतकुल।

शामकी गाडीसे हैदराबाद और ४ दिन बाद काशी।

लौटते समय समय न रहनेसे भूदानकी गगोत्री—पोचमपल्लीके दर्शन तो न कर सका, पर शिवरामपल्ली तो हो ही आया, जहाँके सर्वोदय-

सम्मेलनके लिए ही बाबा पवनारसे पैदल चल पड़े थे। वहींसे तो उनकी भूदान-यात्राका जन्म हुआ है।

भाई विरधीचन्दकी कार मुझे सर्वोदय-आश्रममें छोड़ गयी, जहाँ धूतजीकी जीवनव्यापी साधना पुष्पित-पल्लवित हो रही है। बाबाकी प्रेरणासे स्थापित इस ग्राम-सेवा-केन्द्रको देख जहाँ मेरा हृदय तृप्त हुआ, वहाँ चिलचिलाती दोपहरीमें धूतजीकी नारंगियोंने गले और शरीरको भी मिठास और ताजगीसे तृप्त कर दिया।

*　　　*　　　*

शुरूमें प्रोग्राम ऐसा था कि दो अध्यायोंको मराठीसे मिलाकर मैं देख जाऊँ, उनमें जहाँ संशोधनकी आवश्यकता जान पड़े, वहाँ निशान लगा डालूँ और किस शब्दके स्थानपर कौन शब्द रहे, कौन वाक्य कैसा रहे, किसमें क्या हेरफेर किया जाय, यह सब मैं सुझाऊँ। बाबा मेरे सुझाव देखकर अंतिम निर्णय दें।

इस प्रकार गाड़ी आगे बढानेकी बात थी।

परन्तु जब मैं पहुँचा तो बाबाको फुर्सत ही नहीं थी। सर्वोदय-योजनाको लेकर दादा और रवीन्द्र वर्मासे चर्चा चलती रहती थी। इसलिए मेरी गाड़ी रुक गयी।

*　　　*　　　*

सोचा था कि शुरूके दो अध्याय पूरे करके बाबाको दिखा लूँगा। पसन्द करेंगे तो काम आगे चलानेके लिए काशी लौट आऊँगा एकाध सप्ताहमें। पर, ऐसा संभव न हो सका। तब मैंने प्रवासमें ही अपना काम आगे बढ़ाना तय किया और जैसे-जैसे समय मिलता गया, मैं अपना संशोधन-कार्य आगे बढ़ाता चला।

अन्तमें यही ठीक लगा कि अब वहाँसे तभी लौटूँ, जब काम पूरा हो जाय।

इस तरह गया था एक सप्ताहको : लग गये सात सप्ताह।

प्रवासके बीचमें दा साहब एक बार पधारे। बोले : "अच्छा है, तुम इसे देख जाओ। मुझे तो दुबारा देखनेकी फुर्सत ही नहीं मिल सकी।"

* * *

रोज अपराह्णमें 'गीता-प्रवचन' लेकर एक घण्टा बाबाके चरणोंमें मैं बैठता।

बाबा मेरे संशोधन देखते चलते। जो ठीक लगता, उसपर 'टिक' (सहीका निशान) करते। जो ठीक न जँचता, उसपर विचार करते, मेरे तर्क सुनते और उसके बाद जैसा उपयुक्त लगता, करते।

इस सिलसिलेमें कभी शब्दसागर, कभी मराठी-हिन्दी शब्दकोष देखने पडते, कभी उपयुक्त शब्द खोजनेके लिए 'गीता-प्रवचन' के गुजराती, बँगला, उडिया, उर्दू-संस्करण। कभी-कभी एक-एक शब्दके लिए हमारी गाडी दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मिनटतक अटक जाती ! बहुतसे शब्द ऐसे होते हैं, जो मराठीमें किसी और अर्थमें व्यवहृत होते हैं, हिन्दीमें और अर्थमें। जैसे, 'कौतुक'। वहाँ विशेष दिक्कत पडती।

शब्दोंकी हमारी यह जांच-पडताल, खोज बीन रोज एक घण्टा चलती और इस मन्थनके बाद रोज कुछ-न-कुछ अमृत निकल ही आता।

* * *

हमारे यहाँ सत्संगकी महिमा इतनी अधिक है कि तुलसी बाबाने कह डाला है :

> *तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।*
> *तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥*

और—

> *एक घडी आधी घड़ी आधीमें हू आधि।*
> *'तुलसी' संगति साधुकी हरै कोटिकी व्याधि॥*

मेरा सौभाग्य कि गीता माताके बहाने मुझे यह सत्संग मिला और खूब मिला।

गीता एक तो स्वयं ज्ञान, कर्म और भक्तिकी त्रिवेणी।

गीताका भाष्यकार स्वयं सत्य, अहिंसा और सेवाका प्रतीक।

और फिर भूदान-गंगाके प्रवाहके भीतर—'गीता-प्रवचन' का अध्ययन, मनन और परिशीलन।

एकसे एक अनूपम सुयोग !

*　　　*　　　*

इस ज्ञान-चर्चामें कभी मराठी संतोंकी ओवियां आती, कभी वेदान्तके तत्त्वोंका विश्लेषण होने लगता, कभी किसी प्रसगसे जीवनकी कोई घटना खिंच आती और मैं मस्तीसे इसका आनन्द लेता।

*　　　*　　　*

एक दिन एक जगह आया :[1]

"कोई मनुष्य गुफामें जा बैठता है। वहां उसका किसीसे भी संपर्क नही होता। वह समझने लगता है कि अब मैं बिलकुल शांत-मति हो गया। परन्तु गुफा छोड़कर उसे किसीके यहां भिक्षा मांगने जाने दीजिये। वहां कोई खिलाडी लडका दरवाजेकी सांकल खटखटाता है। वह बालक तो उस नाद-ब्रह्ममें तल्लीन हो जाता है, परन्तु उस भोले-भाले बच्चेका वह सांकल बजाना उस योगीको सहन नही होता। वह कहता है : "बच्चेने क्या खट-खट लगा रखी है !" गुफामें रहकर उसने अपने मनको इतना कमजोर बना लिया है कि ज़रा-सा भी धक्का उसे सहन नहीं होता। ज़रा खट-खट हुई कि बस, उसकी शांति रफूचक्कर होने लगती है। मनकी ऐसी दुर्बल स्थिति अच्छी नही।"

बाबा मेरी ओर देखकर मुसकराते हुए बोले : "जानते हो, झटका हुआ, शांति भंग हुई, यह अनुभवकी बात है !"

*　　　*　　　*

ग्यारहवें अध्यायमें आया :[2]

"उपनिषदोंमें इस बातका बड़ा सुन्दर वर्णन है कि आत्माका रंग

---

१. गीता प्रवचन, पांचवाँ अध्याय, पृष्ठ ५९।

२. गीता प्रवचन, पृष्ठ १६६।

कैसा होता है ? आत्माका रंग कौन-सा बताया जाय ? ऋषि प्रेमपूर्वक कहते हैं—

यथा अयं इन्द्रगोपः ।

यह जो लाल-लाल रेशमका मुलायम मृगका कीड़ा—वीर-बहूटी है, उसकी तरह आत्माका रूप है । उस मृगके कीड़ेको देखते हैं तो कितना आनन्द होता है ! यह आनन्द क्यों होता है ? मुझमें जो भाव है, वही उस इन्द्रगोपमें है । मुझसे उसका कोई सम्बन्ध न होता, तो आनन्द होता ? मेरे अन्दर जो सुन्दर आत्मा है, वही इन्द्रगोपमें भी है । इसीलिए उसकी उपमा दी । ”

और मैंने पूछ दिया : “आत्माके रंगकी केवल वीर-बहूटीसे उपमा दी गयी है या और भी किसीसे ?”

बाबा देरतक इस विषयपर समझाते रहे । उपनिषदोंसे उद्धरण दे-देकर सुनाते रहे कि किस-किस वस्तुसे आत्माकी उपमा दी गयी है । कहीं स्फटिक मणिसे, कहीं पीताम्बरसे, कहीं किसीसे, तो कहीं किसीसे !

*　　　　*　　　　*

और यह आनन्द-धारा लगातार बहती रही । मैं रोज़ उसमें स्नान करता रहा ।

कभी बड़ोंका जमघट होता या चलते-चलते बाबा थक जाते, तो वे मुझे कह देते : “आज तुम्हारी छुट्टी !”

*　　　　*　　　　*

पहले दिन १२ फरवरीको हम लोग केवल ४ पृष्ठ पूरे कर पाये । बाबा बोले : “इस रफ्तारसे तो तुम्हें २॥ माह लगेगा ।”

पर आगे रफ्तार बढ़ी—किसी दिन १० पृष्ठ हो जाते, किसी दिन १२ ।

बीचमें १२ से १७ फरवरीतक सर्वोदय-संयोजनको लेकर, २५ फरवरीको महबूब नगरमें होनेसे, ६ मार्चसे १२ मार्चतक नेहरूजी और

अन्य बड़ोंके जमघटके कारण तथा हैदराबादसे आश्रममें आनेसे वहाँके कार्यकर्ताओंकी बैठकोंके कारण, २१ मार्चसे २६ मार्चतक अडोनीमें सम्मेलनके कारण, २९ मार्चको गुतकुलमें व्यस्त होनेके कारण मेरी छुट्टी रही।

इसी तरह और भी २, ३ दिन मेरी छुट्टी रही।

यों, कुल २५ दिन पूरी रफ्तारसे काम चला और इस प्रकार 'गीता-प्रवचन' के अनुवाद, सम्पादन और संशोधनका काम पूरा हुआ।

* * *

चलते-चलते अन्तिम दिन बाबाने, गणितज्ञ बाबाने इसका भी हिसाब लगाया ही।

पर, मेरा तो हिसाब दूसरा ही रहा।

मैंने जिस दिन काम हुआ, उस दिन तो सत्संगका लाभ उठाया ही, जिन दिनों काम नहीं हुआ, उन दिनों भी सत्संगका लाभ उठाया। वही स्थिति थी :

"दुहूँ हाथ मुदमोदक मोरे !"

* * *

और गीता माताका यह सत्संग तो मुझे ही नहीं, उसका अध्ययन, चिन्तन और मनन करनेवाले प्रत्येक मानवको, प्रत्येक साधकको तारेगा। जो भी उस ज्ञानगंगामें गोता लगायेगा, कृतकृत्य हो उठेगा। कहा ही है :

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च॥

• • •

अभिवादनशीलस्य······ ! : २ :

कहा गया है :

> *अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।*
> *चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥*

जो व्यक्ति अभिवादनशील है, जो व्यक्ति गुरुजनोंकी नित्य सेवा करता है, उसकी चार चीजें बढती हैं—

१. आयु,
२. विद्या,
३. यश और
४. बल ।

* * *

गुरुजनोंकी सेवा, माता पिताकी सेवा परम पुरातन भारतीय आदर्श है ।

ज्ञानोपलब्धिका एकमात्र साधन गुरुसेवा माना गया है ।

गीता कहती है :

> *तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।*
> *उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ४।३४*

बापू इसकी टीका करते हुए कहते हैं—

"इसे तू तत्त्व जाननेवाले ज्ञानियोंकी सेवा करके और नम्रतापूर्वक विवेकसहित बारम्बार प्रश्न करके जानना । वे तेरी जिज्ञासा तृप्त करेंगे ।

ज्ञान प्राप्त करनेकी तीन शर्तें—प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा, इस युगमें खूब ध्यानमें रखने-योग्य हैं । प्रणिपात अर्थात् नम्रता, विवेक,

परिप्रश्न अर्थात् बारंबार पूछना : सेवा-रहित नम्रता खुशामदमें शुमार हो सकती है। फिर ज्ञान खोजके बिना संभव नहीं है। इसलिए जबतक समझमें न आवे, तबतक शिष्यका गुरुसे नम्रतापूर्वक प्रश्न पूछते रहना जिज्ञासाकी निशानी है। इसमें श्रद्धाकी आवश्यकता है। जिस-पर श्रद्धा नहीं होती, उसकी ओर हार्दिक नम्रता नहीं होती। उसकी सेवा तो हो ही कहाँसे सकती है ?"

* * *

विनोबा कहते हैं :

"कर्मका अकर्म कैसे होता है, यह कला किसके पास मिलेगी ? संतोंके पास। भगवान् कहते हैं : संतोंके पास जाकर बैठो और उनसे शिक्षा लो। कर्मका अकर्म कैसे हो जाता है, इसका वर्णन करनेमें भाषाका अंत हो जाता है। उसका सही ख्याल लाना हो, तो संतोंके पास जाना चाहिए। परमेश्वरका वर्णन भी तो है :

शांताकारं भुजगशयनम् !

परमेश्वर हजार फनोंके शेषनागपर सोते हुए भी शांत हैं। इसी तरह संत हजारों कर्म करते हुए भी रत्तीभर क्षोभ-तरंग अपने मानस-सरोवरमें नहीं उठने देते। यह खूबी संतोंके गाँव गये बिना समझमें नहीं आ सकती। वर्तमान कालमें पुस्तकें बहुत सस्ती हो गयी हैं। एक-एक, दो-दो आनेमें 'गीता', 'मनाचे श्लोक' आदि मिल जाते हैं। गुरुओंकी भी कमी नहीं। शिक्षा उदार और सस्ती है। विद्यापीठ तो मानो ज्ञानकी खैरात ही बाँटते हैं, परन्तु ज्ञानामृतकी डकार किसीको नहीं आती। पुस्तकोंके इस पहाड़को देखकर संत-सेवाकी जरूरत दिनपर दिन ज्यादा दिखाई देने लगी है।

श्रीकृष्ण कहते हैं : अर्जुन, बहुत कुछ सुन-सुनाकर तेरी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है। वह जबतक स्थिर न होगी, तबतक तुझे योग-प्राप्ति नहीं हो सकती। सुनना और पढ़ना अब बन्द करके संतोंकी शरण ले। वहाँसे जीवन-ग्रंथ पढ़नेको मिलेगा। वहाँ मौन व्याख्यान सुनकर तू 'छिन्न-संशय' हो जायगा। वहाँ जानेसे तुझे मालूम हो जायगा कि सतत

सेवा-कर्म करते हुए भी मन कैसे अत्यन्त शात रह सकता है। बाहरसे कर्मका जोर रहते हुए भी हृदयमें कैसे अखंड सगीत-रूपी सितार मिलाया जा सकता है।"

* * *

तात्पर्य यह कि वृद्धोंकी सेवा करनी चाहिए। गुरुजनोंका अभिवादन करना चाहिए। सतोंको प्रणिपात करना चाहिए।

तभी और केवल तभी, सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति हो सकेगी।

* * *

पर, आजका युवक ?

गगाजलको जो आक्सीजन और हाइड्रोजनका मिश्रण मात्र बतलाता है, गुरुजनोंका जो स्कूल-कॉलेजमें और घरपर मखौल उडाता है, माता-पिताको सम्मान देना तो दरकिनार, उनसे सीधे मुँह बात नही करता, वह क्या कभी ज्ञान प्राप्त कर सकेगा ?

पुस्तकोंका विशाल भण्डार, स्कूल, कॉलेजों, विद्यापीठों, विश्वविद्यालयोंकी लम्बी क़तार आज अच्छे नागरिक उत्पन्न नहीं कर पा रही है, इसका कारण क्या है ?

छात्रोंमें आज सेवा, नम्रता और जिज्ञासाका भाव नहीं है। वे ग़लत सस्कारोंमें पलते है, बढते-पनपते हैं, कुञ्जियाँ रटकर परीक्षाएं पास करते हैं, अध्यापकोंको भाड़ेके टट्टू मानते हैं! वे कभी सच्चे ज्ञानकी प्राप्ति कर सकेंगे, इसमें हमें पूरा सदेह है।

बाबाको यह बात सालती है, बुरी तरह सालती है।

तभी तो कर्नूलमें छात्रोंसे उन्होंने कहा कि तुममें चार बातें होनी चाहिए—

१. अपना दिमाग़ पूर्णतः स्वतन्त्र रखो।
२. अपने आपपर क़ाबू पाओ।
३. निरन्तर सेवा-परायण रहो और
४. सर्व-सावधान रहो।

* * *

सेवा-परायणतापर पूरा जोर देते हुए बाबाने कहा :

"बिना सेवाके ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। महाभारतमें एक प्रसंग आता है। अर्जुन, भगवान् कृष्ण और धर्मराज एक जगह बैठे थे। अर्जुनने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जो आदमी मेरे गांडीव धनुषकी निन्दा करेगा, उसका मैं कत्ल कर दूँगा। धर्मराजने अर्जुनका उत्साह बढ़ानेके लिए गांडीवकी निन्दा करते हुए कहा कि तू और तेरा गांडीव इतना बलवान् है, फिर भी हमें तकलीफ हो रही है और हमारे शत्रुओंका अन्त नहीं हो रहा है!

अर्जुन परम धर्मनिष्ठ था और उसका अपने भाईपर बड़ा प्यार भी था। वह अपनी निन्दा सह सकता था, पर गांडीवकी नहीं। उसने कृष्णके सामने ही धर्मराजपर प्रहार करनेके लिए हाथ उठाया। कृष्णने उसका हाथ खींचते हुए कहा कि तू कैसा मूरख है! तुझे ज्ञान नहीं है। तूने वृद्धोंकी सेवा नहीं की, तो तुझे ज्ञान कैसे प्राप्त होगा?

महाभारतमें अन्यत्र एक यक्ष-प्रश्न है कि ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? तो उत्तर मिला कि—"*ज्ञानं वृद्धसेवया।*" वृद्धोंकी सेवासे ज्ञान प्राप्त होता है। वृद्धोंके पास अनुभव होता है, जो लोग सेवापरायण होते हैं, उनके सामने वृद्धोंका हृदय खुल जाता है और वे अपना कुल सारसर्वस्व दे देते हैं। इसलिए विद्यार्थियोंको सेवा-परायण होना चाहिए।"

* * *

बाबाने कहा कि विद्यार्थियोंको वृद्धोंकी, माता-पिताकी, दीन-दुःखियोंकी, समाजकी सेवा करनी चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि हम सेवा करते रहेंगे तो अध्ययन कैसे होगा? लेकिन यह विश्वास होना चाहिए कि सेवासे ही ज्ञान प्राप्त होता है।

रामायणकी कहानी है। विश्वामित्रने दशरथके पास जाकर यज्ञ-रक्षाके लिए राम-लक्ष्मणकी माँग की। दशरथ मोहग्रस्त था। इसलिए बोल उठा कि मेरे रामकी उम्र अभी सोलह साल भी नहीं हुई है, मैं उसे कैसे दे सकता हूँ? यह सुनते ही तपस्वी विश्वामित्रने कहा कि "ठीक है, मैं जाता हूँ।" वाल्मीकिने वर्णन किया है कि विश्वामित्रके इन शब्दोंसे

सारी पृथ्वी काँप उठी। ज्ञानी पुरुषकी माँगका इनकार राज्य भी नही कर सकता। तब वशिष्ठने दशरथको समझाया कि "तू कैसा मूरख है! विश्वामित्र राम-लक्ष्मणकी माँग करता है, तो उससे तेरे पुत्रोंका कल्याण होगा। वे विश्वामित्रकी सेवा करेंगे और उससे उन्हें ज्ञान प्राप्त होगा। सेवासे बढकर कोई विद्यापीठ नही हो सकता।" यह सुनकर दशरथने विश्वामित्रको राम-लक्ष्मण सौंप दिये। फिर वाल्मीकिने वर्णन किया है कि किस तरह राम-लक्ष्मणको सेवा करते-करते ज्ञान प्राप्त हुआ था।

* * *

ज्ञान-प्राप्तिकी पहली शर्त है '

बडोंकी सेवा, गुरुजनोंका आदर, वृद्धोंको प्रणाम।

बाबा इसमें पूरा विश्वास रखते हैं।

* * *

उस दिन कर्नूलमें विधायकोंकी सभा थी।

एक ओर कुर्सी डाल दी गयी, जिसपर लाकर बैठा दिये गये—टी० प्रकाशम्!

आध्र-केसरी टी० प्रकाशम्।

बाबा उनके पाससे ही होकर आये मचपर।

प्रकाशम्‌को रास्तेमें बैठे देखा तो झटसे बाबाने अपना मस्तक रख दिया—उनके चरणोंपर।

जिसने भी यह दृश्य देखा, श्रद्धासे उसका हृदय गद्‌गद हो उठा।

* * *

और, उस दिन महबूब नगरमें?

वयोवृद्ध, बालूभाई मेहता विदा हो रहे थे।

बाबाको प्रणाम करने पहुँचे तो देखा कि वे छोटी-सी मेजके नीचे पैर रखे बैठे हैं।

बाबा पैर निकालते नहीं और बालूभाई बिना चरण छुए हटते नहीं !

बडी देरतक प्रेमकी यह लड़ाई, रस्साकशी चलती रही।

बडी मुश्किलसे बालूभाई अपने 'मिशन' में सफल हो सके !

काश, हम और हमारा विद्यार्थी समाज इन घटनाओंसे कुछ प्रेरणा ले सकें !

धर्मस्य तत्त्वम्…! : ३ :

क्याथुर : हैदराबाद : ६ मार्च '५६ ।

दक्षिणकी भाषाओंमें भूदान-साहित्यके अनुवादकी चर्चा चल रही थी।

किसीने एक सज्जनके सम्बन्धमें कहा कि वे यदि अनुवाद करें तो बडा अच्छा हो। वे धार्मिक रुचिवाले व्यक्ति हैं। पर मुश्किल यह है कि भूदान या सर्वोदय-साहित्यको धार्मिक साहित्यकी श्रेणीमें रखना उन्हें स्वीकार नहीं। हाँ, 'गीता-प्रवचन' का अनुवाद करना हो, तो वे बडी खुशीसे तैयार हो जायेंगे।

धर्मके सम्बन्धमें ऐसी रूढ भावना बाबाको खटकी।

* * *

उक्त सज्जन बुलाये गये।

और तब धर्म क्या है, धर्मग्रन्थ क्या है, इसपर बाबाने अपने विचार प्रकट किये।

भाव जब हृदयमें भरे रहते हैं, तो वे यथा-समय फूटे बिना नहीं रहते।

शामको बाबा जब प्रार्थना-सभामें बोलने लगे, तो सहजभावसे उन्होंने बता डाला कि वस्तुतः धर्म है क्या और हम उसे किस रूपमें पकड़कर बैठ गये हैं।

* * *

बाबाने बताया कि कोई भी आन्दोलन, जो कि सारे जीवनका ढाँचा बदलनेकी हिम्मत करता है, विचारकी बुनियादपर ही खडा हो सकता है। इसलिए मूल बात यह है कि धर्म-विचार खूब फैलना चाहिए और धर्म-विचारक साहित्य घर-घर पहुँचना चाहिए। पर सवाल यह है कि धर्म-साहित्य कहें किसे ? बहुतोंको लगता है कि :

(१) हम किन्हीं धर्म-ग्रन्थोंका प्रचार कर लेते हैं, तो धर्म-विचारका प्रचार हो जाता है, और

(२) अगर अन्य व्यवहारके विषयोंका प्रचार होता है, तो हम समझते हैं कि धर्म-विचारके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। ये दोनों बातें गलत हैं।

* * *

धर्मग्रन्थोंकी चर्चा करते हुए बाबा बोले कि ऐसा मानना ठीक नहीं कि धर्मग्रंथोंमें जो बातें लिखी हैं, वे सब धर्म-विचार ही हैं। उनमें बहुतसी ऐसी बातें रहती हैं, जिन्हें हम धर्म-विचार या सद्विचारके तौरपर आजकी कसौटीपर कसते हैं तो आज हम उन्हें मान्य नहीं कर सकते। महाभारत हो, मनुस्मृति हो, ओल्ड टेस्टामेंट हो, न्यू टेस्टामेंट हो—इन ग्रन्थोंमें लिखा सबका-सब धर्म-विचार नहीं। इनका सार ही ग्रहण करनेकी हमारी वृत्ति होनी चाहिए।

संतरेका उदाहरण देते हुए बाबाने कहा : संतरेका फल बड़ा अच्छा होता है। स्वास्थ्य और रुचि—दोनोंकी दृष्टिसे उत्तमसे उत्तम फल है; लेकिन हम उसे पूराका-पूरा नहीं खा सकते। हमें उसकी छाल फेंकनी पड़ेगी, बीज निकाल देने होंगे और उसका जो सारका अंश है, उतना ही ग्रहण करना होगा। यही बात धर्मग्रन्थोंपर भी लागू होती है।

* * *

इसके बाद बाबाने पुराने पोंगापंथियोंको चौंका देनेवाली एक बात कही। उन्होंने बताया कि 'मल-मूत्रशास्त्र' नामक ग्रंथ धर्मग्रन्थ है, खालिस धर्मग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें इस बातका वर्णन है कि गांव-गांवमें मल-मूत्रका आज जो दुरुपयोग होता है, उसका सदुपयोग कैसे किया जाय। वह सबका-सब खेतमें पहुँचे, उसपर मिट्टी, घास-फूस पड़े और उसका प्रबन्ध कैसे हो, यह बात चित्र देकर समझायी गयी है। इस ग्रन्थमें असारका कोई अंश नहीं मिला है। इसलिए यह शुद्ध धर्मग्रन्थ है। अपने पुराने धर्मग्रन्थमें शौच-विचार, प्रातःस्नान आदिका सारा हिस्सा धर्मका हिस्सा

माना जाता था। किसी ग्रन्थमें यदि इस बातकी चर्चा है कि गाँव-गाँवमें ग्रामोद्योग कैसे जारी करने चाहिए, वह ग्रंथ भी धर्मग्रन्थ है। अतः धर्म-ग्रन्थ वह है कि जिससे चित्तकी शुद्धि होती है और समाजका अच्छी तरह धारण होता है।

धर्मग्रन्थकी बाबाकी यह उक्ति सोलह आने सही है, पर जो लोग विवेकको किनारे रखकर पुरानी रूढियोंपर ही अड़े रहते हैं, वे भला इसे क्यों स्वीकार करने लगे ?

*　　　*　　　*

बाबाका कहना है कि धर्म वह है, जिससे समाजमें प्रेम बढे। धर्म वह है, जिससे समाज निर्वैर बने।

इसीलिए वे कहते हैं कि

भूदान-यज्ञ धर्म-विचार है।
ग्रामोद्योगका विस्तार धर्म-विचार है।
उपज बढाना धर्म-विचार है।

*　　　*　　　*

धर्म हम भगवान्‌को प्रसन्न करनेका साधन मानते हैं, पर हमारी धर्मकी भावना कितनी अधूरी है, इसे हम ठीकसे नही समझते। बाबाने उसे समझाते हुए एक दिन कहा :

"सुबह उठे, कुछ हरिनाम ले लिया, राम-भजन कर लिया, फिर दिनभर काममें रहते हैं तो भगवान्‌का स्मरण नही रहता है। दिनभर काम तो करना ही चाहिए, लेकिन काम करते हुए भी धर्मकी भावना होनी चाहिए।

किसान खेतमें काम तो करता है, लेकिन खेत जोतते-जोतते पडोसीकी जमीनमें भी कुछ हाथ बढा देता है। कहता है कि दूसरेके खेतमें तो घास है, तो क्या नुकसान होगा ! तो, यह अधर्म हो गया, अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा ?

मालिक दिनभर मजदूरसे काम लेता है, परन्तु पूरी मजदूरी नही देता है। मजदूर कहता है—मुझे एक रुपया चाहिए, मालिक बारह आने देता है। तो, यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा ?

मजदूर मालिकके खेतमें काम करता है। कामका नाम तो लेता है, लेकिन बीच-बीचमें आलस करता है। बैलकी तरह देख-रेख रही तो काम करता है, नही तो बैठ जाता है। ८ घंटे काममें मुश्किलसे ४ घंटे काम करता है। कहता है, यह तो मालिकका काम है, अपना क्या बिगड़ता है ! तो, यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा ?

भगवान्ने सुन्दर-से-सुन्दर महुएके फूल दिये, अच्छे चावल दिये। उसका भात बनाकर महुएके फूल खाने चाहिए। वह तो मेवा है। लेकिन चावल और महुएकी शराब बनाते हैं और शराब पीते हैं। तो, यह अधर्म हो गया। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा ?

ज़मीनके मालिक बनकर बैठते हैं। बोलते हैं कि हम २५ एकड़ ज़मीनके मालिक हैं। पड़ोसमें दूसरेके पास ज़मीन नही है, बाल-बच्चे हैं, खानेको पूरा नही मिलता है और यह मालिक देखता रहता है। तो, यह अधर्म है। अब भगवान् कैसे प्रसन्न होगा ?

हम भगवान्का नाम तो लेते हैं, हममें श्रद्धा भी है, लेकिन वह अधूरी है। सोते समय और उठनेपर भगवान्का नाम लेते हैं और दिनभर भूल जाते हैं। दिनभर काम करना चाहिए। खेतमें काम करते हैं, तो यह भगवान्का काम है। उससे हम सारे गांवकी सेवा कर सकते हैं। अपने कुटुम्बके लिए जितना चाहिए, उतना रखकर बाकीका गाँववालोंको दे दें, तो यह काम भगवान्की भक्तिका ही काम है।

भूदान-यज्ञ ईश्वरकी भक्तिका ही मार्ग है। हमारे पास ज़मीन है, हमारे पड़ोसीके पास नही है। उसे थोड़ा हिस्सा दे देंगे, तो वह भी खायेगा, उसके बाल-बच्चे भी खायेंगे। तो, यह भक्तिका मार्ग हो गया।

पड़ोसीको अपनी सम्पत्ति और शक्तिका थोड़ा हिस्सा देना भक्तिका मार्ग है। पड़ोसीकी सेवा करना भक्तिका ही मार्ग है। हम सब ईश्वरकी

संतान हैं। सब मिलकर काम करेंगे, बाँटकर खायेंगे, मिलकर भगवान्‌का नाम लेंगे, तभी पूरी भक्ति होगी।"

*   *   *

बाबाका कहना है कि धर्मका हम संकुचित अर्थ न करें। हम समझ लें कि सबमे श्रेष्ठ अगर कोई धर्म है, तो वह है—"सर्वोदय-धर्म !"

यह 'सर्वोदय-धर्म' क्या बला है, इसकी व्याख्या करते हुए बाबाने धर्मके मूलतत्त्वपर व्यापक प्रकाश डाला। आपने कहा कि इस धर्ममें—

हरएकको पोषण और विकासका पूरा मौका मिलेगा।

एकके हितके विरोधमें दूसरेका हित हो नही सकता।

सबके हित एक-दूसरेके अविरुद्ध हैं।

और यह सर्वोदय-धर्म इतना व्यापक है कि दुनियाके सारे धर्म इसके पेटमें समा जाते हैं।

सर्वोदय-धर्ममें जीवनव्यापी कुल विचार आ जाता है।

इसमें सब धर्मोंके गुण हैं, दोष किसीके नही।

*   *   *

और जब यह दृष्टि होगी, ऐसा मानकर हम भूदान चलायेंगे, सर्वोदय चलायेंगे, तो देखते-देखते हमारा आन्दोलन देशव्यापी ही नही, विश्वव्यापी बन जायगा। भूदान-यज्ञका विचार इतना व्यापक और विशाल है कि कुलके कुल अंतर्राष्ट्रीय भेद इससे मिटनेवाले हैं। आज हम जिसे 'देशाभिमान' कहते हैं, वह भी न टिकेगा। टिकेगा एकमात्र—विश्वप्रेम।

*   *   *

कैसी सुन्दर, स्पष्ट और प्रेरक व्याख्या है यह धर्मकी।

आज हमें इसी धर्मको अपनानेकी जरूरत है।

यही धर्म हमारा कल्याण कर सकता है, सारे विश्वका कल्याण कर सकता है।

*   *   *

इस धर्ममें, इस सर्वोदय-धर्ममें सबके विकासका अवसर है।

शोषणका इसमें नाम नहीं।

अन्याय और अत्याचारके लिए कोई स्थान नहीं।

दुःख और शोकका कोई सवाल नहीं।

* * *

सर्वोदय-धर्मकी बुनियाद है—अहिंसा।

सर्वोदय-धर्मका लक्ष्य है—प्राणिमात्रका विकास।

सर्वोदय-धर्मका मार्ग है—श्रम, त्याग और सेवा।

बाबा सर्वोदयके दो नियम बताते हैं :

(१) हरएक दूसरेकी फिक्र रखे।

(२) हरएक अपनी फिक्र ऐसी न रखे, जिससे दूसरेको तकलीफ़ हो।

मतलब, हम दूसरेकी कमाई न खायें। अपना भार दूसरोंपर न डालें।

हम खुद कमाई करें। कमाईका अर्थ है—प्रत्यक्ष उत्पादन।

* * *

वेद कहता है :

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

'काम करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रख।'

बाइबिल कहती है : "अपनी रोटी अपना पसीना बहाकर कमा और खा।"

सर्वोदय भी तो यही है कि हर आदमी मेहनत करे, श्रम करे, ईमानदारीसे अपने पसीनेकी कमाईपर गुज़र करे। कोई भी दूसरोंकी कमियों, कमजोरियों और दुःखोंका लाभ न उठाये।

और ऐसा जब होगा, तब न कोई नीचा रहेगा, न कोई ऊँचा। न कोई धनी रहेगा, न कोई गरीब। सब समान रहेंगे। भेदभाव मिट जायगा। शोषण और अन्याय जाता रहेगा। सब सुखी होंगे। सब प्रसन्न होंगे। कोई दुःखी न रहेगा।

तभी होगा सर्वोदय। अर्थात् सबका उदय।

*　　　　*　　　　*

यह धर्म कोई नया धर्म नहीं। यह हमारा शाश्वत धर्म है। हजारों वर्षोंसे हमारे ऋषि प्रार्थना करते आ रहे हैं :

सर्वेऽपि सुखिनः संतु।
सर्वे सन्तु निरामयाः॥
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कश्चित् दुःखमाप्नुयात्॥

● ○ ●

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ? : ४ :

११ सितम्बर १९५५ ।

गुणपुर : कोरापुट : उड़ीसा ।

सायकालीन प्रार्थना-सभा ।

स्थितप्रज्ञकी सम्यक् व्याख्या करते हुए विनोवाने कहा : "हमारे इस शरीरके आज साठ साल पूरे हुए हैं और फिर भी हममें निर्विकारिता नही आयी है तो हमारा जीवन वेकार गया, ऐसा मानना पड़ेगा । आप सबका हमपर आशीर्वाद हो और हमारा आपपर आशीर्वाद हो कि परमेश्वरकी कृपासे यह निर्विकार बुद्धि हमें हासिल हो !"

और इतना कहकर वावाने सबको हाथ जोड़ दिये !

* * *

'स्थितप्रज्ञ' शब्द मुझे प्रिय है, बहुत प्रिय ।

हिन्दीमें, उर्दूमें, अंग्रेजीमें, बंगलामें, गुजरातीमें, मराठीमें, उड़ियामें—जब जहाँ मुझे इस शब्दकी व्याख्याएँ मिलती हैं, मैं बड़ी दिलचस्पीसे पढ जाता हूँ ।

विनोवाका 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' मैंने पढा है, कई बार पढा है, डूबकर पढा है ।

और इतना ही नहीं, स्थितप्रज्ञपर मैंने '*हर आन हँसी, हर आन खुशी* ··· !'[1] जैसे कुछ लेख भी लिखे हैं ।

पर,

'*पोथी पढि-पढ़ि जग मुआ,*
पंडित हुआ न कोय !'

---

१. परिशिष्ट १ ।

और

"उसकी बातोंसे समझ रखा है
तुमने उसे खिन्न!
उसके पाँवोंको तो देखो
कि किधर जाते हैं!"

कहाँ बाबा और कहाँ मैं?

स्थितप्रज्ञता मुझसे कोसों दूर है।

फिर भी बाबाकी ही भाँति मेरा भी विश्वास है कि यह साधना कठिन होते हुए भी, मुश्किल होते हुए भी असाध्य नहीं। मैं यदि लगा रहूँ, जी-जानसे इस रास्तेपर चलनेकी कोशिश करता रहूँ तो मेरे भी जीवनमें एक दिन ऐसा आ सकता है और जरूर आ सकता है, जब मैं यह दावा कर सकूँ कि विकारोंकी आँच अब मुझे जला नहीं सकती!

दूर भले ही हो ऐसा दिन, पर मैं यदि प्रयत्न न छोड़ूँ तो ऐसा दिन आना असम्भव नहीं, इसमें मुझे रत्तीभर शक नहीं।

* * *

उस दिन बाबा बोले :

"हमारी इच्छा है कि भूदानके कामके साथ-साथ गाँव-गाँवमें सामूहिक प्रार्थना चले और उस प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञके लक्षण बोले जायँ।"

स्थितप्रज्ञके श्लोक[1] इतने लोकप्रिय कैसे बने, इसका विवेचन करते हुए बाबाने कहा कि स्थितप्रज्ञके ये श्लोक बहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध हैं। सामूहिक प्रार्थनामें श्लोक बोलनेका रिवाज गांधीजीने शुरू किया। शंकराचार्यने इन श्लोकोंकी बड़ी महिमा गायी है। जब उन्हें अन्तिम अवस्थाका कोई नमूना देना होता है तो वे स्थितप्रज्ञके लक्षण पेश करते हैं। उसमें एक परम सत्यार्थीका आदर्श रखा गया है। यह हमेशा उनके सामने था और उन्हें प्रिय था। जहाँ स्थितप्रज्ञता आ गयी, वहाँ केवल

1. परिशिष्ट ७।

मुक्ति ही शेष रह जाती है। और कुछ बाकी नहीं रहता। शंकराचार्य इन विचारोंमें तन्मय थे, इसलिए इन श्लोकोंपर ज़ोर देना उनके लिए स्वाभाविक था; परन्तु इन्हें इतना लोकप्रिय बनानेका श्रेय महात्मा गांधीको हासिल हुआ है। उन्होंने ये श्लोक हम जैसे साधारण साधकोंके सामने, व्यवहारमें और राजनीतिमें काम करनेवाले लोगोंके सामने रखे।

* * *

गीतामें दिये हुए भक्तके लक्षणोंकी प्रशंसा करते हुए बाबाने कहा कि मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तानमें गांधीजीके पहले इस तरहके दुनियामें काम करनेवाले, व्यावहारिक लोग स्थितप्रज्ञके श्लोक बोलते होंगे। प्रायः सर्व-साधारण लोग भक्तके लक्षण गाया करते हैं। गीतामें दिये हुए भक्तके लक्षण बहुत अच्छे हैं और गीताका सबसे मधुर अंश यदि कोई है, तो वह यही है। इसलिए लोग भक्तके लक्षण गाया करते हैं। परन्तु स्थितप्रज्ञके श्लोक अन्तिम अवस्थाका वर्णन करते हैं और फिर भी गांधीजीने उन्हीं श्लोकोंको चुनकर लोगोंके सामने रखा और ये श्लोक लोकप्रिय हो गये।

* * *

पर गांधीजीने ये श्लोक ही क्यों चुने, इसका उत्तर देते हुए बाबा बोले : गांधीजीने इन श्लोकोंको क्यों चुना और उन्हें इनका इतना आकर्षण क्यों मालूम हुआ, इसका कुछ अन्दाज़ हम लगा सकते हैं। उसका एक कारण यह है कि विज्ञानके युगमें जिस बातकी सबसे अधिक आवश्यकता है, उसकी पूर्ति इन श्लोकोंसे होती है। शंकराचार्यको आत्माकी अन्तिम स्थितिका बड़ा आकर्षण था और उसी दृष्टिसे वे इन श्लोकोंकी ओर देखते थे। परन्तु वैज्ञानिक युगमें रहनेवालोंको इन श्लोकोंसे ऐसी चीज़ मिलती है, जिसकी इस युगको अत्यन्त आवश्यकता है। वह चीज़ यह है कि इन श्लोकोंमें सबसे अधिक महत्त्व 'प्रज्ञा' को दिया है। प्रज्ञाका अर्थ है—निर्णय-शक्ति। यह निर्णय-शक्ति परमार्थमें जितनी उपयोगी है, उतनी ही व्यवहारमें।

* * *

विज्ञानने मानवकी समस्याएँ कितनी अधिक बढा दी हैं, इसकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा कि आजकल वैज्ञानिक युगमें मनुष्यके मसले बहुत व्यापक हुए हैं। इसलिए कठिन समस्याएँ पेश होती हैं। इस युगमें छोटे-छोटे सवाल पेश ही नही होते। जो भी सवाल पेश होते हैं, वे बड़े ही होते हैं। विज्ञानके कारण छोटी-छोटी समस्याएँ भी व्यापक रूप, अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले लेती हैं। दूसरी मजेदार बात यह है कि इधर तो व्यापक और कठिन समस्याएँ पेश होती हैं, उधर उनका जल्दी निर्णय करनेकी भी आवश्यकता होती है। कारण, कालकी महिमा इतनी बढ गयी है कि एक-एक घण्टा भारी हो जाता है। आठ बजे मिलनेवाली डाक नौ बजे मिले, तो मनुष्य घबडा जाता है।

* * *

बाबाने बताया और बिलकुल सही बताया कि जहाँ ऐसी हालत है कि समस्याएँ भी बडी-बडी हैं और उनका निर्णय भी तुरत करना आवश्यक है, वहाँ स्थितप्रज्ञके लक्षणोंसे बडा सहारा मिलता है। अन्तिम ब्रह्मदर्शनके लिए जैसे स्थितप्रज्ञके लक्षणोंके सिवा गति नही है, वैसे ही, इस युगकी समस्याओंको हल करनेके लिए भी स्थितप्रज्ञके लक्षणोंके सिवा गति नहीं है। इन दिनों घण्टेभरमें सारी दुनियाकी खबरें मिल जाती हैं। उनका अपनेपर असर न होने पाये, इसका ध्यान रखते हुए सबका तटस्थ-बुद्धिसे निर्णय करना होता है। यदि असर पड गया तो निर्णय ठीक नहीं होगा। इस तरह आजके जमानेके लिए निर्णय-शक्तिकी महिमा बहुत बढ गयी है। इसीलिए गाधीजीने साधारण कार्यकर्ताओंके सामने भी गीताके ये श्लोक रखे।

* * *

सेवाके विविध प्रकारोंकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा कि मनुष्य कई प्रकारसे समाजकी सेवा करता है। शारीरिक सेवा, मानसिक सेवा और वाणीसे भी सेवा करता है। लेकिन सबमें श्रेष्ठ सेवा वह है कि जिसके द्वारा समाज विचार करनेमें स्वावलम्बी बने। बच्चोंको इस तरह तरहका

ज्ञान दें, इस बातका उतना महत्त्व नही है, जितना इस बातका कि बच्चे ज्ञान प्राप्त करनेमें स्वतन्त्र हों। समाजके प्रत्येक व्यक्तिमें यदि अपने लिए विचार करनेकी शक्ति आ जाय, तो समाजकी बहुत बडी सेवा होती है। स्थितप्रज्ञके लक्षण हमारे जीवनमें आ जायँ और उनका आना बहुत ज्यादा कठिन नही है—ऐसा हम कह सकते हैं, तो समाजकी समस्याएँ यों ही हल हो जायँ, क्योंकि उनके कारण हर घरमें निर्णय-शक्ति दाखिल होगी। हर घरमें दीपक लग जाय तो रातका अँधेरा मिटा! वैसे ही हर घरमें स्थितप्रज्ञके लक्षण दाखिल हो जायँ तो निर्णय-शक्ति आ जायगी। हम चाहते हैं कि ससारमें गणतन्त्र स्थापित हो और शासनमुक्ति आ जाय तो मनुष्यकी बुद्धि शात, सम और शुद्ध होनी चाहिए।

*　　　*　　　*

'स्थितप्रज्ञ बनना कठिन नही है'—बाबाकी यह बात श्रोताओंको चौंकानेवाली थी। उसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने कहा कि हमने यह हिम्मतकी बात कही है। इसे हम जरा स्पष्ट करेंगे। स्थितप्रज्ञता एक अत्यन्त विकसित अवस्था है, लेकिन साधारण क्षेत्रमें उसका साधारण आरम्भ हो सकता है। अपने व्यवहारके क्षेत्रमें, अपने कुटुम्बके क्षेत्रमें या अपने गांवके क्षेत्रमें निर्णय करनेकी शक्ति हासिल हो सकती है। इस तरहसे अधिकसे-अधिक व्यापक क्षेत्रमें निर्णय करनेकी शक्ति हासिल हो, तो निर्णय-शक्तिके उत्तरोत्तर अनेक व्यापक अर्थ हो सकते हैं। परन्तु इस निर्णय-शक्तिका स्वरूप एक ही रहेगा। चाहे अपने व्यक्तिगत मामलेमें निर्णय देना हो, घरके क्षेत्रमें, गांवके क्षेत्रमें या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें निर्णय देना हो, निर्णय शक्तिका स्वरूप यही रहेगा कि किसी भी समस्यापर विचार करते समय मनोविकार दाखिल नही होने चाहिए।

*　　　*　　　*

यह चीज कठिन क्यों नही मानी जानी चाहिए, इसके दो कारण बाबाने बताये :

पहला कारण तो यह कि समता आत्माका स्वरूप है। आत्मा स्वयं

निर्विकार है। हम विचारवान् बनते हैं, तभी हमें कुछ क्लेश होता है। और निर्विकार रहनेके लिए किसी क्लेश या प्रयत्नकी जरूरत ही नही होती। जैसे, किसीपर गुस्सा करना हो तो जरूर कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना होगा। आंखका स्वरूप बदलना पड़ेगा, हाथ उठाना पड़ेगा, शायद लाठी भी उठानी पड़े। इस तरह कुछ-न-कुछ क्लेश करना पड़ेगा और नाड़ी भी तेज चलेगी। लेकिन गुस्सा नही करना है, तो कुछ खास प्रयत्न करनेकी जरूरत ही नही है। उसमें कुछ करना ही नही है। उसमें कुछ श्रम ही नही होगा। इस प्रकार निर्विकार अवस्थाकी प्राप्ति कुछ कठिन नही मानी जायगी।

* * *

दूसरा कारण यह है कि इस विज्ञानके युगमें वह एक आवश्यकता है और इसलिए वह हर मनुष्यमें उपस्थित होगी।

बाबाने कहा कि इस तरह हम देखते हैं कि मनोविकारोंके खिलाफ अब दो शक्तियां काम करने लगी हैं। पुराने जमानेमें मनोविकारोंके खिलाफ केवल एक ही शक्ति, आत्माकी शक्ति काम करती थी। आज तो विज्ञान भी मनोविकारोंके खिलाफ खड़ा है। इसलिए निर्विकार चिन्तनकी शक्ति अत्यधिक कठिन नही मानी जानी चाहिए। हमने 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में लिख रखा है और हमारा यह निश्चित विचार है कि मेरे जैसा मनुष्य यदि गामा पहलवान बनना चाहे तो नहीं बन सकता। उसी तरह हर कोई मनुष्य चाहे तो राष्ट्रपति नही बन सकता। पर, हर व्यक्ति यदि चाहे तो स्थितप्रज्ञ बन सकता है।[1]

* * *

बाबाके इस प्रवचनसे हम ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

(१) स्थितप्रज्ञके लक्षणोंवाले श्लोकोंमें सबसे अधिक महत्त्व जिस वस्तुको दिया गया है—वह है 'प्रज्ञा।'

---

१. विनोबा : स्थितप्रज्ञ-दर्शन, पृष्ठ ७४।

(२) प्रज्ञाका अर्थ है—निर्णय-शक्ति ।

(३) यह प्रज्ञा परमार्थमें जितनी उपयोगी है, उतनी ही व्यवहारमें भी ।

(४) आजके वैज्ञानिक युगमें छोटी-छोटी समस्याएँ भी व्यापक रूप धारण कर लेती हैं ।

(५) इन समस्याओंका निर्णय भी शीघ्रसे-शीघ्र करना आवश्यक होता है ।

(६) प्रज्ञाके विना ठीक-ठीक निर्णय नही किया जा सकता ।

(७) अतः आजके युगमें प्रज्ञाकी अत्यधिक आवश्यकता है ।

(८) यदि प्रत्येक घरमें निर्णय-शक्ति दाखिल हो जाय तो सभी समस्याएँ आसानीसे हल हो जायँ ।

(९) स्थितप्रज्ञ बनना, निर्णायक शक्ति प्राप्त करना कठिन नही है ।

(१०) आत्मा निर्विकार है । निर्विकार रहनेके लिए किसी क्लेश या प्रयत्नकी आवश्यकता नही ।

(११) आज आत्माकी शक्ति भी मनोविकारोंके खिलाफ़ है, विज्ञानकी भी ।

(१२) अतः हर व्यक्ति स्थितप्रज्ञ बन सकता है ।

* * *

यह विश्लेषण बडा सारगर्भित है, बडा तर्कपूर्ण भी ।

प्रज्ञाकी आवश्यकता सभीको है । छोटे, बडे, सभीको ।

और बाबा कहते हैं कि यह हरएकके लिए सम्भव है । इसमें कठिन जैसी कोई चीज़ ही नहीं ।

मैं भी मानता हूँ कि यह कठिन नही है, पर यह आसान भी नही है । इसके लिए साधनाकी आवश्यकता है और दीर्घ साधनाकी । कारण,

'बडी मुश्किलसे काबूमें,
दिले दीवाना आता है !'

* * *

हमें विकारोंकी आँच न लगे, कामनाएँ हमें क्षुब्ध और विचलित न करें, दुःख-सुख, शीत-उष्ण, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वंद्व हमें प्रभावित न करें, यह मामूली बात नही। उत्तेजनाके क्षणोंमें हम चित्तका संतुलन न खोयें, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर हमपर हावी न हो सकें—यह साधना दाल-भातका कौर नही। इसके लिए दीर्घकालीन प्रयत्न अनिवार्य है।

पर, मुश्किल लाख हो, चलना तो हमें इसी रास्तेसे है।

और यह निश्चित है कि हम यदि बिना रुके इस दिशामें चलते रहें तो एक-न-एक दिन अवश्य ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे।

● ● ●

पण्डिताः समदर्शिनः

: ५ :

२६ मार्च, १९५६ ।

ब्राह्ममुहूर्तकी पावन वेला ।

नक्षत्रोंकी शीतल छायामें हम लोग अगले पडाव गुतकुलकी ओर बढ रहे थे ।

बाबा गुनगुनाने लगे—

> "तुलसीके अवलम्ब नामको,
>
> एक गाँठि कइ फेरे !"

बाबाको बहुत प्रिय है तुलसीका यह पद—

नाम राम ! रावरोइ हित मेरे ।
स्वारथ-परमारथ-साथिन्हसों, भुज उठाइ कहौं टेरे ॥
जननि-जनक तज्यो जनमि करम बिनु, बिधिहु सृज्यो अवडेरे ।
मोहुँसों कोउ-कोउ कहत रामहिको, सो प्रसंग केहि केरे ? ॥
फिर्यो ललात बिनुनाम उदरलगि, दुखहु दुखित मोहिं हेरे ।
नाम-प्रसाद लहत रसाल फल, अब हौं बबुर बहेरे ॥
साधत साधु लोक-परलोकहिं, मुनि गुनि जनन घनेरे ।
तुलसीके अवलम्ब नामको, एक गाँठि कइ फेरे ॥

* * *

"क्यों दामोदर, तुमने कभी पुड़ियाँ बाँधी हैं ?"—अचानक बाबाने दामोदर भाईसे पूछ दिया ।

"नहीं बाबा, मैंने तो कभी पुड़ियाँ नहीं बाँधीं । हमारे यहाँ तो बर्तनोंका व्यापार होता था, जिसमें पुड़ियाँ बाँधनेका सवाल ही नहीं !"—दामोदर भाई बोले ।

"मैंने बांधी हैं पुडियां, बाबा !"—ओम् प्रकाश भाईने कहा।

"हां, तो देखो। पुडियां बांधते समय धागेके आडे-टेढे कई फेरे दिये जाते हैं न? और आखिरमें एक गांठ लगा दी जाती है। वह गांठ न हो, तो धागेके वे सारे फेरे पुडिया नही बांध सकते। यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, इन्द्रिय-सयम आदि सारे साधन धागेके यही फेरे हैं। पुडिया बांधनेवाली गांठ है—हरिनाम निष्ठा। उसके बिना वे सभी फेरे ढीले पड जायेंगे, बेकार हो जायेंगे और पुडिया बिखर जायगी। तराजूके एक पलडेपर ये नानाविध साधन रखें और दूसरी तरफ रखें नामनिष्ठा, तो नामनिष्ठाका पलडा ही भारी साबित होगा। तुलसीदास कहते हैं—

'तुलसीके अवलम्ब नामको
एक गाँठि कइ फेरे।'

इसमें वे सिर्फ इतना ही नही सुझाते। नामनिष्ठाके सिवा वे साधन व्यर्थ हैं और नामनिष्ठाके साथ वे समर्थ हैं, ऐसा उभय योग इसमें सूचित किया है। मतलब, उपयोग तो और साधनोंका भी है, परन्तु मुख्य आलम्बन है—नामनिष्ठा।"

नामनिष्ठाकी कैसी उत्तम व्याख्या!

*　　　　*　　　　*

भक्ति, ज्ञान, वेदान्त—बाबाका परम प्रिय विषय ठहरा।

ज्ञानचर्चा छिडी सो छिडी।

इसी बीच आ गयी साम्ययोग और गीताकी कुछ चर्चा।

फिर क्या था! गीताके अनन्य भक्त विनोबाके मुखसे एक एक कर, एकके बाद एक, श्लोकोंकी झडी लग गयी

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः[1] ॥ ५।१८

---

१. विद्या और विनयसे सम्पन्न ब्राह्मणमें तथा गायमें हाथीमें, कुत्तेमें और कुत्तेको खानेवाले चाण्डालमें ज्ञानी लोग समदृष्टि रखते हैं ॥ ५-१८

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः[1] ॥ ५।१९
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते[2] ॥ ६।९
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः[3] ॥ ६।२९
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति[4] ॥ ६।३०
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते[5] ॥ ६।३१
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः[6] ॥ ६।३२

---

१. जिनका मन समत्वमें स्थिर हो गया है, उन्होंने इस देहमें रहते ही आवागमनको जीत लिया है। परब्रह्म स्वयं दोष-रहित और सर्वत्र समभावी है। इसलिए ऐसा पुरुष ब्रह्ममें ही स्थिर हो गया है ॥ ५-१९

२. हितेच्छु, मित्र, शत्रु, उदासीन, दोनोंका भला चाहनेवाला, द्वेषी, बन्धु, साधु और पापी—इन सबमें जो समभाव रखता है, वह श्रेष्ठ है ॥ ६-९

३. सर्वत्र समभाव रखनेवाला योगी अपनेको सब भूतोंमें और सब भूतोंको अपनेमें देखता है ॥६-२९

४. जो ईश्वरको सर्वत्र देखता है और सबको ईश्वरमें देखता है, न तो वह ईश्वरकी दृष्टिसे ओझल होता है और न ईश्वर उसकी दृष्टिसे ओझल होता है ॥ ६-३०

५. जो मनुष्य ईश्वरनिष्ठ है और प्राणिमात्रके प्रति समभाव रखता है, वह चाहे जिस तरह बरतता हुआ भी ईश्वरमें ही बरतता है ॥ ६-३१

६. हे अर्जुन ! जो मनुष्य अपने जैसा सबको देखता है और सुख हो या दुःख, दोनोंको समान समझता है, वह योगी श्रेष्ठ गिना जाता है॥ ६-३२

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्त यः पश्यति स पश्यति[1] ॥ १३।२७
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परा गतिम्[2] ॥ १३।२८
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्[3] ॥ १८।५४

साम्ययोगके उपासक बाबाने इन श्लोकोंसे तीन तत्त्व निकाले हैं—

(१) समाजमें किसी भी सत्ताका शासन न रहे । सबपर सद्विचारोंका ही शासन चले ।
(२) व्यक्तिकी सारी शक्तियाँ समाजके लिए अर्पित रहें और समाज हर व्यक्तिको विकासका पूरा-पूरा अवसर दे ।
(३) ईमानदारीसे अपनी शक्तिके अनुसार की हुई किसी भी प्रकारकी सेवाका नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्य समान ही माना जाय ।

कैसे क्रान्तिकारी तत्त्व हैं ये !

* * *

एक बार बलिया जिलाबोर्डने बाबाको मानपत्र दिया । उस मानपत्रमें लिखा था— "बाबाने साम्यवादके बदले साम्ययोगकी कल्पना समाजके सामने रखी है ।"

---

१. सभी नाशवान् प्राणियोंमें अविनाशी परमेश्वरको समभावसे उपस्थित जो जानता है, वही उसे जाननेवाला है ॥ १३-२७

२. जो मनुष्य ईश्वरको सर्वत्र समभावसे अवस्थित देखता है, वह आत्मघात नहीं करता और इससे परम गतिको प्राप्त करता है ॥ १३-२८

३. ब्रह्मभावको पहुँचा हुआ प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो किसी बातका शोक करता है और न किसी बातकी आकांक्षा करता है । भूतमात्रमें समभाव रखकर वह ईश्वरभक्तिको प्राप्त करता है ॥ १८-५४

उत्तरमें बाबाने कहा : "मैं मानता हूँ कि वैचारिक जगत्को मेरी यह देन है। लेकिन दोनोंमें एक भी शब्द मेरा नही है। 'साम्ययोग' गीताका शब्द है; 'साम्यवाद' है 'कम्युनिज्म' का अनुवाद। मैंने इन दोनोंका विरोध दिखाया है। साम्ययोग और साम्यवाद, दोनोंमें साम्य तो है, लेकिन साम्ययोगमें आन्तरिक समानताका अनुभव होता है और साम्यवादमें अक्सर देखा जाता है कि उसका आधार दूसरेके मत्सरपर होता है। साम्यवाद श्रीमानोंका मत्सर सिखाता है।[1]

* * *

बिहारमें एक दिन प्रार्थना-प्रवचनमें बाबाने समझाया कि भूमिदान-यज्ञके पीछे जो मूलविचार है, उसका नाम है—साम्ययोग।

आपने बताया कि आज दुनियामें तीन विचार चल रहे हैं—

(१) पूँजीवाद
(२) लोकशाही समाजवाद
(३) साम्यवाद।

पूँजीवादका दावा है कि वह क्षमता पैदा करना चाहता है। वह कहता है कि कुछ लोगोंकी योग्यता कम है, इसलिए उन्हें कम मिलना चाहिए। कुछ लोगोंकी योग्यता ज्यादा है, इसलिए उन्हें ज्यादा मिलना चाहिए। इस योग्यताके अनुसार मजदूरी देकर वह समाजमें क्षमता लाना चाहता है। इससे कुछ लोगोंका जीवन ऊँचे स्तरतक चला गया है, लेकिन बहुत सारे लोगोंका जीवन तो बिलकुल खाईमें गिर गया है। पूँजीवादके पास इसका कोई इलाज नही है।

लोकशाही समाजवादमें हरएकको एक वोट रहता है। वोटके बलपर सारा काम चलता है। उसमें अल्पमत्स्यकोंकी रक्षा नही होती, बहुमत्स्यकोंकी होती है। लोकशाही समाजवादका कहना है कि उसमें सबकी रक्षा ही है, किन्तु इसके कारण निर्माण होनेवाली बुराइयोंको

---

१. विनोबा : भूदान-गंगा, पहला खण्ड, पृष्ठ ८६।

दुरुस्त करनेका इलाज समाजवादके पास नही है। जबतक बहुसख्यकोंकी रायमे ही अल्पसख्यकोंके हितकी रक्षा करनेकी कोशिश की जायगी, तबतक पूरा समाजवाद नही आ सकता।

साम्यवाद (कम्युनिजम) कहता है कि आजके ऊँचे वर्गको समाप्त किये विना समता नही आ सकती। वर्ग-सघर्ष और जिनके हाथमें सत्ता है, उन्हें खत्म किये विना चारा नही। उतनी हिंसा लाजिमी और धर्मरूप है, किन्तु स्पष्ट है कि इस विचारमे भी दुनियामें शांति नही हो सकती, क्योंकि हिंसामेंसे प्रतिहिंसा ही निर्माण होती है। इतना ही नही, उसके कारण मनुष्यताका मूल्य और उसकी प्रतिष्ठा भी घट जाती है।

किन्तु साम्ययोगकी मान्यता है कि हर मानवमें एक ही आत्मा समान रूपसे बसती है। साम्ययोग मानव-मानवमें भेद नही करता, बल्कि मानव आत्मा और प्राणिमात्रकी आत्मामें भी बुनियादी भेद नही मानता।

साम्यवाद और साम्ययोगमें यही अन्तर है कि साम्यवाद आत्माकी एकताको नहीं मानता और साम्ययोग मानता है। इतना ही नही, साम्ययोग उसके आधारपर गहराईमें भी जाना चाहता है। इसीलिए नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें इसके क्रान्तिकारी परिणाम होते हैं।

जब हम एक बुनियादी आध्यात्मिक विचार ग्रहण करते हैं, तो जीवनकी अनेक शाखाओंमें प्रवेश करते हैं। अपनी बुद्धिशक्तिके मालिक हम नहीं, भगवान् है। और चूँकि हमारे सभी गुण समाजके लिए हैं, इसलिए हमे चाहिए कि अपने पासकी सारी शक्तियोंको ईश्वरकी देन मानें और समाजको अर्पण कर दें। हम तो अपने शरीरके भी मालिक नहीं, उसके ट्रस्टीमात्र हैं। साम्ययोग कहता है कि सम्पत्ति किसी रूपमें भी क्यों न हो, हम उसके मालिक नहीं हैं। साम्ययोग और साम्यवादमें यही बड़ा भारी फर्क है।

'ट्रस्टीशिप' का विचार जहाँ आता है, वहाँ पूरी वैचारिक क्रान्ति होती है, याने अपनी-अपनी चीजोंपर हम जो अपनी मालकियत मानते हैं, वह गलत है। हमारे पास जितनी भी शक्तियाँ हैं, समाजकी सेवाके लिए हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ साधनेके लिए नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ तो अपने स्वार्थको समाजके चरणोंमें समर्पित कर देनेमें ही है।

यह है साम्ययोगकी नैतिक विशेषता।

* * *

कोई भी व्यक्ति अपनी शक्तिभर समाजका पूरा काम करता है, तो वह रोटीका हकदार हो जाता है। विना आँखका आदमी, अपनी इस कमीके वावजूद जो कुछ बनता है, पूरी शक्तिसे करता है, तो वह खानेका हकदार है, भले ही आँखवालेकी अपेक्षा उसकी सेवाकी मात्रा कम हो। पोषण भौतिक वस्तु है, सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तुकी कीमत भौतिक वस्तुमें नहीं हो सकती। नैतिक मूल्योंके समान आर्थिक क्षेत्रोंमें भी श्रमका मूल्य समान होना चाहिए। आज इससे बिलकुल उलटा होता है।

आज शारीरिक कामकी अपेक्षा बौद्धिक कामकी मजदूरी ज्यादा दी जाती है। उसकी प्रतिष्ठा भी ज्यादा होती है। लेकिन इस तरहका फर्क बिलकुल बेबुनियाद है। साम्ययोगका विचार आत्माकी समतापर निर्भर है, इसलिए आर्थिक क्षेत्रोंमें भी वह कोई भेद स्वीकार नहीं कर सकता। समाजमें हरएककी सेवाका प्रकार भिन्न हो सकता है, पर उसका आर्थिक मूल्य समान ही होना चाहिए। हरएकको विकासका पूरा मौका मिले।

* * *

साम्ययोगका आर्थिक क्षेत्रमें यह परिणाम होगा कि गाँव-गाँव पूर्ण स्वावलम्बी बनेंगे। अगर आर्थिक क्षेत्रमें समता न होगी तो ऊँच-नीचका भेद बढ़ेगा, परावलम्बन पैदा होगा और एक आत्मा दूसरी आत्माकी गुलाम बनेगी। इसमें सत्ता विकेन्द्रित होगी और होते-होते शासनमुक्त समाज बनेगा।

सामाजिक क्षेत्रमें भी जातिभेद या ऊँच-नीचका भाव न रहेगा।

इस तरह साम्ययोग नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें परिवर्तन लाना चाहता है। भूदान तो प्रारम्भमें मोह-ममतासे मुक्त होनेका विचार है। लेकिन मुक्त हों कैसे? तो, शुरू करना है—ज़मीनकी मालकियतसे मुक्ति पानेके कामसे। गांवकी जितनी भूमि है, वह सब गांववालोंकी है। प्रान्तमें भूमि कम और लोग ज्यादा हैं, तो इस प्रान्तके लोग उस प्रान्तमें जाकर बस सकते हैं। इसी तरह इस देशके दूसरे देशमें भी जा सकेंगे। आखिर समग्र पृथिवी माता पूर्ण मुक्त है। जो जहां रहना चाहे रह सके, जो जहां सेवा करना चाहे, कर सके। जितनी सारी हवा है, जितना सारा पानी है, जितनी सारी रोशनी है और जितनी सारी धरती है, वह सारीकी-सारी सबकी है। यही हमारे साम्ययोगकी व्यापक दृष्टि है।[1]

* * *

हां तो, साम्ययोगकी इस व्यापक दृष्टिवाले बाबाको साम्ययोग सम्बन्धी श्लोक बोलते देख मैंने सहज ही पूछ दिया—'विद्या-विनय-सम्पन्ने' वाले श्लोकके बारेमें।

मैंने कहा : "बाबा, इस श्लोकमें ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और श्वपाक—ये पांच ही नाम क्यों दिये गये हैं? पांच ही देनेका कोई खास अर्थ तो नहीं?"

बोले : "नहीं। कोई खास अर्थ तो नहीं है। यों, ज्ञानदेवने ६ कर दिये हैं—

'शुनि चैव श्वपाके च'

के स्थानपर उन्होंने कर दिया है—

'शुनि, श्वपाके, मशके च!'

---

1. विनोबा : भूदान-गंगा, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १८१-१८६।

उन्होंने दो Climax (अन्तिम सिरे) लिये—

(१) विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण और श्वपाक,

(२) गो और कुत्ता,

(३) हाथी और मशक।

एक पवित्रतम—दूसरा निकृष्टतम।

एक अत्यन्त सरल, सीधा, दयालु—दूसरा काट खानेको तैयार।

एक इतना ऊँचा विशाल—दूसरा इतना छोटा नगण्य।

अर्थात् चाहे पवित्रसे-पवित्र विद्या और विनयसे सम्पन्न ब्राह्मण हो, चाहे निंद्यसे-निंद्य चाण्डाल हो, चाहे गौ जैसा सीधा, सरल, उदार, दयालु प्राणी हो, चाहे कुत्तेकी तरह खूँखार, हरदम भौंकने और काटनेको तैयार प्राणी हो, चाहे हाथी जैसा विशाल प्राणी हो, चाहे मशक (मच्छड़) जैसा छोटा नगण्य प्राणी हो, पण्डितकी दृष्टिमें सब बराबर होते हैं !"[1]

*   *   *

---

1. *मग हा मशकु हा गजु।*
कीं हा श्वपचु हा द्विजु।
पैल इतरु हा आत्मजु।
हें उरेल कें। ९३
ना तरी हे धेनु हें श्वान।
एक गुरु एक हीन।
हें असो कैंचें स्वप्न।
जागतया। ९४

तब फिर यह मशक है और यह हाथी है, अथवा यह चांडाल है और यह ब्राह्मण है, यह आत्मज है और यह दूसरा है, ये बातें कहाँ रहीं ? ९३

अथवा यह गौ है और यह कुत्ता है, यह बड़ा है और यह छोटा है, और अधिक क्या कहें, ये सब स्वप्न उस जाग्रतको कहाँसे होंगे ? ९४

हमारा रोम-रोम पुकार उठेगा—

निगह अपनी हकीकत-
आशना मालूम होती है!
नज़र जिस शय पै पडती है,
खुदा मालूम होती है!!

• • •

अशाश्वत संग्रह कौन करे ? : ६ :

२४ फरवरी, '५६।

प्रातः-भ्रमणमें बात निकल पड़ी—संग्रह, असंग्रह, परिग्रह, अपरिग्रहकी।

इसी सिलसिलेमें बाबा बोले : ५-६ साल पहलेकी बात है। तेलंगानामें बहुतसे मानपत्र मिले थे मुझे। शीशेमें मढे-मढाये उन मानपत्रोंको दामोदरने बड़े जतनसे सँजोकर रखा था। एक दिन हम लोग ट्रेनमें जा रहे थे। गोदावरीके पुलपर जब हमारी गाडी पहुँची तो मैंने मानपत्रोंका वह बंडल उठाकर नदीमें फेंक दिया! यह अच्युत भी था, उस समय हमारे साथ। दामोदरने यह देखा तो बहुत बिगडा। पर करता क्या! तीर तो छूट ही चुका था!

* * *

मैंने कहा : हरिभाऊजीने[1] बापूके एक पत्रकी चर्चा की है। लिखा है कि आपने उसे पढकर उत्तरके लिए भी नहीं रखा और फाड़ दिया। कमलनयनने उसके फटे टुकड़े जोड़कर देखा तो, उसमें लिखा था—"*तुमसे बढ़कर उच्च आत्मा मेरी जानकारीमें नहीं है!*"

बाबा मुसकराते हुए बोले : उसे फाड़ता नहीं तो क्या करता? मेरे किस कामका था वह पत्र? बेकामकी चीज मैं क्यों जुटाकर रखता? बापूकी यह महानता थी कि उन्होंने अपनी दृष्टिसे मुझे जैसा देखा, वैसा लिख दिया, पर मेरी कमियाँ और कमज़ोरियाँ वे क्या जानें?

बाबा बोलते गये : ३२ साल मैं बापूके सम्पर्कमें रहा। उनके पास रहनेवालोंमें मैंने ही उनका सबसे कम समय लिया। मैं उनसे मिलता

---

१. हरिभाऊ उपाध्याय : श्रेयार्थी जमनालालजी, पृष्ठ ७१।

भी बहुत कम और पत्र भी बहुत कम ही लिखता। यही समझो, सालमें २,३ पत्र। सो भी तब, जब उन्हें किसी विषयपर कुछ चर्चा करनी होती या मुझे। पत्रोंका काम जैसे ही पूरा होता, मैं उन्हें फाड डालता। बचपनमें मैंने कितनी ही कविताएँ लिखी, पर या तो उन्हें अग्निनारायणकी भेंट कर दिया, या गंगामें प्रवाह कर दिया। दो कविताएँ शिवाजीको मिली हैं। मैं तो मानता हूँ कि इससे कोई हानि नही हुई।

साथियोंकी ओर देखते हुए बाबा बोले : "मैं तो पत्रोंको फाड फेंकता हूँ, पर मेरे ये साथी लोग मानो मुझसे बदला लेनेके लिए मेरे पत्रोंका संग्रह करते हैं!"

* * *

बाबाके जीवनमें शुरूसे ही असंग्रहकी यह वृत्ति रही है। कई साल पहले वे किसी पुस्तकपर अपना नाम लिख रहे थे कि उन्हें यह खटका कि इसपर मैं अपना नाम क्यों लिखूँ? इसे अपनी मिलकियत बनाकर रखनेकी जरूरत क्या है? किताब पढी, उसका लाभ उठाया, बस! उसके बाद वह दूसरेके पास जानी चाहिए। इसी तरह एक हाथसे दूसरेमें जाते-जाते जब वह फट जायगी, तब उसकी सार्थकता माननी चाहिए!

* * *

अपरिग्रहकी यह भावना बाबा सर्वव्यापी बनानेको उत्सुक हैं। कहते हैं:

मेरा अपरिग्रह शंकर जैसा नहीं है। चमडा पहनकर भभूत लगानेवाला शंकर भी तो मानता है, पर उनके हाथमें कुबेर रहेगा। विष्णुके पास लक्ष्मी पड़ी है, लेकिन वह उनके प्रति अत्यन्त उदासीन हैं। समाजमें सब धन होना चाहिए, परन्तु व्यक्तिको उतना ही लेना चाहिए, जितना उसके लिए जरूरी हो। कलकी चिन्ता भी नहीं करनी चाहिए। जो जवानीमें समाजकी चिन्ता करता है, समाज बुढ़ापेमें उसकी चिन्ता करता है। अपरिग्रह रखनेवालेकी बुद्धि बुढ़ापेमें तेज हो जाती है।

* * *

बाबाकी मान्यता है कि हमें सब कुछ समाजको अर्पण करना चाहिए और अपने लिए जितना जरूरी हो, उतना ही लेना चाहिए। सबको कहना चाहिए कि *"समाजाय इदम् न मम, राष्ट्राय इदम् न मम्।"* तब कोई भूमिका मालिक कैसे बनेगा ? सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करके सब समाजको अर्पण करें। फिर समाजसे अपने जीवन-निर्वाहके लिए जो मिले, उसीसे संतुष्ट रहें। इतना ही नहीं, बल्कि हर एक व्यक्तिको सोचना चाहिए कि मेरी संतान मेरे लिए नहीं, समाजके लिए है। जो अक्ल मुझे मिली है, वह स्वयभू नही, समाजके लिए है। इस तरहका अपरिग्रह समाजमें लाकर मैं वैभव और सम्पत्ति बढाना चाहता हूं। अपरिग्रहके आधारपर एक भव्य समाज-रचना निर्माण करना मेरा उद्देश्य है।[1]

* * *

हां तो, ऐसा है बाबाका अपरिग्रह।

वे कहते हैं कि 'अपरिग्रह' कोई नया शब्द नही है। लेकिन इसके बारेमें लोगोंने यह कल्पना कर रखी है कि अपरिग्रह सन्यासियोंका गुण है, गृहस्थोंके लिए परिग्रह होना चाहिए। परिग्रहकी महिमा गृहस्थके लिए और अपरिगहकी संन्यासीके लिए, ऐसा बँटवारा कर दिया गया। होना तो यह चाहिए था कि सद्गुण सबके लिए लागू होता, लेकिन हुआ इसका उलटा। गृहस्थका परिग्रह यदि सीमित कर देते, तो भी बच जाते। लेकिन वह भी नही किया।

कार्यकर्ता अपरिगहकी साधना करे कैसे, इसका विवेचन करते हुए बाबा कहते हैं :

वह जनसमाजका सेवक है। उसकी रहन-सहन सादीसे सादी हो। भोजनके अलावा और चीजोंमें वह बहुत ही कम खर्च करे। वह ज्यादा तो न खाय, लेकिन आरोग्यके लिए जो जरूरी हो, वह अवश्य खाय।

---

१. विनोबा : भूदान-गंगा, पहला खण्ड, पृष्ठ १११।

भी बहुत कम और पत्र भी बहुत कम ही लिखता। यही समझो, सालमें २,३ पत्र। सो भी तब, जब उन्हें किसी विषयपर कुछ चर्चा करनी होती या मुझे। पत्रोंका काम जैसे ही पूरा होता, मैं उन्हें फाड डालता। बचपनमें मैंने कितनी ही कविताएँ लिखी, पर या तो उन्हें अग्निनारायणकी भेट कर दिया, या गगामें प्रवाह कर दिया। दो कविताएँ शिवाजीको मिली हैं। मैं तो मानता हूँ कि इससे कोई हानि नही हुई।

साथियोंकी ओर देखते हुए बाबा बोले . "मैं तो पत्रोंको फाड फेंकता हूँ, पर मेरे ये साथी लोग मानो मुझसे बदला लेनेके लिए मेरे पत्रोंका संग्रह करते हैं!"

* * *

बाबाके जीवनमें शुरूसे ही असंग्रहकी यह वृत्ति रही है। कई साल पहले वे किसी पुस्तकपर अपना नाम लिख रहे थे कि उन्हें यह खटका कि इसपर मैं अपना नाम क्यों लिखूँ? इसे अपनी मिलकियत बनाकर रखनेकी जरूरत क्या है? किताब पढी, उसका लाभ उठाया, बस! उसके बाद वह दूसरेके पास जानी चाहिए। इसी तरह एक हाथसे दूसरेमें जाते-जाते जब वह फट जायगी, तब उसकी सार्थकता माननी चाहिए।

* * *

अपरिग्रहकी यह भावना बाबा सर्वव्यापी बनानेको उत्सुक हैं। कहते है :

मेरा अपरिग्रह शंकर जैसा नही है। चमड़ा पहनकर भभूत लगानेवाला कोई भी हो सकता है, पर उसके हाथमें कुबेर रहेगा। विष्णुके पास लक्ष्मी पड़ी है, लेकिन वह उसके प्रति अत्यन्त उदासीन है। समाजमें सब पैदा होना चाहिए, परन्तु व्यक्तिको उतना ही लेना चाहिए, जितना खानेके लिए जरूरी हो। कलकी चिन्ता भी नही करनी चाहिए। जो जवानीमें समाजकी चिन्ता करता है, समाज बुढ़ापेमें उसकी चिन्ता करता है। अपरिग्रह करनेवालेकी बुद्धि बुढ़ापेमें तेज हो जाती है।

* * *

बाबाकी मान्यता है कि हमें सब कुछ समाजको अर्पण करना चाहिए और अपने लिए जितना ज़रूरी हो, उतना ही लेना चाहिए। सबको कहना चाहिए कि *"समाजाय इदम् न मम, राष्ट्राय इदम् न मम्।"* तब कोई भूमिका मालिक कैसे बनेगा ? सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार काम करके सब समाजको अर्पण करें। फिर समाजसे अपने जीवन-निर्वाहके लिए जो मिले, उसीसे संतुष्ट रहें। इतना ही नही, बल्कि हर एक व्यक्तिको सोचना चाहिए कि मेरी संतान मेरे लिए नही, समाजके लिए है। जो अक्ल मुझे मिली है, वह स्वयंभू नही, समाजके लिए है। इस तरहका अपरिग्रह समाजमें लाकर मैं वैभव और सम्पत्ति बढाना चाहता हूं। अपरिग्रहके आधारपर एक भव्य समाज-रचना निर्माण करना मेरा उद्देश्य है।[1]

*　　*　　*

हां तो, ऐसा है बाबाका अपरिग्रह।

वे कहते हैं कि 'अपरिग्रह' कोई नया शब्द नही है। लेकिन इसके बारेमें लोगोंने यह कल्पना कर रखी है कि अपरिग्रह सन्यासियोंका गुण है, गृहस्थोंके लिए परिग्रह होना चाहिए। परिग्रहकी महिमा गृहस्थके लिए और अपरिग्रहकी संन्यासीके लिए, ऐसा बंटवारा कर दिया गया। होना तो यह चाहिए था कि सद्गुण सबके लिए लागू होता, लेकिन हुआ इसका उलटा। गृहस्थका परिग्रह यदि सीमित कर देते, तो भी बच जाते। लेकिन वह भी नही किया।

कार्यकर्ता अपरिग्रहकी साधना करे कैसे, इसका विवेचन करते हुए बाबा कहते हैं .

वह जनसमाजका सेवक है। उसकी रहन-सहन सादीसे सादी हो। भोजनके अलावा और चीजोंमें वह बहुत ही कम खर्च करे। वह ज्यादा तो न खाय, लेकिन आरोग्यके लिए जो ज़रूरी हो, वह अवश्य खाय।

---

१. विनोबा : भूदान-गंगा, पहला खण्ड, पृष्ठ २२६।

कार्यकर्ताको शरीर-यन्त्रका ज्ञान हो। वह प्राकृतिक उपचार करे और छोटी-छोटी दवाओंपर सन्तुष्ट रहे। वह योगपूर्वक रहे। उसे अपना जीवन योगमय बनाना चाहिए।

कार्यकर्ता बेकारीकी तालीम अपने बच्चोंको न दे। बच्चा किसी काममें प्रवीण हो जाय, उसे आत्मविद्या मिले, मातृभाषाका ज्ञान हो, नैतिक व्यवहार आता हो। तालीम ऐसी हो, जिसपर ज्यादा खर्च न हो। बच्चोंको ऐसी तालीम दे कि किसीपर बोझ न मालूम हो।

कार्यकर्ता जीवनमें जो सादगी ला सके, लाये। हमारे मालिक किसान हैं। उन किसानोंके जीवनस्तरके हम जितने नज़दीकसे नज़दीक रहें, उतना ही अच्छा। किसानका स्तर बिना शरीर-श्रमके हो नहीं सकता। अगर कार्यकर्ता शरीर-श्रम नहीं करेगा, तो किसानकी तरह रह नहीं सकता।

कार्यकर्ताको रसोईका उत्तम ज्ञान होना चाहिए। इससे थोड़े ही खर्चमें अधिक पौष्टिक खुराक मिल सकती है। कैसी आँचपर पकाना, तरकारी कितनी पकानी, दाल कितनी पकानी, इतना खयाल रहे, तो मज़ेमें अधिक पोषण मिलेगा। फिर अपना अपरिग्रह भी सधेगा।

रसोईकी तरह उसे अन्नशास्त्रका भी ज्ञान होना चाहिए। जैसे, विटामिन 'सी' मिलता है आँवलेमें, अमरूदमें। दो तोले अमरूद, आधा तोला आँवला, ५-६ तोला पपीता ले लिया तो 'सी' विटामिन पूरा मिल गया। ऐसा सारा ज्ञान होना चाहिए।

इसके अलावा *अपरिग्रहमें मुख्य वस्तु यह है कि जो कुछ भी परिग्रह करना पड़ता है, उसकी कोई आसक्ति न रहे।* इसीलिए हम कहते हैं कि जो लोग सरकारमें चले गये हैं, उन्हें जनक महाराजका अनुकरण करना चाहिए और हम लोग जो बाहर हैं, उन्हें शुकदेवका। या वे विष्णुका अनुकरण करें, हम शंकर भगवान्‌का। विष्णुके पास छायाकी तरह लक्ष्मी बैठी है, पर उन्हें इसका पता ही नहीं। दोनों हालतमें एक ही बात—

आसक्तिका न होना। अगर मनुष्य नियमित रूपसे चलता है, तो आसक्ति नहीं होती।[1]

*　　　　*　　　　*

इस तरहकी अनासक्ति हमें सधे, तभी अपरिग्रहकी साधना सफल हो सकती है, अन्यथा नहीं।

दो शब्दोंमें बाबाका अपरिग्रहका आदर्श है—समाजकी अधिकतम सेवा करना और उससे न्यूनतम लेना।

और इसीका नाम है—'भिक्षा।'

विनोबाका भिक्षावृत्तिका सूत्र है,[2]—*न भोगमें फँसो, न त्यागमें पड़ो!*

काश, हम इस सूत्रको अपना सकें!

● ● ●

---

१ विनोबा : कार्यकर्ता पाथेय : अपरिग्रहकी साधना।

२ विनोबाके विचार, पहला भाग, पृष्ठ ६२।

चाह गयी, चिन्ता गयी ! : ७ :

दोपहरकी शान्त वेला।

निस्तब्ध मन्दिरका प्रांगण।

वावा, ओमप्रकाश भाई और मैं।

अचानक ओमप्रकाश भाईने पूछ दिया वावासे एक मजेदार प्रश्न—

"वावा, मस्तिष्कको Blank (शून्य) कैसे वनायें? जव-जव विचारोंको हटाकर उसे शून्य वनाना चाहता हूँ, तव-तव विचार और भी तेजीसे हमला करते जान पडते हैं।"

वावा वोले: मस्तिष्कको विचारशून्य वनाना मुश्किल है। कुविचार आये, तो उसकी जगह सद्विचार लाना आसान है, पर मस्तिष्कमें कोई विचार ही न रहे, यह जरा कठिन वात है। पर लगातार प्रयत्न करनेसे इस मुश्किलको भी आसान वनाया जा सकता है।

और तव वे सुनाने लगे अपना अनुभव। वोले: एक वार मेरा स्वास्थ्य गिरते देख वापूको वडी चिन्ता हुई। कहने लगे कि तुम स्वास्थ्य सुधारके लिए किसी अच्छे पहाडी स्थानपर चले जाओ। कई स्थानोंके नाम उन्होंने सुझाये। व्यवस्था करनेके लिए भी तैयार हुए। परन्तु मैं कहीं न गया। मैं चला आया पवनार। और यहाँ सालभरमें मैं वैलकी तरह मोटा हो गया। ९० से १३० पौण्ड हो गया! हर महीने मेरा वजन ४ पौण्ड वढने लगा।

"क्या उपाय?"

"उपाय यही था कि मैंने अपनेको विचार-शून्य वना लिया। मैंने अपने पास ज्ञानदेव और एकनाथके अभंगोंके अलावा और कुछ नहीं रखा। न कुछ पढ़ना, न सोचना!"

"तो निश्चिन्त रहनेसे ही आपका वजन वढने लगा?"

"हाँ ! निश्चिन्तता ही तो स्वास्थ्यसुधारकी सबसे बडी दवा है। चिन्ता आयी कि काम बिगडा। छै महीने मैं तेजीसे प्रगति कर रहा था कि सातवें महीने आशादेवीने मुझे राजी कर लिया कि मैं नयी तालीमपर व्याख्यान दूं। और बस चिन्ताने मुझे आ घेरा और वज़न बढना बन्द हो गया !"

*　　　*　　　*

"तो इसका उपाय क्या है ?"—हम लोगोंने पूछा।

"उपाय यही है कि दिमागमें व्यर्थकी बातोंका अम्बार न लगने दो। जितना ग्रहण करने लायक हो, उतना ग्रहण करो। बापूने कम पढा, मैंने उनसे कुछ ज्यादा पढा। पर, मैं जितना ग्रहण करने लायक होता है, उतना ही गहण करता हूं। बडौदाकी लाइब्रेरीमें एक बार दोपहरके समय जार्ज वाशिंगटनकी डायरी उलट रहा था। उसका एक वाक्य मुझे जँचा और वह आज तक मुझे याद है।

"वह कौनसा वाक्य है बाबा ?"

"वह है—Fence is a Temptation to Jump !"

यानी जहाँ बाड़ है, वही लोग उसके अतिक्रमणके लिए आकर्षित होते हैं !

सचमुच, कैसा सुन्दर वाक्य !

*　　　*　　　*

बाबाने बताया कि निश्चिन्त होनेके लिए विचारोंका अपने ऊपर आक्रमण न होने दो। वृत्तियोंके साथ बहो मत।

मैंने कहा : "लेकिन क्रोधके अवसरपर किसीको पत्र लिखता था, तो तुरत उसे न भेजता। लिखकर उसे अपनी मेजकी दराजमें बन्द कर देता। क्रोध शान्त होनेपर उसे खोलकर पढता। भेजने लायक लगता तो भेजता, अन्यथा उसे फाड फेंकता ! आपने भी तो 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' में इस बातपर जोर दिया है।"

"सो तो है ही। मनको कहीं भी लिप्त नहीं होने देना चाहिए। मनको कहीं टिकने न दो। उसे कहीं घर न बनाने दो। शादी होनेपर

बैंड मत बजाग्रो और गमीमें छाती मत पीटो। विचारोंके प्रवाहमें बहना ठीक नही। उन्हें धीरे-धीरे काबूमें करना चाहिए।

"श्रवणकी ग्रादत डालो। बोलना कम करो। पहले श्रवण भक्ति करो, फिर कीर्तन-भक्ति। दिमाग़में बिना ज़रूरतकी, व्यर्थकी बातें ठहरने न दो। धीरे धीरे विचारशून्यता सध जायगी।"

* * *

एक दिन रास्तेमें बाबाने कहा—'लोग समझते हैं कि बाबा ज्ञानी है, पर यह बात लोग नही समझते कि बाबा अज्ञानी भी है! उपनिषद्में कहा है कि आवश्यकका ज्ञान आवश्यक है, तो अनावश्यकका अज्ञान भी आवश्यक है। बाबा कोई पुस्तक पढता है, तो फिर कभी-कभी उसे साल-साल भर तक नही उलटता। उसकी ग्रहण करने लायक बातें दिमागमें रह जाती हैं, बाकी भूल जाती हैं। यह भूलना बहुत ज़रूरी है।"

* * *

कैसी सारगर्भित बातें!

अनुभवसे ओतप्रोत!

और हम हैं कि ठीक उल्टे रास्तेपर चलते हैं। जो याद रखना चाहिए, उसे भुला देते हैं। जो भुला देना चाहिए, उसे याद रखते हैं!

तब हम निश्चिन्त हो ही कैसे सकते हैं?

* * *

एक दिन बाबा बोले : बालकोबाने एक बार पूछा 'क्या करूँ, नींद ही नहीं आती।' मैंने उनसे कहा—"उसकी चिन्ता ही छोड दो। यह सोचो ही मत कि नींद नही आ रही है। राम राम जपो। नींद आ जायगी।"

कैसा सीधा सरल नुस्खा!

पर हम उसका प्रयोग भी तो करें!

* * *

चिन्ता हमारे युगकी परम प्रधान समस्या है ।

जिसे देखिये वही, चिन्ताके मारे परेशान ।

विश्लेषण करें तो ६० फीसदी चिन्ताएँ अनावश्यक ही निकलेंगी ।

और हम उन्हींमें घुले-मरे जा रहे हैं ।

* * *

अपना कर्तव्य हम करते जायँ, व्यर्थके ऊहापोह में न पड़े । बस, सारी झंझट समाप्त ।

मतलब निश्चिन्तताके दो सूत्र :

जो जरूरी है उसे पूरा कर डालें ।

जो गैर-जरूरी है उसे भुला डालें ।

और फिर बैलकी तरह मोटे होते और शाहंशाह होते क्या देर लगती है ?

चाह गयी, चिन्ता गयी,
मनुआ बेपरवाह ।
जिनको कछू न चाहिए,
सो जग शाहंशाह ॥

मिटा दे अपनी हस्तीको.... ! : ८ :

मिटा दे अपनी हस्तीको
अगर कुछ मर्तबा चाहे,
कि दाना खाकमें मिलकर
गुले गुलज़ार होता है ॥

हजरते 'बिस्मिल' (इलाहाबादी) ने हस्तीपर कुछ रुबाइयाँ लिखी हैं। एकसे एक नफीस, एकसे एक लाजवाब।

कहते हैं वे :

करता हूँ बयाँ, सुनिये बयाने हस्ती,
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं शाने हस्ती!
इस साँसकी बुनियाद ही क्या अय 'बिस्मिल',
कन्धे पे हवाके हैं मकाने हस्ती ॥

हाँ तो इस हवाके मकानपर हम इतराते हैं। अपनी शानके आगे किसीको कुछ नहीं समझते। परन्तु होता क्या है—

झोंका जो कभी मौतका आया 'बिस्मिल'
गुल हो गया दम भरमें चिरागे हस्ती!

पर हम हैं कि इतराये जा रहे हैं, इतराये जा रहे हैं—अपनी हस्तीपर।

तभी तो युधिष्ठिरने यक्षसे कहा था—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति च यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

* * *

तो, यह हस्ती तो मिटने ही वाली है।

मिटेगी और जरूर मिटेगी।

बिना मिटे रहेगी नही।

मजा तो तब है, जब मिटनेके पहले ही हम इसे खुद मिटा डालें।

गीतामें कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ ५।२३

'शरीर छोड़नेके पहले ही जिसने इस शरीरसे ही काम और क्रोधके वेगको सहन करनेकी शक्ति प्राप्त कर ली है, उसने समत्वको पाया है। वह सुखी है।'

* * *

कामके वेगको सहना, क्रोधके वेगको सहना, कोई मामूली बात नही।

उसके लिए अहंकारको मिटाना होगा, हस्तीका नाज चूर-चूर कर देना होगा। शून्य बन जाना पड़ेगा।

* * *

१० मार्च, १९५६।

प्रातः-भ्रमणकी मनोरम वेला।

बाबाने एक भाईको बुलाकर कहा—"तुम अब बहुत दिन हमारे साथ रह लिये। अब तुम्हें कही जाना चाहिए।"

बाबाके दलमें रहनेके लिए दूर-दूरसे लोग आते रहते हैं। इनकी भीड़ बढ़ने न पाये, इस बातका बाबा पूरा ध्यान रखते हैं। जैसे ही संख्या कुछ बढ़ने लगती है, बाबा छँटनी शुरू कर देते हैं।

'अब तुम जाओ, दूसरोंको आनेका मौका दो।'

* * *

कुछ देर उनसे बाबाकी वार्ता चलती रही।

बाबा बोले : "तुम अविवाहितोंमें एक गुण होता है, एक दोष। गुण तो यह कि जिस काममें लगते हो, पूरी ताक़तसे लगते हो। दोष यह कि कहीं टिककर काम नही करते। इसलिए कुछ निश्चय करके जाओ और किसी जगह जमकर रहो।"

अतमें बावाने इस बातपर जोर दिया—"देखो, एक बात न भूलो। अहकार तुममें नही रहना चाहिए। नम्रता तुम्हारे स्वभावमें दाखिल हो जानी चाहिए। हम अक्सर देखते हैं कि शक्तिशाली व्यक्ति जहाँ रहना चाहता है, वहाँ अकेला ही रहना चाहता है। उसे औरोंके साथ रहना रुचता नही। ऐसा इसीलिए कि उसमें अहकार रहता है। वह यदि निरहकार हो जाय, तो पचासोंके साथ रह सकता है। फिर तो कोई झझट ही न होगी।"

*   *   *

और तब बावाने कह सुनाया अपना 'फार्मूला'—

अहकारसे योग्यताका विभाजन करो। योग्यता यदि २५ सेर है और अहकार २ सेर है तो भागफल होगा = १२॥, पर यदि योग्यता ५ सेर ही है और अहकार O (शून्य) है तो भागफल होगा—अनन्त ∞!

योग्यता कम ही हो, पर अहकार न रहे, तो कोई हर्ज नही। देखो न वल्लभस्वामीको, मित्तलको, व्यासको, इस जयदेवको। निरहंकार रहनेसे इनका मूल्य अनन्तगुना हो जाता है!

अहकार सहित योग्यता लेकरके ही क्या होगा?

*   *   *

और तभी मैंने आगे बढकर बावासे पूछ दिया: "पर बावा, इस अहकारका निर्मूलन हो कैसे?"

बोले: "गीता-प्रवचनका तर्जुमा कर रहे हो न? उसमें यही तो है। *अहकार-निर्मूलनका उपाय है—सर्वत्र हरिदर्शन।"*

मैंने कहा: आपने गुरु, माता, पिता, बालक आदिमें हरिदर्शन करना सरल अक्षर बताया है और दुर्जनमें, दुष्टमें हरिदर्शन करना—सयुक्ताक्षर। यह सरल अक्षर तो थोड़ा-बहुत समझमें भी आता है, पर सयुक्ताक्षर तो समझमें ही नहीं आता। दुष्टोंमें हरिदर्शन करना तो बहुत कठिन लगता है।

"सो तो है। मैं मानता हूँ कि वह कठिन है। मूर्तिको नारायण मानना कठिन नहीं, क्योंकि उसमें न राग-द्वेष होता है, न क्रोध। पर

मनुष्यको और मुख्यतः दुष्ट मनुष्यको नारायण मानना कठिन होता है। क्योंकि, यह नारायण कभी क्रोध करता है, कभी मत्सर। कभी कोई रूप धारण कर लेता है, कभी कोई। लेकिन हमें तो उसमें नारायणका दर्शन करना ही है। जब क्रोध करे तो समझें, इस समय नारायण क्रोध रूप प्रकट हो रहा है। जब मत्सर करे, तो समझें कि इस समय नारायणका मत्सर रूप प्रकट हो रहा है। वह कंजूसी प्रकट करे तो हम समझें कि इस समय नारायणका कंजूस रूप प्रकट हो रहा है। ऐसे जो-जो रूप दिखे, उसीमें हम अपनी यह वृत्ति बना लें कि नारायण इस समय इस रूपमें प्रकट हो रहा है।''

* * *

मैंने पूछा—"अहंकारके निर्मूलनकी दृष्टिसे लोग कहते हैं—

पापोऽहं पाप कर्माऽहं पापात्मा पापसंभव. ।
त्राहि मां कृपया शम्भो सर्व पापहरोहरि. ॥

क्या यह वृत्ति ठीक है ?"

बाबा—इस श्लोककी उपयोगिता केवल प्रायश्चित्ततक ही है। शरीरसे पाप होता है, पर शरीर ही तो हम नहीं हैं। यह तो आवरण मात्र है। उसे हटाया जा सकता है। श्रुति कहती है—'तू ब्रह्म है ! पापसे तेरा क्या वास्ता ?' वह मनुष्यको ऊपर उठाती है। '*पापोऽहं*' में हीनताकी भावना है। 'मैं बड़ा पापी हूँ', 'मैं बड़ा नीच हूँ'—यह भाव नीचे गिरानेवाला है। श्रुति हमें ऊपर उठाती है। कहती है, शरीरसे ग़लती हो गयी, हो गयी। पर तू तो पवित्र है, ब्रह्म है ! अपने इस स्वरूपको पहचान।

* * *

एक दिन बाबा बोले : अहंकारके दो प्रकार हैं— (१) अपूर्ण, (२) पूर्ण।

छोटे-छोटे अहंकार—मैं ब्राह्मण हूँ, मैं विद्वान हूँ, मैं राजा हूँ, मैं फलां हूँ, मैं फलां हूँ—ये सब अपूर्ण अहंकार हैं।

पूर्ण अहकार है—अपने अहकारको विश्वव्यापी बनाना।

अपूर्ण अहकार क्या करना! करना तो पूर्ण अहकार।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

* * *

और उस दिन?

गीताका पांचवां अध्याय चल रहा था।

उसीमें आया तुकारामका अभग—

उद्योगाची धाँव बैसली आसनी
पडिलें नारायणी मोटलें हें।
सकल निश्चिंती झाली हा भरंवसा
नाहीं गर्भवासा येणें ऐसा ॥
आपुलिये सत्ते नाही आम्हा जिणें
अभिमान तेणें नेला देवें।
'तुका' म्हणे चले एकाचिये सत्ते
आपुले मी रितेपणें असें ॥

बाबा इस अभगमें डूब गये। लगे मस्त हो-हो मुझे समझाने एक-एक कड़ी।

कैसी उत्तम स्थिति है!

सारे उद्योग समाप्त।

सारी चिन्ताएँ नष्ट।

प्रभुने मेरा सारा अभिमान छीन लिया।

अब मैं अपनी सत्तासे नहीं जीता।

अब सब उस एकको ही सत्तासे चलता है।

मैं अब बिलकुल खोखला हो गया हूँ!

* *

कितना मुश्किल है यह खाली होना, खोखला होना! अपनेको शून्य बनाना।

पर, प्रभुचरणोंमें अपनेको अर्पित कर देनेसे, अपनेको उसकी मर्ज़ीपर छोड़ देनेसे सारी झंझट समाप्त हो जाती है।

यही हमें करना है।

अपनेको हम शून्य बनायें, अपना अहकार छोड़कर मालिककी मर्ज़ीको अपनी मर्ज़ी बना लें, फिर और क्या चाहिए।

*　　　　*　　　　*

तो, इस प्रकार अहकार-निरसनके दो सूत्र निकले—

(१) घट-घटमें प्रभुका दर्शन, और

(२) प्रभु-चरणोंमें आत्म-समर्पण।

*　　　　*　　　　*

हम यदि अपने पास-पड़ोसियोंकी, देशवासियोंकी, जनताकी, विश्वकी सेवा करना चाहते हैं, तो हमें निरहकार बनना ही होगा। अहंकार रखकर सेवा करनेका कोई अर्थ ही नही।

उसके लिए हमें तो विश्वकविके शब्दोंमें प्रभुसे यही प्रार्थना करनी है कि हे प्रभु, मेरा मस्तक तुम अपनी चरणधूलिमें नत कर दो, मेरा सारा अहंकार मेरे आंसुओंमें डुबा दो। अपने किसी भी कार्यसे मैं अपना प्रचार न करूँ। मेरे जीवनमें तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो !...

आमार माथा नत करे दाओ हे,
तोमार चरन धूलार तले।
सकल अहंकार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले॥
आमार जेन करि न प्रचार
आमार आपन काजे।
तोमारि इच्छा करो हे पूर्ण
आमार जीवन माझे॥[1]

● ● ●

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : गीतांजलि।

जहाँ समन्वयकी ज्योति जलती है ! : ६ :

दक्षिणेश्वर : सेवाग्राम : बोधगया ।

रामकृष्ण परमहंस ।

समन्वयका अनुपम साधक ।

भिन्न भिन्न धर्मोंकी उपासना करके वह इसी तथ्यपर पहुँचा कि,

रस्ते जुदे जुदे हैं, मकसूद एक है !

कहता है . जैसे कालीघाटकी कालीबाडीमें जानेके अनेक मार्ग हैं, वैसे ही भगवानके पास जानेके भी अनेक मार्ग हैं, पर प्रत्येक मार्ग अन्तमें एक होकर ईश्वरसे मिलाता है ।

जैसे एक जल पदार्थको भाषा-भेदसे कोई 'वारि' कहता है, कोई 'पानी', कोई 'एकुवा' (Acqua) कहता है, कोई water, वैसेही सच्चिदानन्दको भिन्न-भिन्न देशमें कोई 'अल्लाह' कहता है, कोई God, कोई 'हरि' तो कोई 'ब्रह्म' !

* * *

मतलब,

मिल्लतें रस्तोंके हैं सब हेरफेर,
सब जहाजोंका है लंगर एक घाट !

उसने इस तत्त्वको महसूस कर लिया कि—

फक्त तफावत है नाम ही का,
दर अस्ल सब एक ही है यारो !
जो आबे साफीकी मौजमें है,
उसीका जलना हबाबमें है !!

मोलल। बूंदमें जिन जलकी सत्ता है, महासागरमें भी उसीकी है !

* * *

मानव जबतक इस दिव्य सत्यकी अनुभूति नही करता, तबतक सब व्यर्थ है। रैदास भगतके शब्दोंमें—

कृष्ण करीम रहीम राम हरि
जब लगि एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान पुरानिनि
तब लगि भ्रमही देखा ॥

कबीर भी तो यही कहते हैं—

पढ़े कतेब वे मुल्ला कहिये, वेद पढे वे पांडे।
बेगरि बेगरि नाम धराये, इक मटियाके भांडे ॥
गहना एक कनक तें गहना, इनमहि भाव न दूजा।
कहन सुननको दुइ करि थापे, सोइ नमाज़ सोइ पूजा ॥

* * *

और जब यह स्थिति आ जाती है, तो सारे भेदभाव मिट जाते हैं। ऐसे व्यक्तिका रोम-रोम पुकारता है !

आता है वज्द मुझको हर दीनकी अदापर,
मसजिदमें नाचता हूं नाकूसकी सदापर !

* * *

गुरु गोविन्दसिंहके अनुसार वह सब तस्वीरोंमें एक ही माधुरीके दर्शन करता है :

एक मुरति अनेक दरसन,
कीन्ह रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन,
अंतको फिर एक ॥

ऐसे एकत्वके पुजारीकी प्रार्थना यही होती है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽयं वो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

जिसे शैव 'शिव' कहते हैं,
वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं,
तर्कपटु बौद्ध 'बुद्ध' कहते हैं,
नैयायिक 'कर्ता' कहते हैं,
जैन 'अर्हन्' कहते हैं,
मीमासक 'कर्म' कहते हैं,
वह समस्त ससारका अधिपति हमारी मनोकामना पूरी करे।

* * *

तो ऐसी भावनावाला साधक था—रामकृष्ण परमहस।

दक्षिणेश्वरका यह सत बचपनसे मेरा आराध्य रहा है।

पर, इनकी साधनाभूमिके दर्शन मैं कर सका जनवरी '५५ के अन्तिम सप्ताहमें ही।

गया था कलकत्ता, बगाल हिन्दी-मण्डलसे अपनी रचना "*भारतवर्षका सास्कृतिक इतिहास*" पर १६००) का पुरस्कार लेने, सोचा लगे हाथों रामकृष्ण परमहसकी तपोभूमिके दर्शन तो कर लूं!

और एक दिन मैं बससे पहुँच ही तो गया—दक्षिणेश्वर।

* * *

कालीकी वह भव्य मूर्ति, उसका वह दिव्य मन्दिर, जिसके चारों ओर—

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनम॥

जैसे दुर्गाकी वन्दनावाले अनेक मन्त्र अंकित हैं और आसपासके अनेक मन्दिर—देखकर हृदय गद्गद हो उठा।

और रामकृष्णका वह पलग, वह कमरा।

देखते ही श्रद्धा उमड पड़ती है ।

* * *

पर सबसे भव्य तो वह प्रासाद है, जहां ईसाकी भव्य मूर्तिके निकट रामकृष्णकी वह तेजोमय मूर्ति प्रतिष्ठित है !

शात, भव्य, दिव्य !

आसपासका वह बगीचा, वह तालाब, वे वृक्ष ! हुगलीका वह पावन तट, जहां वे *'टाका माटी' 'टाका माटी'* कहते हुए—पैसा मिट्टी—दोनोंको जलमें फेककर करते थे काचन-मुक्तिकी साधना !

साधनाका वह दिव्य देश !

जिधर दृष्टि डालिये, अद्भुत आध्यात्मिक वातावरण।

घण्टों मैं उस धूलिका स्पर्श पाकर पुलकित होता रहा।

* * *

और सेवाग्राम ?

बापूके उस साधना-स्थलमें भी तो समन्वयकी ज्योति जलती है !

इस युगमें विभिन्न धर्मोंको, विभिन्न धर्मवालोंको, एक दूसरेके निकट लानेका काम बापूने जितना किया है, शायद ही और किसीने किया हो। उनकी प्यारी धुन थी—

रघुपति राघव राजाराम।
पतित-पावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम
सबको सन्मति दे भगवान्॥

विनोबाके आह्वानपर आश्रमके कार्यकर्ता भूदानके लिए बापू-कुटियामें ताला लगाकर बाहर निकल पड़े थे, जो श्रद्धालुओंको कुछ खटका। अन्ततः लोगोंके आग्रहपर कुटिया खोल दी गयी।

जिस शामको कुटिया खुली, उस दिन सौभाग्यसे मैं भी वहीं था।

कुटियाके सामनेके मैदानमें हम सबने बैठकर प्रार्थना की।

सब धर्मोंकी प्रार्थना।

अद्भुत नमा ! अद्भुत शाति।

सभी शराबोर थे उसमें। सबको मानों एक ही तत्वकी अनुभूति हो रही थी—

अलख इलाही एक तू, तू ही राम रहीम।
तू ही मालिक मोहना, केसो नाम करीम॥

*　　　*　　　*

पर, समन्वयकी सबसे उज्ज्वल ज्योति आज जल रही है—बोध गया में।

भगवान् बुद्धकी तपोभूमि—बोध गया।

दस साल पहले काका कालेलकरके साथ मुझे भी उस दिव्य स्थलका दर्शन करनेका सौभाग्य मिला था।

अश्वत्थका वह पावन वृक्ष, जिसके नीचे तपस्या कर भगवान् बुद्धको 'बोध' हुआ, निकटकी वह पुष्करिणी, बुद्धोंकी अनेक मूर्तियोंसे समन्वित वह मन्दिर—देखकर हृदय गद्‌गद हो उठा था।

*　　　*　　　*

हाँ, तो बाबा जब इस तपोभूमिमें पहुँचे, तथागतकी इस पवित्र भूमिमें विचरे, तो सहज ही उन्हें यह कल्पना सूझी कि ऐसे दिव्य प्रदेशमें क्यों न समन्वयकी दिव्य ज्योति प्रज्वलित की जाय।

काका साहब तथा अन्य मित्रोंने इस कल्पनाका स्वागत किया।

बुद्ध मन्दिरके निकट उत्तर दिशामें थोड़ी दूरपर बोध गयाके शंकर मठकी ओरसे ३ एकड़ ११ डिसिमल भूमि भी दानमें मिल गयी और बौद्धों तथा हिन्दुओंके इस पवित्र तीर्थ-स्थलमें, इस अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व-वाले दिव्य स्थलमें सर्वोदय समाजके छठे सम्मेलनके पुनीत अवसरपर १८ अप्रैल'५४ को 'समन्वय-आश्रम' की स्थापना हो ही गयी।

*　　　*　　　*

स्थापनाके अवसरपर बाबा बोले—

"वेदान्त और अहिंसा, दोनों एक दूसरेके कार्य-कारण हैं। गीतामें कहा गया है—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ।।

अर्थात् जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वरके अस्तित्वको समान रूपमें देखता है, इसके फलस्वरूप, वह हिंसा ही नहीं कर सकता। क्योंकि हिंसाके लिए जो भी हथियार उठाया जायगा, वह अपने खुदके खिलाफ उठाने जैसा ही होगा। इसलिए जो आत्महिंसा नहीं करेगा, वह परम गति पायेगा। यहाँ मूल बुनियाद समान परमेश्वरके दर्शनकी अर्थात् वेदान्तकी है, उसपरसे अहिंसाकी जीवननिष्ठा और उसका अन्तिम परिणाम है परम गति—इस तरह एक श्लोकमें सारे विश्वके लिए आदिसे अन्ततक जरूरी समन्वय गीताके इस अद्भुत श्लोकमें बता दिया गया है।

बापू वेदान्तके बदले 'सत्य' का नाम लेते थे और उसके साथ 'अहिंसा' जोड़ देते थे। वे कहते थे कि 'सत्य और अहिंसा, ये एक ही द्विदल तत्व है। दोनों मिलकर एक ही तत्व होता है।' मैंने सोचा कि सत्यका संशोधन जितनी प्रखरतासे वेदांतमें होता है, उतनी प्रखरतासे और किसी प्रक्रियामें नहीं होता। इसलिए 'सत्य' शब्दका अर्थ 'वेदान्त' ही हो जाता है। 'सत्य' शब्द परम तत्त्वका सूचक है और 'वेदान्त' समन्वयका। याने सत्यके दर्शनके अनेक पहलू होते हैं। ये सारे अनेक पहलू जहाँ इकट्ठे होते हैं, वहाँ किसी एक विचारके अलगका आग्रह मिट जाता है। उसीको 'वेदांत' कहते हैं।

आचार्य गौडपादने स्पष्ट कह दिया है—

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम् ।
परस्परं विरुद्ध्यन्ते तैरयं न विरुद्ध्यते ।।

अर्थात् 'चाहे आप आपस-आपसमें लड़ते रहें, लेकिन आप हमसे नहीं लड़ सकते। आप सारे हमारे पेटमें हैं।'

हाँ तो, सर्वांगीण समग्र सत्य दर्शन और उसके साथ अहिंसा—इस दर्शनको 'वेदान्त' कहते हैं। हमें अपने जीवन और दर्शनमें इन्ही दो तत्त्वों-का समन्वय करना होगा। इस कामके लिए हम आप सबका हृदयसे सहयोग चाहते हैं। सहयोगका जैसा अर्थ दुनियामें किया जाता है, साधारणतः वैसा अर्थ हमारे मनमें नही है। हम चाहते हैं कि अपने हृदयमें हम यही भाव रखें कि एक परमेश्वरकी हस्ती है और बाकी हम सब जो भी हैं, शून्य हैं। उसीके अन्दर, उसीकी लीलासे हमें ये सारे रूप मिले हैं। शून्यको भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाया जाता है। वह भी निराकार नही होता। इसी तरह हमें भी आकार मिला है। फिर भी हमें शून्य बनना चाहिए।"

* * *

तो, तबसे बोधगयामें समन्वय-आश्रम भाई सुरेन्द्रजीके तत्त्वावधानमें चल रहा है।

कोरापुट जिस दिन मैं पहुँचा, उसी दिन जयप्रकाश बाबूके साथ वहाँके साधक द्वारको भाई भी आगये।

उनसे अक्सर बाबाकी वार्ता चलती रहती—समन्वय-आश्रमके सम्बन्धमें।

* * *

समन्वय-आश्रममें सवा दो एकड़ जमीन खेती लायक है, जिसमें खेती होती है। गेहूँ, चावल, चना, जौ, कपास, आलू, सब्जी, हल्दी, गोभी, पपीता आदि उसमें आश्रमवासी उगाते हैं। इतने थोड़े समयमें ही आश्रमको खेतीके लिए तीन बार पुरस्कार मिल चुका है।

* * *

आश्रममें वस्त्र-स्वावलम्बनके लिए कताई होती है। ऐसी योजना है कि कपास पैदा करनेसे लेकर कपड़ा बुननेतक सारी प्रक्रियाएं आश्रममें हों। इसके लिए एक अम्बर चरखा और एक करघा रखनेका भी विचार है।

* * *

हर रविवारको आश्रमवासी बोधगया ग्रामकी सफाई करते हैं। इस थानेमें आश्रमके चारों ओर १५० गाँव हैं, जिनमें ग्रामोदय समिति आश्रमके मार्ग-दर्शनमें भूदानका काम करती है।

*　　　*　　　*

प्रति रविवारको २ घण्टे सत्संग होता है, जिसमें स्थानीय और देशी-विदेशी मित्रोंके साथ भिन्न-भिन्न धर्मों, दर्शनोंके विषयमें समन्वयकी दृष्टिसे चर्चा होती है।

*　　　*　　　*

प्रति दिनके कार्यक्रममें प्रातः-साय प्रार्थना, गृहकार्य, स्वाध्याय, श्रम, जन-सम्पर्क आदि रहता है। साधारणतः ३ घण्टे शरीरश्रममें, २ घंटे गृहकार्यमें, ३ घण्टे अध्ययन और समाजसेवामें लगते हैं।

इस प्रकार समन्वय-आश्रममें साधना चल रही है।

*　　　*　　　*

उकम्या : कोरापुट : उडीसा।

१३ सितम्बर, १९५५।

गायत्री भाई और अलेक्ससे साथ जलधारासे तैरकर लौटा तो देखा कि बाबा समन्वय आश्रमके बारेमें चर्चा कर रहे हैं। दादा हैं, जे० पी० हैं, विमला ठकार हैं, द्वारको भाई हैं, सुरेश राम भाई हैं, रेड्डी हैं।

और उस दिन तो बाबाने समन्वय-आश्रमके बारेमें अपनी पूरी कल्पना ही बता डाली।

बाबा बोले :

'हिन्दुस्तानका सारा जीवन-विकास ही समन्वयकी पद्धतिसे हुआ है। देशकी मुख्य शक्ति वही है। यहाँपर जो लोग आये, चाहे वे लाभके लिए आये हों या आक्रमणके लिए, उन सबकी अच्छाइयोंका समन्वय करनेकी कोशिश हिन्दुस्तानने की है। उसके परिणामस्वरूप भारतकी संस्कृति उत्तरोत्तर विकसित और सम्पन्न होती गयी। हरएककी अच्छी चीजें हम ग्रहण करते गये और बुराइयोंको छोड़ते गये। यह प्रक्रिया आज भी जारी रहनी चाहिए।

मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, बौद्ध, जैन, सबकी संस्कृतिकी अच्छाइयोंको अपनाकर भारतकी संस्कृति सम्पन्न हुई और उसका एक विकसित रूप बना। भारतीय इसलामका रूप दुनियाके इसलामसे कुछ भिन्न है। भारतका ईसाई धर्म भी दुनियाके ईसाई-धर्मसे कई अंशोंमें भिन्न है। ब्रह्मविद्याका आधार और जीवमात्रके लिए अहिंसाका विचार, ये दो बातें उनमें दाखिल हुई हैं। इस तरह समन्वयकी प्रक्रिया हिन्दुस्तानमें बराबर जारी रही है।

इस प्रक्रियाके पीछे जो दर्शन है, उसके अध्ययनके लिए और प्रत्यक्ष प्रयोगके लिए कोई स्थान हो, वहांपर ऐसे साधक रहें, जो पुरानी साधनाकी कमियोंको दूर करें, यह हम सोच रहे थे। बोधगया एक ऐसा स्थान है, जहांपर दुनियाभरके लोग आते हैं। इसलिए दूसरोंकी भलाई ग्रहण करनेका और अपनी सेवा दूसरोंको अर्पित करनेका वहां अनायास सुयोग मिल सकता है। हम चाहते हैं कि इस स्थानमें सर्वोदयके जीवनका दर्शन हो। उसका रूप चाहे छोटा ही क्यों न हो, लेकिन अधिकसे-अधिक शुद्ध हो, ऐसी हम कोशिश करें।

सबसे पहला सुधार ध्यान-मार्गमें होना चाहिए। हिन्दुस्तानका ध्यान-मार्ग बहुत ही विकसित हुआ है। उसकी बराबरी शायद सूफी लोग कर सकते हैं, और कोई नहीं कर सकता है। पर यहांके ध्यान-मार्गमें ध्यानका कर्मके साथ विरोध माना गया है। ध्यानयोगी अक्सर कर्मयोग नहीं कर सकते थे, क्योंकि कर्मसे ध्यानमें बाधा आती है, ऐसा माना गया है। दूसरे, कर्मयोगियोंकी मदद उन्हें मिलती थी और दोनों एक-दूसरेके पूरक थे। कर्मयोगी मानते थे कि हम तो ध्यान नहीं कर सकते, लेकिन ये लोग करते हैं। इनका पोषण और रक्षण करना हमारा काम है। ध्यानयोगी समझते थे कि हम ऐसी सेवा करते हैं, जो दूसरे नहीं कर सकते। कर्मयोग ध्यानमें बाधा देता है। यह जो विभाजन माना गया है, उसमें कुछ कमी है और उसमें सुधार होना चाहिए। कर्म होते हुए जिस तरह समाधिकी स्थिति हो सकती है, उसी

तरह कर्म करते-करते भी होनी चाहिए। इसका हमने कुछ अनुभव भी किया है। शरीर-परिश्रमात्मक शोषण-रहित उत्पादक तथा शात, सौम्य, सर्वाविरोधी क्रिया ध्यानके साथ चल सकती है। उससे ध्यानमें कोई खलल पहुँचनेका कारण नही। हमें लगा कि इस दिशामें ध्यान-योगकी कोशिश होनी चाहिए। तब अभी तक जो ध्यान-योग चलता आया है, उसकी परिपूर्ति होगी।

दूसरा विचार यह है कि अखड परिव्राजकके विना समाजमें ज्ञानके स्रोत निरन्तर वहते नही रह सकते और साधककी आसक्ति भी उसके विना सर्वथा नही मिटेगी। इसलिए समाज-कल्याणकी योजनामें परिव्रज्या अनिवार्य मालूम होती है। वुद्ध, महावीर, शकर, रामानुज आदि विचारकोंने परिव्राजकवर्ग खडे करनेके जो प्रयोग किये, वे वहुत महत्त्वके हैं, क्योंकि सैकडों सालोंतक ये प्रयोग चले। उनको वेग मिलता गया और उनका प्रभाव जनतापर, राजसत्तापर, साहित्य और कलापर, जीवनके हरएक क्षेत्रपर वर्षों तक रहा। भारतकी समृद्धिका वहुत वडा श्रेय उन्हीको है। परन्तु इन प्रयोगोंमें कुछ कमियाँ थी।

पहली कमी यह थी कि वे परिश्रमनिष्ठ नहीं थे। वैसे वे चंक्रमण तो करते थे, आलसी नही रहते थे। वे यहाँतक कहते थे कि भगवान्ने रात ध्यानके लिए दी है और दिन ज्ञान-प्रचार करनेके लिए दिया है। याने आरामके लिए कोई समय ही नही दिया। फिर भी जवतक मनुष्य खाता है, तवतक उसे उत्पादक परिश्रममें हिस्सा लेना चाहिए, चाहे प्रतीकके तौरपर ही क्यों न हो। प्राचीन परिव्राजक भी भोजनको यज्ञरूप ही समझते थे। फिर भी जो खाता है, उसे उत्पादक श्रमकर्ममें हिस्सा लेना चाहिए, यह वात उनमें नहीं थी। इस कमीको हम दूर करना चाहते हैं। वे भिक्षापर निर्भर रहते थे। हम भी भिक्षापर ही रहते हैं और भिक्षासे ही हमारा निस्तार होगा, यह हम जानते हैं। हम भिक्षाको पावन मानते हैं। वे लोग भिक्षाके साथ-साथ सेवा भी करते थे,

इसलिए उन्हें भिक्षाका हक था। वे तो महान् थे, परन्तु भिक्षाके साथ-साथ उत्पादक शरीर-परिश्रम-निष्ठाको एक यमके तौरपर, नियमके तौर-पर नहीं मानना चाहिए। जैसे, सत्य अहिंसा आदि अव्वल दर्जेकी चीजें हैं, वैसे ही उत्पादक शरीर परिश्रममें निष्ठा भी होनी चाहिए। इस दृष्टिसे हम उसको अपनी परिव्रज्यामें दाखिल करना चाहते हैं। हम मानते हैं कि उत्पादक श्रम ब्रह्म-कर्म है और वह *"सर्वेषाम् अविरोधेन"* होता है। हमसे जो कुछ शोषण होता है, उससे मुक्ति इस ब्रह्म-कर्मके ज़रिये मिलती है।

तीसरी बात जो हम करना चाहते हैं, वह यह है कि साधना सामूहिक तौरपर होनी चाहिए। याने १५–२० मनुष्योंको इकट्ठे होकर साधना करनी चाहिए, इतना ही उसका अर्थ नहीं, बल्कि उसका अर्थ यह है कि सामूहिक जीवन ही जीवन है। समाज ही जीवन है और हम उसमें जितने अंशमें हिस्सा लेते हैं, उतने अंशमें हमें जीवनका अनुभव होता है। इसलिए हमारा हरएक सद्गुण सामाजिक होना चाहिए। वैराग्यकी बात लीजिये। समाजके लिए जितनी मात्रामें वह जरूरी है, उससे अधिक मात्रामें अगर किसीमें वैराग्य है, तो या तो वह एकांगी विशेषता है या उसमें विकृति है। इस तरह सब गुणोंके बारेमें सामाजिक दृष्टिसे सोचना होगा। हमारी कुल साधना सामाजिक होनी चाहिए।

ये तीन बातें हमारी आजकी संस्कृतिमें प्रकट होनी चाहिए। अब इसके लिए हमें जो काम करने होंगे, उनकी कई शाखाएँ हैं। हमने समन्वय आश्रमके लिए बोधगयाका क्षेत्र चुना, उसमें एक दृष्टि है। हम चाहते हैं कि वहाँपर पाँच प्रकारके काम हों।

(१) मिसालके तौरपर, बोधगयाके आसपासके क्षेत्रमें अगर चोरी होती है, तो हम असफल रहे, ऐसा कहना होगा। हमारे समाजकी जो शक्तियाँ हैं, वे अन्यायके क्षेत्रमें निकल जानी चाहिए। हम अपना क्षेत्र बहुत बड़ा न मानें, छोटा ही मानें। दीपक छोटा हो, तो भी उसकी परिमित कक्षामें अन्धकार मिट जाता है। दीपक छोटा हो या

बढ़ा, उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसके गर्द-गिर्द अन्धकार न रहे। वैसे ही अपने आसपासके लोगोंकी सेवा हमें गुण-विकासके खयालसे करनी चाहिए।

(२) वहाँपर जो स्थायी साधक रहें, उनका जीवन किसी तरहसे अतिरेकी नहीं, बल्कि समत्वयुक्त हो। परन्तु वे अपना जीवन शरीर-परिश्रमपर आधृत रखें। दानमें जो पैसा मिलेगा, उसका उपयोग साधकोंकी जीवन-यात्राके लिए न हो। उनकी जीवन-यात्रा उत्पादक परिश्रमसे ही चले और अगर किसीसे दान लेना ही हो, तो वह भी परिश्रमका ही लिया जाय। वहाँपर जो मकान आदि बनाने हैं, उसके लिए हम उत्पादक परिश्रमके ही दानका आग्रह नहीं रखते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हम आदर्श परिस्थितिमें काम नहीं कर रहे हैं।

(३) हमारी आधुनिक भारतीय संस्कृतिकी एक कमी है। हम लोगोंमें यद्यपि व्यक्तिगत स्वच्छताका कुछ भान है, तो भी सामूहिक स्वच्छताका भान कम है। इसलिए हम चाहते हैं कि बोधगयाका क्षेत्र अत्यन्त स्वच्छ और निर्मल रहे। अगर यह काम ठीक हुआ, तो बाहरसे जो लोग आयेंगे, उनको वहाँपर स्वच्छताका दर्शन होगा। उनकी यात्रा सफल होगी। हमसे उनकी कुछ सेवा होगी और हमारी सारी दृष्टि साक्षात् उनके अनुभवमें आयेगी। शरीर-परिश्रमके समान स्वच्छताको भी हमें नित्य-यज्ञ मानना चाहिए।

(४) वहाँपर विदेशोंसे लोग आते हैं, तो उनके साथ विचारोंका आदान-प्रदान हो, सत्संग हो और उनके साथ कुछ आतिथ्य भी हो, जिससे हम विचारोंके साथ सेवाको भी जोड़ सकें।

(५) हम चाहते हैं कि बिहारमें जो कार्यकर्ता हैं, उनके लिए बोधगया एक विराम-स्थल हो। वहाँ आकर उन्हें कुछ विरति प्राप्त हो; मनको कुछ शान्ति मिले। वैसे वे एक-दो घंटे परिश्रम कर लें, लेकिन उस स्थानका उपयोग मानसिक शांति हासिल करनेमें होना चाहिए।"

* * *

ऐसी है समन्वय-आश्रमके सम्बन्धमें बाबाकी कल्पना।

बाबा समन्वयके सम्बन्धमें थोडेसे शब्दोंमें अपना विचार यों व्यक्त करते हैं—

'हम विश्वमानव हैं, किसी देशविशेषके अभिमानी नहीं, किसी धर्मविशेषके आग्रही नहीं, किसी सम्प्रदाय या जाति-विशेषके बन्दी नहीं। विश्वके सद्विचार-उद्यानमें विहार करना हमारा स्वाध्याय होगा। सद्विचारोंको आत्मसात् करना हमारा अभ्यास होगा और विरोधोंका निराकरण करना हमारा धर्म होगा। विशेषताओंमे सामंजस्य करके विश्व-वृत्तिका विकास करना हमारी वैचारिक साधना होगी।'

*　　　　*　　　　*

सच पूछिये तो यही वह मार्ग है, जिसकी आज सारी दुनियाको जरूरत है। कारण,

तफ़र्का दर नफ्से हैवानी बुवद,
रूहे वाहिद रूहे इन्सानी बुवद!

तफर्का फैलाना, भेदभाव फैलाना है हैवानियत और एकताकी प्रतिष्ठा करना है इन्सानियत।

किसी भी धर्ममें हम डूबकर देखें, तो हम इस निष्कर्षपर पहुँचे बिना न रहेंगे कि सबकी जड एकही है।

और इसी जडको हमें पकडना है—

या राम कहो या रहीम कहो, दोनोंकी गरज़ अल्लाहसे है।
या इश्क कहो या प्रेम कहो, मतलब तो उसीकी चाहसे है॥
या धर्म कहो या दीन कहो, मकसूद उसीकी राहसे है।
या सालिक हो या योगी हो, मशा तो दिले-आगाहसे है॥
क्यों लडता है मूरख बन्दे, यह तेरी खाम खयाली है।
है पेडकी जड तो एक वही, हर मजहब एक-एक डाली है॥

बाबा, यह समन्वयकी ज्योति घर-घर जले!

○ ○ ●

ध्यान : एकाग्रता : समाधि

कुलकाचारला, महबूब नगर, हैदराबाद।

१५ फरवरी, १९५६।

अपराह्नकी शांतवेला।

काषाय वेषधारी एक भाई बाबासे मिलने पधारे।

पता चला कि वे दक्षिणके संत वेमन्नाके वंशज हैं और बाबासे एकाध आध्यात्मिक प्रश्न करना चाहते हैं।

बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई उनसे मिलकर।

* * *

उनका एक मुख्य प्रश्न था—"ईश्वरका हम किस रूपमें ध्यान करें? वह हमें बुरे कामोंकी सज़ा देता है, तो क्या हम दण्डकर्ताके रूपमें उसका ध्यान करें?"

बाबाने उन्हें बताया कि प्रभु तो अनन्त प्रेममय हैं। दण्डके रूपमें भी तो वह हमपर अपने प्रेमकी ही वृष्टि करता है। इसलिए हमारे लिए सबसे अच्छा यही है कि हम ईश्वरका प्रेमरूपमें ही ध्यान करें।

* * *

सायंकालीन प्रार्थना-प्रवचनमें बाबाने मौनके बाद इनकी चर्चा की।

वे बोले:

"कितना आनन्द हुआ कि सब लोगोंने मिलकर भगवान्‌का ध्यान किया। सब लोगोंने परमेश्वरके गुणका ध्यान तन्मय होकर किया। शहरके लोग—पढ़े-लिखे लोग पूछते हैं कि 'यह क्या चुपचाप बैठते हैं? यह तो भगवान्‌के ध्यानका नाटक है।' लेकिन भगवान् कोई बुद्धिका विषय नहीं है, वह तो हृदयका विषय है। हम समझते हैं कि बड़ी मुद्दत उठकर

पक्षी जो मधुर ध्वनि सुनाते हैं, वह परमेश्वरका गुणगान ही है। पक्षीकी अनेक प्रकारकी भाषाए होती हैं। कभी कोई खानेकी चीज मिलती है, दोस्तोंको बुलाना होता है, कही दुःखकी घटना घटती है, तब पक्षी जो आवाज निकालते हैं, वे सब अलग-अलग प्रकारकी होती हैं। इन सब भाषाओंने अलग आवाज सुबहकी होती है। पेडभी ईश्वरका ध्यान करता है। यह सारी सृष्टि ईश्वरकी है और ईश्वरका ध्यान सब करते हैं। कुछ लोग पहचानते हैं, कुछ लोग नही पहचानते। जो लोग सज्जनोंकी संगतिमें रहते हैं, वे आसानीसे पहचान सकते हैं।

आज एक भाई हमसे मिलनेके लिए आये थे। वे मुनि *वेमना* के वंशज हैं। जैसे उत्तर प्रदेशमें कबीर हो गये, वैसेही वेमन्ना यहाके कबीर हैं। जैसे कबीरके छोटे-छोटे पद उत्तर हिन्दुस्तानमें चलते हैं, वैसे ही वेमनाके वचन यहाँ चलते हैं। उन्होंने पूछा कि ईश्वरका किस रूपमें ध्यान करना चाहिए? हम बुरा काम करते हैं तो ईश्वर हमें दड देता है, तो ईश्वरका दडकर्ताके रूपमें ध्यान करना चाहिए कि नही ?

हमने कहा कि भगवान्का ध्यान अनन्त रूपोंमें किया जा सकता है। वह भय भी पैदा करता है—"*भयाना भय*"—सब भयोंसे ईश्वरका भय बडा है। लेकिन किसके लिए उनका भय बडा है? शेर बडा भयकर होता है, लेकिन अपने बच्चोंके लिए वह भयकर नही है। शेरके बच्चे तो शेरके इर्दगिर्द ही घूमते हैं। शेर हिरणके लिए भयकर होता है। नादान लोग भगवान्को भयकर समझते हैं। लेकिन आप और हमलोग भगवान्की सन्तान हैं। इसीसे हमारे लिए वह बडा प्रेममय, क्षमामय दयावान है। मुसलमानोंने भी कहा है कि वह 'रहमान' और 'रहीम' है और वही सबसे बडा दयालु है। ईसाइयोंने कहा है कि God is Love. ईश्वर प्रेममय है। तो हमको ईश्वरका ध्यान दडकर्ताके रूपमें नही करना चाहिए। हम गलतिया भी करेंगे, लेकिन हमें ऐसा परमेश्वर चाहिए जो हमको प्रेम सिखाये। अगर ईश्वरको दडकर्ता समझेंगे तो

वह पुलिस अधिकारी हो जायगा। यह रूप हम बिलकुल पसन्द नहीं करते। उसे हम प्रेमके रूपमें देखना ही पसंद करेंगे। क्योंकि उस रूपका हमको बचपनसे परिचय है। बच्चा पैदा होता है, तो उसको पहला अनुभव दंडकर्ताका नहीं आता है, बल्कि माताका आता है। उसको पहला स्पर्श माताके स्तनका आता है। उसने बच्चेके पेटमें भूख रखी है और उस भूखको मिटानेके लिए माताके स्तनमें दूध भी रखा है। प्रेमकी इस योजनाका पहले ही दिनसे परिचय होता है। इसके बाद भगवान्‌के दूसरे रूप भी समय-समयपर दीख पडते हैं, परन्तु हम लोगोंको डरा-डराकर पुण्य मार्गपर रखना नहीं चाहते। हम उनको प्रेमकी शक्तिसे ही पुण्य-मार्गपर रखना चाहते हैं।

भगवान् दण्डकर्ता तो है। हम जब खराब चीजें खाते हैं, तो दूसरे दिन हमारा पेट खराब होता है। लेकिन वह उसका दण्ड नहीं है, प्रेम है। पेट दुखनेसे हमको तालीम मिलती है कि दुबारा खराब चीज़ न खायें। अगर दुबारा प्रयोग करेंगे तो और जोरोंसे पेट दुखेगा। वह जगानेवाला है। अगर हम जग जाते हैं, तो दण्डकी कोई बात रहती नहीं। यह ईश्वरकी ख़ूबी है। वह हमारा गुरु है, माता-पिता है, वह दण्ड नहीं देता, वह आज़ादी देता है। कहता है—'प्रयोग कर लो और अनुभव ले लो।' हमने अग्निपर पांव डाला और पांव जल गया तो इसका अर्थ यह नहीं कि अग्निने हमें सजा दी। अग्निने हमें तालीम दी कि अगर हम अग्निमें पांव डालते हैं, तो पांव जलते हैं। अगर हम दुबारा अग्निमें पांव नहीं डालते हैं, तो अग्निकी ओरसे निश्चय है कि वह हमें जलावेगी नहीं। जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही फल मिलते हैं। तो ईश्वरकी जो योजना है, वह 'दंड योजना' नहीं, 'ज्ञान योजना' है। उसमें उसका प्रेम है। और वह सबपर समान रूपसे प्यार करता है। ठंडके दिनोंमें अग्नि सुलगायी गयी, तो वह सबको समान रूपसे गरमी देगी। लेकिन जो नजदीक बैठेगा उसको ज्यादा गरमी मिलेगी और जो दूर बैठेगा, उसको कम मिलेगी। मतलब यह कि परमेश्वर निष्पक्ष दयालु है।

हम बुरा काम करते हैं, तो परिणाम बुरा मिलता है, क्योंकि वह हमारी करनी है। अच्छा काम करते हैं, तो परिणाम अच्छा मिलता है, क्योंकि वह हमारी करनी है। हम बबूल बोते हैं, तो हमको आम नहीं मिलेगा। आमके लिए हमको आमकी गुठली बोनी पड़ेगी। ईश्वर तो तटस्थ होकर हरेकको काम करनेका मौका देता है।

मुसलमान कहते हैं कि ईश्वर परले आसमानमें—याने सातवें आसमानमें रहता है। कोई कहता है कि ईश्वर वैकुण्ठमें या क्षीरसागरके उस पार रहता है। कोई कहता है भगवान् शंकर कैलासमें रहते हैं और कभी-कभी काशी आ जाते हैं। यह सब गलत है। मुसलमानोंके लिए कुरानमें एक वाक्य है कि :

"*नहनु अकरबु ईले ही मीन हब्लील् वरीद*" यह जो हृदयकी नाडी है, उससे भी अल्लाह ज्यादा नजदीक है। यह जो वाणी बोल रही है, इससे भी ज्यादा नजदीक है। उसको जितना दूर रखेंगे, उतनी अपनी जिन्दगी बर्बाद होगी। सबके हृदयमें परमेश्वर अंतर्यामी है।' "

* * *

दयालु, कृपालु, वत्सल प्रभु तो हमारे निकटसे निकट है—

Nearer is He than hands & feet.

यह तो हमारे हाथ-पैरोंकी अपेक्षा भी हमारे अधिक निकट है।

रात-दिन, सुबह शाम हमपर उसकी कृपाकी वर्षा होती रहती है।

भक्तके लिए तो यही सीधा-सादा रास्ता है कि वह उसके प्रेमकी ही शरण ले। ठीक वैसे ही, जैसे अंगदने ली। भगवान् जब कहने लगे—'अब तुम घर जाओ' तो वह उनके चरण पकड़कर बोला—

'मरती बार नाथ मोहि बाली।
गयेउ तुम्हारे कोछे घाली॥
मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता।
जाँउ कहाँ तजि पद जल-जाता॥'

* * *

विनोबा '५३ के जूनमें जब रांचीके पहाडी प्रदेशमें घूम रहे थे तो गुमलामें दिव्य जीवन संघकी बैठकमें एक साधकने उनसे पूछा था—

'बाबा, ध्यानमें चित्त कैसे एकाग्र हो ?'

बाबाने बड़ा ही सारगर्भित उत्तर दिया उसे—

"मैंने ऐसे बहुतसे साधक देखे हैं जो सुबह उठकर और रातको सोनेके पहले ध्यान करनेकी और एकागताकी कोशिश करते हैं। वे कहते हैं कि कोशिश करनेपर भी चित्त स्थिर नही होता। ध्यान करते समय मन इधर-उधर दौड़ता है। फिर भी वे अपने-अपने तरीकेसे ध्यान करनेकी कोशिश करते हैं। ऐसे बहुतसे लोगोंसे मेरा अच्छा परिचय भी है। अपना विचार मैं उन्हें समझाता हूं कि जीवन-शुद्धि और चित्त-शुद्धिके प्रयत्न किये बगैर जो चित्तकी एकाग्रताका प्रयत्न करते हैं, वे गलत राह-पर हैं। हम जानते हैं कि जो विषय चित्तको भाता है, उसमें चित्त सहज ही एकाग्र होता है। मनुष्यको कोई चीज़ अच्छी लगती है, तो खानेमें उसकी समाधिकी अवस्था होती है। इसलिए एकाग्रता कठिन नही है। परन्तु बिना चित्त-शुद्धिके एकाग्रताकी कोशिश करते हैं, तो एकाग्रता सधती नही। इसलिए जीवन-शुद्धि करना आवश्यक है। जो व्यापारी अपने काममें दिन भर झूठका प्रयोग करेगा और सुबह या शाम ध्यान करनेकी कोशिश करेगा, उसका ध्यान सधना मुश्किल है। इसलिए पहली वस्तु—चित्तशुद्धि और जीवनशुद्धि है। आजीविका शुद्ध तरीकेसे कैसे प्राप्त करें, यह सोचे बगैर ध्यान-योग नही सधता है, क्योंकि जीवन शुद्ध नही होता है।

बड़े प्रयत्नोंसे एकाग्रता सध भी जाय, तो भी जीवन शुद्ध न हो, तो वह भयंकर बात हो जाती है। रावणकीभी एकाग्रता सधी थी। कई योगियोंको ऐसी एकाग्रता सधती है। परन्तु यह दुनियाका संहार करने-वाली होती है। इसलिए जीवनशुद्धिके बगैर एकाग्रता सधती नही और सधी भी तो वह आसुरी शक्ति पैदा करती है। इसलिए हम साधकोंसे कहते हैं कि जीवनशुद्धि और चित्तशुद्धिका प्रयत्न करो।"

* * *

सचमुच, चित्तशुद्धि, व्यवहार-शुद्धि, अर्थशुद्धिके बिना चित्त एकाग्र होगा कैसे ? ध्यान जमेगा कैसे ?

* * *

एक दिन पद-यात्रामें ऐसी ही कुछ चर्चा चल रही थी कि बाबाको माँकी एक घटना याद हो आयी। बोले—माँ एक-एक दाना गिनकर चावलके एक लाख दाने शिवपर चढाती। यह देखती जाती कि कहीं कोई दाना खण्डित न हो।

एक दिन पिताने विनोद किया—'यह क्या खट-खट लगा रखी है! एक तोलेमें कितने दाने चढते हैं, यह तौलकर देख ले। उसी हिसाबसे एक लाख दाने तौलकर चढा दे। कुछ कमी न रह जाय, इसलिए कुछ थोडेसे दाने ज्यादा डाल दे।'

माने मुझसे पूछा : 'क्यों विन्या ? ऐसा करना ठीक है क्या ?'

मैंने कहा : नहीं माँ, ऐसा करना ठीक नहीं। *इसमें तो तेरा ध्यान* लगता है। हर दानेपर शिवका स्मरण होता है। इसमें और तोल-नापमें जमीन आसमानका अन्तर है!

संस्मरण सुनाते सुनाते बाबा गद्गद हो गये।

* * *

चित्तकी एकाग्रताके सम्बन्धमें बाबाका कहना है कि कोई सौम्य शांतिमय क्रिया अखंड चलती रहे तो चित्त एकाग्र होते देर नहीं लगती। जैसे, भगवान्की मूर्तिपर बूँद-बूँद जलका अभिषेक :

मन्दिरमें छोटेसे दीपककी लौ

स्वच्छ निर्मल जलका शांत प्रवाह :

वीणाकी तन् तन्-तन् धीमी ध्वनि।

और चरखेपर तो बाबा लट्टू ही हैं। कहते हैं :

किसी खटखट आवाजमें चित्त एकाग्र नहीं हो सकता, परन्तु चरखेकी आवाज इतनी मधुर है कि उस आवाजमें ही मन शांत हो जाता है। घरमें माता सूत कातती हो, तो बच्चेको उस धीमी आवाजमें नींद

आयेगी। मनुष्यको गुस्सा आये और वह चरखा लेकर बैठे तो उसका गुस्साभी कम होगा। मनुष्यको दुःख हो, कोई मर गया हो, तो वह चरखा लेकर बैठे। इधर नाम-स्मरण चले, उधर चरखा, तो वह दुःख भूल जाता है।

नाम-स्मरणके लिए अक्सर मणिमाला हाथमें लेकर एक एक मणि घुमाते हैं। इसका मतलब यही है कि एकाग्रताके लिए कोई छोटी-सी क्रिया चाहिए।

* * *

और 'गीता-प्रवचन'में उन्होंने इसके ३ साधन बताये हैं :

(१) पहले हम कायल तो हों इस बातके, कि हमें चित्त एकाग्र करना है।

(२) जीवनकी परिमितता—नियमित आचरण।

(३) मंगल दृष्टि। सर्वत्र मांगल्य देखने लग जाइये, चित्त अपने आप शांत हो जायगा।

* * *

एक दिन प्रातः-भ्रमणमें मैंने पूछ दिया—'बाबा, नियमित आचरण, जीवनमें नियमन, परिमितता देखनेमें तो सरल लगती है, पर आचरणमें बड़ी कठिन है। इन्द्रियोंको ज़रासा मौक़ा मिलता है कि वे दौड़ छूटती हैं।'

"यही तो ग़लत है। उन्हें ज़रासी भी छूट नहीं देनी चाहिए। जीभ हो या कोई भी इन्द्रिय हो, ज़रासी भी ढील देना ग़लत है। मुझे तो इन्द्रय-निग्रह कभी कठिन नहीं लगा। इन्द्रियां कभी अगर ज़ोर मारती हैं, तो जानती हैं कि भीतर जो बैठा है, वह माननेवाला नहीं। भीतरी मालिकको उनका स्वेच्छाचार सहन न होना चाहिए। उनपर ऐसी धाक रहनी चाहिए कि वे ज़रा भी फिसलेंगी, तो भीतरका मालिक उन्हें मज़ा दिये बिना न रहेगा।"

* * *

और समाधि ?

बाबा कहते हैं : 'समाधि' शब्दमें 'स' और 'आ' उपसर्ग हैं और 'धा' धातु है। 'समाधान' शब्दकी व्युत्पत्ति भी यही है। चित्तके समाधानकी स्थिति ही 'समाधि' है। 'समाधान' कहते हैं 'समतुलन' को। तराजूके दोनों पलड़े जब समान होते हैं, तो कहते हैं—तराजू समतोल है, तराजूका समाधान है। तराजूकी डण्डीकी तरह चित्तकी स्थिति समतोल, अचल और शांत हो जाय तो उसका समाधान हो गया। ऐसी समाधि सदा टिकती है। कभी भंग नहीं होती।

और बाबा ऐसी ही सदा टिकनेवाली समाधिके क़ायल हैं।

यों वैसी समाधि भी उन्हें लगती रही है, रातको भी उन्होंने उसका अभ्यास करके देखा है और ब्राह्ममुहूर्तमें भी, पर वह चढ़ने-उतरनेवाली समाधि उनके लेखे नगण्य-सी है।

वे तो ऐसी ही समाधि पसन्द करते हैं, जो हमेशा सधी रहे।

एक दिन बोले—"कर्म छोड़कर जैसी समाधि लगती है, वैसी ही समाधि कर्म करते-करते भी लगनी चाहिए। हमें इसका थोड़ा-सा अनुभव है। ध्यानके लिए एक स्थानपर बैठना और बहुत-सी क्रियाएँ छोड़ देना जरूरी माना गया है। शुरूमें उसकी कुछ ज़रूरत हो सकती है, पर उससे ध्यानकी प्रक्रियाका उत्कर्ष सम्भव नहीं। यह उत्कर्ष तो तभी हो सकता है, जब अखण्ड क्रिया चलती रहे और उसका क्रियात्व मालूम ही न हो। जैसे, हमारी साँस चलती रहती है। उस क्रियासे हमें कोई बाधा नहीं मालूम होती।"

* * *

और ऐसी समाधिमें हम रहें, आठ पहर, चौंसठ घड़ी हमें ऐसी समाधि लगी रहे, तो फिर कहना ही क्या !

मानवका सर्वोच्च विकास है इसमें। कबीर इसका कैसा सुन्दर वर्णन करते हैं—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिनतें उपजी, दिन-दिन अधिक चली॥
जहँ जहँ डोलौं सोई परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा॥
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खाँव-पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एकसम लेखौं, भाव न राखौं दूजा॥
आँख न मूंदौं, कान न रूधौं, काया कष्ट न धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हंसि हंसि, सुन्दर रूप निहारौं॥
सबद निरन्तर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहूं न छूटे, ऐसी तारी लागी॥
कहै 'कबीर' यह उनमुनि रहनी, सो परगट करि गाई।
दुख-सुख से कोई परे परमपद, तेहि पद रहा समाई॥

०००

मैं कहता हूँ कि गयेसे-गया-गुजरा व्यक्ति भी आनन्दमय जीवन विता सकता है, और जरूर विता सकता है।

मैं होऊँ, आप हों, राजा हो, रईस हो, किसान हो, मजदूर हो; सेठ हो, साहूकार हो, पण्डित हो, चाण्डाल हो—कोई भी हो, ऐसा जीवन विता सकता है। ससारके झझावातमें रहते हुए भी ऐसा जीवन विताया जा सकता है।

कोई ऐसा चाहे भी तो !

*　　　*　　　*

मुसीवतें आती हैं, परेशानिया आती हैं, चिन्ताएँ घेरती हैं, प्रियजनोंका वियोग होता है, धनसम्पत्तिका नाश होता है, व्यापारमें घाटा लगता है, अप्रिय प्रसग आते हैं, अपमान होता है, तिरस्कार होता है, ससारके थपेडे लगते हैं और पलभरमें हमारा आनन्द हवा हो जाता है, मस्ती धूलमें मिल जाती है, हास्य रुदनमें परिवर्तित हो जाता है, खिलखिलाहट आँसुओंमें वदल जाती है !

कोई अप्रिय प्रसग आता है, इच्छाके प्रतिकूल कोई घटना घटती है कि हमारी शातिके पैर उखड जाते हैं।

शरीरको कोई कष्ट मिलता है, खानेका सकट आ घेरता है, जीवनकी अन्य आवश्यकताएं ठीकसे पूरी नहीं होतीं कि हमारा आसन डोल जाता है।

हमारे 'अह' को ठेस लगती है, हमारे नामपर ठोकर लगती है, हमारी इज्जतपर वट्टा लगता है कि हमारा मानसिक संतुलन विगड़ जाता है।

*　　　*　　　*

और मैं कहता हूँ कि ये ही वे मौके हैं, जिनमें हम सम्हलनेका अभ्यास कर लें, वन्‍ देरा पार है।

हर हालतमें हम चित्तको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करें, इसकी आदत

डाल लें, तो हम भी स्थितप्रज्ञ हो सकते हैं, हम भी जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

*   *   *

सुख-दुःख तो आयेंगे ही, हानि-लाभ तो होगा ही, सगे-सम्बन्धी तो मिलेंगे और बिछुडेंगे ही, आना-जाना तो लगा ही रहेगा, प्रिय अप्रिय प्रसग तो आयेंगे ही। सृष्टिका क्रम है यह। इन नियमोंमें अपवाद हो नही सकता।

फिर हम क्यों बुद्धि और विवेकसे हाथ धो वैठें ? ससारके प्रलोभनों, प्रहारोंके आगे हम क्यों घुटने टेक दें ?

दुःखी होकर, निराश होकर, अशान्त होकर, उद्विग्न होकर हम बिगड़ी बातको और बिगाड ही सकते हैं, बनाना तो दूर रहा।

जरूरत है कि हम अपना निराशाजनक दृष्टिकोण बदल डालें।

कोई भी प्रसग आ जाये, कैसी भी स्थिति आकर घेर ले, हम घबरायें नहीं। शान्तिसे, प्रसन्नतासे, डट कर उसका सामना करें। मुसीबतोंमें भी, आपत्तियोंमें भी अपनी मस्ती और मुसकराहटको हाथसे न जाने दें। तभी तो हमारी बहादुरी है, उसीमें तो हमारी वीरता है।

*   *   *

आप कह सकते हैं कि बात बनाना तो बहुत आसान है, इसे अमलमें लाकर कोई दिखाये, तब जानें।

कथनी मीठी खाँड सी,
करनी विषकी लोय।
कथनी तजि करनी करे,
विषसे अमृत होय॥

*   *   *

मैं मानता हूँ कि यह टेढी खीर है, दुःखद और अप्रिय प्रसंग उपस्थित होनेपर बड़े-बड़ोंके आसन डोल जाते हैं, फिर भी मेरी यह निश्चित धारणा है कि अभ्यास करे तो मनुष्य '*हर आन हँसी, हर आन खुशी*' का जीवन बिता सकता है। जरूर बिता सकता है।

*   *   *

यहाँ मैं एक बात साफ कर दूँ। और वह यह कि हर समय प्रसन्न रहनेके लिए, हर घड़ी मुसकरानेके लिए, सुख-दुःखको एक तुलापर तौलनेके लिए जबर्दस्त साधना करनी पड़ेगी—सो भी दीर्घकालतक। कोशिश करे तो हर आदमी इसमें सफलता पा सकता है।

* * *

घड़ी भरको तो सभी मुसकरा सकते हैं, घंटे- आध घंटे तो सभी हँस सकते हैं, पर हर समय मुसकराना बहुत बड़ी बात है।

कारण,

वे लोग हमेशा मुसकराते रह ही नही सकते—
जिनका दृष्टिकोण ओछा है,
जिनका जीवन घृणासे दूषित है।
जिनका मन ईर्ष्या और लोभसे कलुषित है।

* * *

वह व्यक्ति भी सदा मुसकराता नहीं रह सकता—
जिसे अपने महत्त्वका झूठा घमण्ड है,
जिसे अपनी शानका, अपने ओहदेका गर्व है,
जिसे अपनी रहन-सहन, अपने ठाठ-बाटका गुमान है,
जिसे अपनी प्रतिष्ठाका अहकार है,
जो अपनी थोथी धारणाओंको पकड़े बैठा है,
जो अपनेको बुद्धिमानोंका सरताज समझता है,
जो दूसरोंसे कुछ सीखना ही नही चाहता,
जो अनुभवकी पाठशालासे सबक लेना नही चाहता,
जो अपनी बेवकूफियोंपर खुलकर हँसता नही।

* * *

मतलब ?

हरदम हँसनेके लिए, हरदम मुसकरानेके लिए जीवनका दृष्टिकोण ही बदलना पड़ेगा।

इसके लिए हृदयको ऊँचा उठाना पड़ेगा। उदार बनाना पड़ेगा।

मनको निष्कलुप बनाना पड़ेगा।

लोभ और ईर्ष्यासे छुटकारा लेना पड़ेगा।

वैर और घृणाको खोद बहाना पड़ेगा।

अपनी झूठी शानको मिटा देना पड़ेगा।

मद और मत्सरसे, अहकार और दकियानूसीपनसे किनाराकशी कर लेनी पडेगी।

* * *

सोचनेकी बात है कि हमारी मस्ती कब हमारा साथ छोड़ देती है? हमारी शान्ति कब फिसलने लगती है? हमारी प्रसन्नता कब किनाराकशी करने लगती है? दुःखके बादल हमें कब घेरने लगते हैं?

जब हम किसीका दिल दुखाते हैं। किसीका अपमान करते हैं।

जब हम झूठ बोलते हैं। गलतको सही और सहीको गलत बताते हैं।

जब हम कडवी बात जुबानसे निकालते हैं।

जब हम किसीकी निन्दा करते हैं। किसीको गाली देते है। किसीपर व्यंग्य कसते हैं।

जब हम व्यर्थका वाद-विवाद करते हैं: जानबूझकर समयकी हत्या करते हैं।

जब हम चोरी करते हैं। मुफ्तमें किसीकी चीज हड़पते हैं।

जब हम किसीसे घृणा करते हैं: किसीसे द्वेप करते हैं।

जब हम दुर्व्यसनोंमें फँस जाते हैं।

जब हम दुराचारकी कोई बात सोचते या करते हैं।

जब हम अधे होकर इन्द्रियोंके इशारेपर नाचते हैं।

जब हम क्रोधमें जलने लगते हैं।

जब हम मोहमें बावले हो उठते हैं।

जब हम प्रलोभनके आगे घुटने टेक देते हैं।

जब हम धन-दौलतको ही प्रसन्नताका एकमात्र आधार मान बैठते हैं।
जब हम भयभीत हो उठते हैं।
जब हम शरीर-सेवाको ही जीवनका ध्येय मान बैठते हैं।
जब हम अपने सामने दूसरोंको कुछ नही गिनते।
जब हम अपने ही मनोनुकूल सारी दुनियाको घुमाना चाहते हैं।
जब हम अहकारमें डूबकर विवेक छोड बैठते हैं।
जब हम कुछ काम नही करते। सिर्फ आलसमें ही बुत पड़े रहते हैं।
जब हम इतना काम करते हैं कि शरीर थककर चूर हो जाता है।
जब हम पेटको ठूँस-ठूँसकर भर लेते हैं।
जब हम नश्वर जगतको शाश्वत मान बैठते हैं।
जब हम छोटी बातोंको बहुत महत्त्व देने लगते हैं।
जब हम आत्माको भूलकर ससारको ही सब कुछ मानने लगते हैं।

* * *

इन बातोंसे हम छुटकारा पा लें, बस मस्ती ही मस्ती है।

* * *

आप कहेंगे कि इनमें तो सारा आचार-शास्त्र, सारा धर्म-शास्त्र आ जाता है।

इन सब बातोंको करना तो बहुत मुश्किल है।

आप घवडाइये नही। हर समय हँसने-मुसकराने, हर घडी मस्त रहनेके लिए एक सीधा-सादा नुस्खा भी है।

और वह यह कि कोई भी बात सोचो, कोई भी बात बोलो, कोई भी काम करो, उसके पहले यह विचार करके देख लो कि इससे मेरा चित्त प्रसन्न रहेगा? इससे मेरा मन शान्त रहेगा? इससे मुझे आत्मसन्तोष होगा?

जिससे चित्त प्रसन्न रहे, वही सोचो, वही बोलो, वही करो।

* * *

भगवान् बुद्धका यह प्रसग हमें सदा याद रखना चाहिए—

'राहुल, दर्पण किस कामके लिए है ?'

'भन्ते ! देखनेके लिए ।'

'ऐसे ही राहुल ! देख-देखकर कायासे काम करना चाहिए। देख-देखकर वचनसे काम करना चाहिए। देख-देखकर मनसे काम करना चाहिए।

'जब राहुल ! तू कायासे (कोई) काम करना चाहे, तो तुझे कायाके कामपर विचार करना चाहिए—मैं जो यह काम करना चाहता हूँ, यह मेरा कायकर्म अपने लिए पीडादायक तो नही हो सकता ? दूसरेके लिए पीड़ादायक तो नही हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके लिए पीड़ादायक तो नही हो सकता ? यह अकुशल (बुरा) कायकर्म है, दुःखका हेतु दुःखविपाक (=भोग) देनेवाला है ? यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षा (देखभाल, विचार) कर ऐसा जाने—'जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ, यह बुरा कायकर्म है।' ऐसा राहुल ! कायकर्म सर्वथा न करना चाहिए। यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षा कर ऐसा समझे कि यह कायकर्म न अपने लिए पीडादायक हो सकता है, न परके लिए, यह कुशल (अच्छा) कायकर्म है, सुखका हेतु (=सुखविपाक) है, इस प्रकारका कर्म राहुल ! तुझे कायासे करना चाहिए। इस प्रकारके कायकर्मको राहुल बार-बार करना।

'यदि राहुल ! तू वचनसे काम करना चाहे, कुशल वचनकर्म करना। बार-बार करना।

'यदि तू राहूल ! मनसे काम करना चाहे। कुशल मनकर्म करना। बार-बार करना। मन-कर्म अकुशल है, तो इस प्रकारके मनकर्ममें खिन्न होना चाहिए, शोक करना चाहिए, घृणा करनी चाहिए। खिन्न हो, शोककर, घृणाकर आगेको संयम करना चाहिए। यह मनकर्म कुशल है, उससे तू प्रमोदसे विहार करेगा।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किंप्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोध : स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्यविपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६०
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७०
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२

—श्रीमद्भगवद्गीता २।५४-७२

• • •

सर्वोदय और भूदान-साहित्य

(विनोबा)

गीता-प्रवचन	१)
शिक्षण-विचार	१॥)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन	१)
ज्ञानदेव चिंतनिका	।॥)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
त्रिवेणी	॥)
साहित्यिकों से	॥)
विनोबा-प्रवचन	।॥)
सर्वोदय के आधार	।)
हिंसा का मुकाबला	≡)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
एक बनो और नेक बनो	=)
व्यापारियों का आवाहन	=)
भूदान गंगा (खण्ड १)	१॥)
भूदान-गंगा (खण्ड २)	१॥)
भूदान-गंगा (खण्ड ३)	१॥)
विनोबाके विचार (दो भागोंमें)	२)
स्वराज्य शास्त्र	॥)
जन-क्रांति की दिशा में	।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासन-मुक्त समाज की ओर	।≡)
नयी तालीम	॥)
ग्रामराज	।)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

संपत्तिदान-यज्ञ	॥)
व्यवहार-शुद्धि	।≡)

(दादा धर्माधिकारी)

साम्ययोग की राह पर	।)
क्रान्ति का अगला कदम	।)
मानवीय क्रान्ति	।)

(अन्य लेखक)

सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
जीवनदान	।)
श्रमदान	।)
भूदान-आरोहण	॥)
पावन-प्रसंग	॥)
सत्संग	॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	।॥)
विनोबा के साथ	५)
क्रान्ति की राह पर	१)
क्रान्ति की ओर	१)
पावन प्रकाश (नाटक)	।)
क्रान्ति की पुकार	≡)
पूर्व-बुनियादी	॥)
गो-सेवा की विचारधारा	॥)
भूमि-क्रान्ति की महानदी	।॥)
भूदान-दीपिका	≡)
गाँव का गोकुल	।)
सर्वोदय-भजनावलि	।)
सेवाग्राम-आश्रम (परिचय)	।≡)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन	॥)
सामाजिक क्रांति और भूदान	।-)
ग्रामशाला ग्रामज्ञान	१)
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
छात्रों के बीच	।)
धरती के गीत	-)
पहली रोटी	।)
राजनीति से लोकनीति की ओर	॥)
भूदान-लहरी	-)